कामिनी इसे नहीं सताते। स्तुति तथा निन्दा इत्यादि से दूर रहकर वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है[1]।

गुरु की कृपा, सत्संगति या अन्य किसी प्रकार से ज्ञान न प्राप्त करके भी साधक किसी अन्य द्वारा बिना समझाये ही पूर्व जन्म के संस्कार के कारण अपने आप ज्ञानी हो सकता है। भगवान् की कृपा से भी यह कार्य सम्भव हो सकता है तथा अपने अनुभव से भी ज्ञान-साधना सुलभ हो सकती है। हंस को नीर-क्षीर, विवेक किसी ने नहीं सिखाया। अलल पक्षी के बच्चों को किसी ने आकाश में रहने का ज्ञान नहीं दिया। शेर के बच्चों को अल्प समय में ही हाथी को मारना किसी ने नहीं बताया। इससे ज्ञात होता है कि ज्ञान भीतर से भी पैदा होता है। इसमें किसी भी शिक्षा विशेष की आवश्यकता नहीं है। केवल सद्गुरु के कर्तव्यों को देख लेना ही पर्याप्त है[2]।

केवल कर्म करने से ही मुक्ति नहीं मिलती, क्योंकि कर्म तो ज्ञान-प्राप्ति का केवल प्रथम सोपान है। कर्म से ज्ञान और ज्ञान से सहज समाधि की सिद्धि होती है और तब साधक अपना स्वरूप पहचान लेता है। फिर जीव ब्रह्म हो जाता है। शिव और शक्ति का मिलन ही ज्ञान का अन्तिम फल और साधक का लक्ष्य है।[3]

१–पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १४७ पद ४१७

२–समुझाए से क्या भया जब ज्ञान आपु से होय।
ज्ञान आपु से होय हंस को कौन सिखावै।
छीर करत है पान नीर को वह अलगावे।
अलल पच्छ इक रहे गगन में अण्डा देवे।
बच्चा सुरति सम्हार उलटि के फिर घर लेवे।
केहरि के सिसु कहे कौन उपदेश बतावे।
कुंजर देहि गिराय बात में विलम्ब न लावें।
पलटू सत्गुरु रहनि को परखि लेय जो कोय।
समुझाये से क्या भया जब ज्ञान आपु से होय।
(पलटू साहिब की बानी (भाग १) पृष्ठ ५८ पद १४६)

३ कर्म जो लाख करै कोई ज्ञान बिन मुक्ति न होई।
सहज समाधी जब आवै तबै उस रूप को पावै।
जाय जब चेतन को मेटे बुधि अशुभ को मेटै।
जीव में ब्रह्म जब होवे सारे पांव तब सोवै।
शक्ति शिव मिलन है सांची प्रगट होय चेतना नांची।
पलटूदास जाने सोई उन्हें जो मिला होय कोई।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १०८ पद ३०६)

पलटूदास का मत है कि उसी को ज्ञानी कहना उचित है जिसकी कमठ जैसी दृष्टि हो। कमठ सूखी जमीन पर अंडा देता है और स्वयं पानी में रहता है, परन्तु वह ध्यान से ही अंडा सेता है। जिस प्रकार पनिहारिन सर के ऊपर गागर रखती है, परन्तु उसका ध्यान घड़े पर ही रहता है; उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी इस संसार के जीवों में निवास करता है, परन्तु प्रत्येक क्षण उसका मन ब्रह्म में ही लीन रहता है और उसकी दृष्टि उसी अरूप का रूप देखती रहती है। जिस प्रकार सर्प चरता है, परन्तु उसका ध्यान मणि पर रहता है, उसी प्रकार साधक अहर्निश ब्रह्म का अनुभव करता रहता है यद्यपि वह आवश्यक सांसारिक कार्यों में लीन रहता है। यह भी कहा जा सकता है कि वह संसार रूपी कीचड़ से जीवन-सामग्री ग्रहण करता हुआ भी कमल की भाँति निर्लिप्त रहता है।[1]

साधना के क्रम में पलटूदास ने ज्ञान को प्रधानता दी है। उनका विचार है कि साधक को पहले सांसारिक पदार्थों से वैराग्य लेना चाहिए। तत्पश्चात् श्रवण, कीर्तन तथा नाम-स्मरण द्वारा भक्ति को जाग्रत करना चाहिए। सत्संगति में बैठकर ज्ञान योग सीखना चहिए और इस प्रकार ज्ञान तथा भक्ति के द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना चाहिए[2]।

---

१. कमठ दृष्टि सोई ज्ञानी अवधू बारम्बार बखानी।
अण्डा कमठ देत है सूखे आप रहत है पानी।
दृष्टि सेती अंडा वह सेवे अंडा में सुरति समानी।
ज्यों पनिहारी के सिर गागर ऐसी चतुर सयानी।
चित वाकी गागर मारग में मुख से बोले बानी।
चरै भुजंग दृष्टि है मणि पर, सुरति रहे अरुझानी।
ऐसा ध्यान धरै जो कोई ताको कहिए ध्यानी।
सबमें रहे सबन से न्यारा, ऐसी मति जिन ठानी।
पलटूदास करै वै सब कुछ सुरति रहे अलगानी।
(पलटू साहिब की शब्दावली पृष्ठ १० पद ३२)

२. पहिले हूवै वैराग भक्ति तब कीजिए।
सतसंगत के जोग ज्ञान तब लीजिए।
ऐसे उपजे ज्ञान भक्ति को पाइ के।
अरे हां पलटू लै जा उपर मारि ठीक ठहराइ के।
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ७६ पद ६२)

संत पलटूदास और पलटू-पंथ

संत पलटूदास और पलटू-पंथ

आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

डॉ. राधाकृष्णसिंह
प्रिंसिपल
सेन्ट्रल स्कूल नं० २, अम्बाला छावनी

शोध-प्रबन्ध-प्रकाशन
५ संतनगर, करौलबाग, नई दिल्ली-५

प्रकाशक : शोध-प्रबन्ध-प्रकाशन
५ संतनगर, करोलबाग, नई दिल्ली-५

मुद्रक : अमर प्रिंटिंग प्रेस,
विजयनगर, दिल्ली।

प्रथम प्रकाशन : १. ५. १९६६

मूल्य : १५.००

भूमिका

पलटूदास अपने समय के एक महान् संत थे। उनकी कीर्ति अयोध्या में ही नहीं अपितु दूर-दूर तक फैली हुई थी। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को पद्य रूप में व्यक्त किया था, परन्तु इनका साहित्य किसी कारणवश मुद्रित नहीं हो सका था। फिर भी साधारण जनता इनके साहित्य से परिचित थी और इनके द्वारा रचित पद समय-समय पर गाये जाते रहे हैं।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी ने सर्वप्रथम मेरा ध्यान इनके साहित्य की ओर आकृष्ट किया और तत्पश्चात् खोज आरम्भ हुई। "पलटूदास का अखाड़ा, अयोध्या" में इनके रचित पदों का एक संग्रह वर्तमान है। "काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा" में भी इनकी रचनाओं के कुछ खंडित संग्रह संचित हैं। पाठ गेय होने के कारण अधिकतर मुद्रित ग्रन्थों का ही सहारा लेना पड़ा और इस अध्ययन का मुख्य आधार यही मुद्रित ग्रन्थ हैं।

पलटूदास तथा उनके शिष्यों द्वारा रचित पदों के लिये इस पंथ से सम्बन्धित प्रत्येक मठ पर जाना पड़ा, परन्तु उन स्थानों पर कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो सका, क्योंकि इस पंथ से सम्बन्धित समस्त साहित्य अयोध्या में ही संग्रहीत है। उन मठों के महंथ कोई भी बात प्रकट करने में असमर्थता प्रकट करते हैं और ज्ञात होता है कि उन्हें इस पंथ से सम्बन्धित तथ्यों का कम ज्ञान है। फिर भी प्रयत्न किया गया है कि सही तथ्य अधिक से अधिक मात्रा में सामने लाया जाय ताकि किसी प्रकार से भ्रम उत्पन्न नहीं हो सके।

पलटू-पंथ अधिक प्राचीन नहीं है अतः पंथ की रूपरेखा न तो अधिक विकसित तथा परिवर्तित है और न ही इस पर अन्य पंथों का विशेष प्रभाव पड़ा है एवं कबीरपंथी साहित्य की भाँति इसमें विशेष आडम्बर भी नहीं आ पाया है।

इस शोध-कार्य में मैं आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का विशेष ऋणी हूँ। उन्हीं की प्रेरणा से यह कार्य प्रारम्भ हुआ और उन्हीं के आशीर्वाद से यह पूर्ण हुआ। इस प्रकार उन्होंने इस कार्य में मेरी सहायता के लिए जो अपना बहुमूल्य समय दिया उसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

—राधाकृष्णसिंह

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

संतों की परम्परा और बावरी पंथ

(१) संतों की परम्परा	...	...	३
(२) बावरी साहिबा और उनके पंथ की परम्परा	...		१०

द्वितीय अध्याय

संत पलटूदास की जीवनी एवं व्यक्तित्व

(१) जीवन-विषयक सामग्री	...	...	२६
(२) जीवन-वृत्त	...	...	३८
(३) व्यक्तित्व	...	...	४४

तृतीय अध्याय

संत पलटूदास की रचनाएँ तथा विचारधारा

(१) रचनाएँ	...	...	४६
(२) विचारधारा			
(अ) दार्शनिक विचार	...	...	५६
(ब) धार्मिक विचार	...	...	७२
(स) सामाजिक विचार	...	...	७६
(३) साधना	...	...	८५

चतुर्थ अध्याय

संत पलटूदास की शिष्य-परम्परा और पलटू-पन्थ

(१) शिष्य-परम्परा	...	...	१३१
(२) पलटू-पंथ	...	...	१४५

पंचम अध्याय

संत पलटूदास और पलटू-पन्थ, तुलनात्मक अध्ययन

(१) प्रस्तावना १४६
(२) सिद्धान्त १५०
(३) साधना-पद्धति — — १५१
(४) साम्प्रदायिक रूप — — १५२

षष्ठ अध्याय

संत पलटूदास और समकालीन संत १५७

सप्तम अध्याय

संत पलटूदास का स्थान तथा उनकी देन

(१) पलटू-साहित्य का साहित्यिक रूप ... १७५
(२) पलटूदास और जन-जीवन — २०६
(३) पलटूदास की देन — २११

प्रथम अध्याय

: संतों की परम्परा और वावरी पंथ :

(अ) संतों की परम्परा।
(व) वावरी साहिबा और उनके पंथ की परम्परा।

संतों की परम्परा

भारतवर्ष का इतिहास एक समृद्ध देश का इतिहास है। इसके ऐश्वर्य को देखकर *आक्रमणकारियों का यहाँ आना स्वाभाविक ही था।* शक, सीथियन तथा हूणों के आक्रमण भारतीय समाज में विशृंखलता नहीं पैदा कर सके क्योंकि वे कालान्तर में इसी में घुल-मिल गए। परन्तु मुसलमानों के आक्रमण से एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो गई। वे जब तक लूट-मार मचाकर चले जाते रहे तब तक कोई विशेष बात नहीं थी, परन्तु जब से उन्होंने राज्य करने की अभिलाषा से यहाँ पर निवास करना प्रारम्भ किया, भारतीय समाज के सामने एक नवीन उलझन पैदा हो गई। आगन्तुक साधारण नहीं थे। उनकी शक्ति अपार थी। उनका धर्म निर्बल नहीं था जो आसानी से हिन्दू धर्म में मिल जाता। वह एक ऐसा धर्म था जो एक हाथ में तलवार और दूसरे में आग लेकर बढ़ता था। उसने एक खुदा और उसके एक पैगम्बर को मान्यता दे रखी थी। वही धर्म काफिरों को नष्ट करने, उनकी मूर्तियों को तोड़ने, उनकी स्त्रियों का अपहरण करने तथा उनसे जजिया कर लेने की मान्यता देता था।

राज-धर्म होने के कारण भी इस्लाम धर्म सबल था। उसकी कट्टरता तथा धर्मान्धता से हिन्दू जनता त्रस्त हो गई थी। हिंदू राजाओं की आपसी प्रतिद्वन्द्विता तथा विलासिता ने प्रजा में अरक्षित होने का भाव उत्पन्न कर दिया। हिंदुओं के सामने ही उनके देव मन्दिर गिराये जाते थे तथा वे मूर्तियाँ जिनकी शक्ति में उन्हें *विश्वास था, निर्दयतापूर्वक* तोड़ी जा रही थीं। ब्राह्मणों का जीर्ण-शीर्ण धर्म उनकी रक्षा करने में असमर्थ हो रहा था। अपने तथा अपने राजाओं को अशक्त देखकर हिंदू जनता इन आततायियों को दण्ड देने के लिए परमेश्वर पर ही आश्रित रही।

हिंदू धर्म तथा इस्लाम धर्म की विषमताओं ने दोनों को ही दो छोर पर रखा था। एक बहु देवी-देवतावादी था तो दूसरा शुद्ध एकेश्वरवादी। एक मूर्ति पूजा पर विश्वास करता था तो दूसरे के धर्म का आदेश मूर्तियों का विध्वंस करना था। एक जाति-पाँति का सकीर्ण भेद-भाव रखता था तो दूसरा इस्लामी भ्रातृत्व में

अटूट श्रद्धा रखता था। एक कर्म-कांड का पोषक था तो दूसरा उसका कट्टर विरोधी, इस प्रकार एक उत्तरी ध्रुव पर था तो दूसरा दक्षिणी ध्रुव पर। अतः दोनों में समन्वय सम्भव नहीं था।

हिन्दू समाज अपनी त्रुटियों के कारण स्वयं निर्बल था। जाति-पाँति ने उसका प्रत्येक अंग छिन्न-भिन्न कर दिया था। उसकी सामाजिक एकता नष्ट हो चुकी थी। शूद्रों का समाज में कोई आदर नहीं था। अतः वे भी असन्तुष्ट थे। बहु देवी-देवता वाद तथा कर्म-काण्ड के उलझन के कारण हिन्दू मानव मन इधर-उधर भटक रहा था। ऐसे कुसमय में उनकी मूर्तियाँ, देवी-देवता तथा तन्त्र-मंत्र मुसलमानों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर रहे थे, अतः उनकी आस्था इन पर से हटती जा रही थी और वे त्रस्त होकर अपनी रक्षा के लिये भगवान की शरण की अपेक्षा करने लगे थे।

न तो मुसलमान ही भारत से निकाले जा सकते थे और न हिन्दू ही पूर्णतया विनष्ट किये जा सकते थे, दोनों को एक साथ रहना था। कुछ चिन्तकों ने अनुभव किया कि उन समस्त बुराइयों को दूर कर दिया जाय जिससे धार्मिक विद्वेष को प्रोत्साहन मिलता है और एक मध्यम मार्ग निकाला जाय जो सर्व मान्य हो। समन्वय की इस भावना के पोषक हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही थे। अधिक दिन एक साथ रहने के कारण वे एक-दूसरे को समझने लगे थे। धार्मिक विचारों के आदान-प्रदान के फलस्वरूप एक ऐसे मत का प्रादुर्भाव हुआ जो आगे चलकर परिवर्तित तथा संशोधित रूप में "संत मत" के नाम से विख्यात हुआ।

ईसा के पांच सौ वर्ष पूर्व में ही वैष्णव धर्म भी धार्मिक सुधार की इस भावना से प्रभावित हुआ। वह देश-काल के अनुसार रूप बदलता हुआ पांच-रात्र धर्म या भागवत धर्म में परिवर्तित हो गया और कालान्तर में शंकराचार्य के अद्वैतवाद तथा मायावाद के संसर्ग में आकर श्री सम्प्रदाय के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा जिसके प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य थे। बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय सहजयान के रूप में आ गया और गोरखनाथ का नाथपंथ उससे प्रभावित होकर अन्य प्रचलित धर्मों पर अपना प्रभाव डाल रहा था। दक्षिणी भारतवर्ष में पंढरपुर तथा उत्तरी भारतवर्ष में ब्रज-मंडल तथा जगन्नाथपुरी धार्मिक सुधार के प्रधान केन्द्र बन रहे थे। सम्पर्क एवं सत्संग के कारण वारकरी, निम्बार्क, वैष्णव तथा नाथ सम्प्रदाय एक दूसरे को प्रभावित कर रहे थे। अज्ञान में ही एक ऐसे पंथ का निर्माण हो रहा था जो सर्वमान्य तथा सर्वग्राह्य था परन्तु अर्द्ध-विकसित अवस्था में था।

फारस से आया सूफी मत भी इसको प्रभावित कर रहा था। सूफी साधना में प्रेम की प्रधानता है। उस प्रेम को, उसके विरह तथा मिलन दोनों पक्षों को, इस मत पर थोड़ी सी छाया पड़ी हुई है। सूफियों का सदाचरण पर अधिक भरोसा है।

अतः सन्तों की रचनाओं में हृदय की शुद्धता, मन की निष्कपटता तथा आचरण प्रवणता पर इन्हीं सूफियों का प्रभाव समझना चाहिये। अनुभूति पर आधारित प्रेम अन्त में दाम्पत्य भाव में परिवर्तित हो जाता है और इस प्रकार रहस्यवाद का सृजन होता है। संत-साहित्य का रहस्यवाद भी अधिक अंशों तक सूफी मत की देन है।

इस प्रकार इस संत मत में नाना प्रकार के धर्मों, दर्शन-शास्त्रों तथा रहस्य-वादी पद्धतियों का समावेश है। इस पर बौद्ध-धर्म का निर्वाण, वैष्णव धर्म की भक्ति, सूफी-मत का प्रेमात्मक रहस्यवाद, नाथ-पंथ का योग तथा उपनिषद इत्यादि सबका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कुछ असल रूप में और कुछ परिवर्तित तथा प्रच्छन्न रूप में। संतों ने सब धर्मों तथा सम्प्रदायों का सार अंश ले लिया था।

इस प्रकार की भावनाओं को मान्यता देने वाले पूर्ववर्ती संत कहे जाते हैं। उन्होंने केवल उसकी भूमिका तैयार कर दी थी जो कबीर के समय पूर्ण हुई और आगे चलकर पल्लवित तथा पुष्पित हुई। संत-परम्परा के प्रारम्भ काल में लगभग सम्वत् १०००-१३०० तक जितने संत हुए हैं उनकी उपलब्ध रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि उनको बौद्ध धर्म की साधनाओं पर विश्वास था और कुछ उसमें विशेष प्रभावित तथा आकर्षित थे। साथ ही साथ उनकी साधना पर वैष्णव धर्म का भी विशेष प्रभाव था। वे सगुणोपासक थे और अवतारवाद तथा मूर्ति पूजा पर विश्वास रखते थे। उनकी रचनाओं में शुद्ध संत मत की भावना प्रच्छन्न रूप में इतिवृत्तात्मक ढंग से वर्णित मिलती है। इस समय पाये जाने वाले संतों की संख्या भी बहुत कम है और संत नामदेव को छोड़कर सुव्यवस्थित रूप से अपने मार्ग को प्रकाशित करने की क्षमता सम्भवतः किसी में भी दृष्टिगोचर नहीं होती। संत नामदेव, जयदेव, त्रिलोचन तथा वेनी ही संतों की श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं।

इन पूर्ववर्ती संतों ने एक बहुत बड़ा काम किया। उन्होंने परम्परा से आते हुए सामाजिक तथा धार्मिक दोषों को जनता के सामने रक्खा। कभी-कभी उनमें सुधार लाने की आवश्यकता पर जोर दिया और कहीं-कहीं अपना सुझाव भी रक्खा। इनकी आलोचना में किसी कटु शब्द का प्रयोग किसी अन्य भावना से नहीं हुआ, बल्कि उनमें सुधार लाने की उत्कट अभिलाषा तथा उत्साह निहित है।

संत-मत को विशुद्ध रूप प्रदान करने वाले महात्मा कबीरदास से ही संत परम्परा का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। इन्हीं ने एक कुशल माली की भाँति इसे सुव्यवस्थित बनाया। यद्यपि वे पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु वे पर्यटक थे और काशी नगरी में रहने के कारण बहुश्रुत थे। संकीर्ण विचारधारा के न होने के कारण उन्होंने पूर्ववर्ती संतों द्वारा प्रचलित मध्यम मार्ग को प्रशस्त किया ताकि वह अत्यधिक सर्व-मान्य और सर्वग्राह्य हो तथा अत्यन्त सरल और सर्वसुलभ हो।

उन्होंने एक ऐसे ब्रह्म की कल्पना की जो हिन्दू धर्म के ईश्वर से और इसलाम धर्म के खुदा से भिन्न था। जो निर्गुण तथा सगुण दोनों से भी परे था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में सामाजिक तथा धार्मिक दोषों की आलोचना की। धार्मिक विद्वेष फैलाने वाले मुल्ला तथा पंडित दोनों को फटकारा और बाह्याडम्बरों की तीव्र आलोचना करके तथा विचित्र ब्रह्म की कल्पना से इन दोनों के झगड़े को मिटाने का प्रयत्न किया। शंकराचार्य की अद्वैत भावना से प्रभावित होते हुए भी वैष्णव भक्ति पर बल दिया। मूर्ति-पूजा तथा अवतारवाद का खंडन किया और इस प्रकार संत-मत के इतिहास में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया।

उन्होंने नाथ-पंथियों के शून्य, सहज तथा समाधि को स्पष्ट किया। इस प्रकार महात्मा कबीरदास ने जिस मत की प्रतिष्ठा की वह सब प्रचलित धर्मों का सम्मिलित तथा परिमार्जित रूप कहा जा सकता है। उन्होंने अपने मत को सरल तथा स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया जिसके कारण वे हिन्दी-साहित्य में मुख्य साधक के साथ कवियों में भी श्रेष्ठ गिने जाते हैं।

इनके समकालीन संत धन्ना, पीपा तथा रैदास हैं। इनकी जो भी रचनायें उपलब्ध हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि ये उच्च तथा सफल कवियों की श्रेणी में नहीं आ सकते।

कबीर साहब के समय न तो बानियाँ संगृहीत होती थी और न उनका प्रचार ही सुनियोजित ढंग से किया जाता था। सतसंग के द्वारा ही उनकी रचनायें सुरक्षित रहती थी और मनुष्य उससे प्रभावित हो जाया करते थे तथा इसी माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान भी हो जाया करता था। कबीरदास ने स्वयं ही किसी पंथ का प्रचार नहीं किया था और न इस बात का ही पता लगता है कि उन्होंने किसी को इस कार्य के लिये चुना भी हो। उनकी मृत्यु के पश्चात भले ही उनके चेले धर्मदास तथा अनुयायियों ने इसे कबीरपंथ की संज्ञा दी और विधिवत इस पंथ का प्रचार प्रारम्भ किया।

विक्रम् की सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पंथ निर्माण की भावना का सूत्रपात हुआ। इसके पहले न कोई मठ था और न प्रचार केन्द्र ही था और न परम्परागत शिष्य बनाने की प्रथा ही थी। इस काल में गुरु नानक ने अपने मत के प्रचार के लिये अंगद को अपना शिष्य बनाया और उनको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। उन्होंने अंगद को नानक पंथ के प्रचार के लिये आदेश दिया। संत दादू दयाल ने राजस्थान में दादू पंथ की स्थापना की और इस मत का प्रचार सुव्यवस्थित रूप से प्रारम्भ भी हो गया। वहीं पर हरिदास निरंजनी ने निरंजनी सम्प्रदाय की नींव डालकर उसके प्रचार की समुचित व्यवस्था की। इस प्रकार यह पंथ निर्माण

का काल कहा जा सकता है। हो सकता है इसी समय कबीर के शिष्यों ने भी कबीर पंथ की नींव डालकर इसका वृहद् प्रचार किया हो।

पंथ-निर्माण की इस भावना से साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ तथा इसमें संकीर्णता आ गई, परन्तु इससे इतना लाभ अवश्य हुआ कि संतों की वाणियाँ लिखित रूप में मठों तथा प्रचार केन्द्रों में सुरक्षित रहने लगीं। इस समय के साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि एक ही प्रकार की विचार भावना रखने वाले संतों की रचनाएँ एक ही ग्रन्थ में संगृहीत मिलती हैं। गुरु ग्रन्थ साहब में नानक के पद भी संगृहीत हैं और संत कबीरदास के भी। संत-मत का अधिक प्रचार होने के कारण इसका प्रचार-क्षेत्र भी विस्तृत होता गया और इसके साहित्य में स्थानीय भाषाओं का भी समावेश होता गया।

इस काल के मुख्य विचारक दादूदयाल तथा नानक हैं। दादूदयाल की समस्त रचनाएं साखी तथा शब्दों में अविवाद रूप से मिलती हैं। इनके साहित्य में मधुरता अधिक है तथा महात्मा कबीर से कदाचित अनुभूति भी अधिक है। उस ब्रह्म की अनुभूति का वर्णन जिस सजीवता तथा तन्मयता से उन्होंने किया है, वैसा अन्यत्र मिलना कदाचित कठिन है। विरह में निर्गुण ब्रह्म सगुण हो गया है।

पंथ-निर्माण की इस बलवती भावना ने अन्य संतों को भी प्रभावित किया और अपना अलग व्यक्तित्व स्थापित करने के लिए विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में एक बाढ़-सी आ गई। फलतः इस समय मलूक पंथ तथा बावरी पंथ का भी श्रीगणेश हुआ। इतना ध्यान में रखना होगा कि सबकी साधना-पद्धति मौलिक रूप से एक ही थी। केवल बाह्याचार, पूजा-पद्धति तथा वेश-भूषा के आधार पर ही विविध-पंथों का निर्माण हो रहा था।

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी को संत-साहित्य का स्वर्णकाल कह सकते हैं। दरियादासी-सम्प्रदाय, दरिया-पंथ, गरीब-पंथ तथा बावरी-पंथ का पूर्ण विकास इसी समय हुआ। पलटूदास का प्रादुर्भाव इसी शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ था। उन्होंने बावरी पंथ के प्रसिद्ध संत गुलाल साहब के नाम पर एक अलग पंथ का नामकरण किया है और उसे "गुलाल पंथ" की संज्ञा दी है[1]। कदाचित इस समय 'गुलाल पंथ' के नाम से एक अलग पंथ बन चुका था जो अपने मूल से पृथक अस्तित्व रखता था।

नाना प्रकार के पंथों तथा सम्प्रदायों के अतिरिक्त इस काल में संत साहित्य में भी वृद्धि हुई और पंथों में स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होने लगा। सबकी साधना-पद्धति

१. रामगुलाल का पंथ यह, भुड़कुड़ा शुभ स्थान।
पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२७:१२४।

में अन्तर आ गया और पंथ की विशिष्टता तथा अस्तित्व की रक्षा के लिये निश्चित दिनचर्या, वेश-भूषा, तथा पूजा-पद्धति अपना ली गई। संतों ने अ ने को पूर्ववर्ती संतों का अवतार घोषित किया। यही भावना गुरु सम्बन्धी भावना में भी थी। दरिया साहब तथा गरीबदास ने कबीर को अपना गुरु माना तथा चरणदास ने शुकदेव को। पलटू दास ने अपने को कबीरका अवतार घोषित किया और इतना ही नहीं, गुलाल साहब भी कबीर के गुरु रामानन्द के ही अवतार कहे जाते हैं[1]। इस काल की मुख्य विशेषता समन्वय की भावना है जो युग की मांग थी। यारी साहब ने सूफी मत और वेदान्त का सम्मिश्रण किया। यारी साहब ने अपनी साधना में सूफी साधना को स्थान दिया। ऐसा करने से संतमत का प्राचीन रूप ही बदल गया और अधिक सांप्रदायिकता तथा समन्वयवादिता के कारण वह भिन्न प्रतीत होने लगा। इस काल के संत कवियों ने नवीन छंदों में रचना की और साहित्य का कलेवर भी अधिक बढ़ गया। इस काल की महत्ता का वर्णन करते हुए भी परशुराम चतुर्वेदी ने ठीक ही कहा है कि यह काल संतों में समन्वय की प्रवृत्ति, साम्प्रदायिकता की भावना तथा साहित्यिक अभिरुचि की वृद्धि आ जाने के कारण उनके विविध साहित्य निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया[2]।

जिस संत मत का प्रादुर्भाव बाह्याडम्बरों तथा कर्म काडों के विरुद्ध हुआ था उनको फिर से मान्यता देकर कुछ संतों ने इसको दिशा ही मोड़ दी और यह प्राचीन धारा से अधिक भिन्न प्रतीत होने लगा। धर्म ग्रंथों की पूजा प्रचलित हो गई। कबीर पंथ का 'बीजक', सिक्ख धर्म का 'आदि ग्रन्थ', दादू पंथ का 'अग वधू' इत्यादि ग्रंथ पंथ के आदर्श ग्रंथ बन गए थे। इस काल की रचना पर शास्त्रीय प्रभाव दिखाई देता है। प्राचीन संत साखी तथा शब्द में कविता लिखते थे, परन्तु अब चौपाई, अरिल्ल, रेखता, कुंडलियाँ तथा सवैया इत्यादि विविध छंदों का भी प्रचलन हो गया।

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों के आगमन के साथ-साथ भारतीय संस्कृति तथा धर्म का भी पाश्चात्य ढंग से अध्ययन प्रारम्भ हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित साहित्य तक के गुण-दोष पर विचार होने लगा। उनकी देखा-देखी भारतीय विचारकों ने भी आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक पद्धति अपनाई। कबीरदास ने धर्म में फैले हुए बाह्याडम्बरों को दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न

१. कबीर पलटि पलटू भये, गोविंद रामानन्द।
पलटू साहेब की शब्दावली, पृष्ठ ३२२, १४५

२. संत काव्य। पृष्ठ ११६.

किया था, परन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् यही दोष उनके अनुयायियों में आ गये थे[1]। कुछ सन्तो ने तत्कालीन दोषों की ओर ध्यान आकृष्ट किया और सत समाज में फैली हुई कुरीतियों का विरोध किया। सुन्दरदास ने इसकी ओर सकेत किया है[2] और तुलसी साहब ने तो स्पष्ट ही कह दिया कि कबीर का मार्ग ही छूट गया है[3]। वे पथो के भी विरोधी थे और उन्होंने स्वय अपना पथ नहीं चलाया था। इसी समय राधास्वामी मत ने अपनी साधना-पद्धति का वैज्ञानिक ढग से विश्लेषण उपस्थित किया जिसमे दार्शनिक स्पष्टता के साथ-साथ साधना की भी सरलता है।

इधर पाश्चात्य समाज की तुलना में भारतीय समाज के कुछ दोष स्पष्टतया परिलक्षित होने लगे। फलस्वरूप उन दोषों को दूर कर उसमे आधुनिकता लाने के लिये प्रयत्न प्रारम्भ हो गया। राजा राममोहनराय तथा स्वामी दयानन्द ने परम्परागत धार्मिक तथा सामाजिक अध-विश्वासो के विरुद्ध प्रचार किया तथा सत-मत को भी प्रभावित किया। जो सत-साहित्य स्त्रियों की निन्दा से भरा पड़ा था उसमें स्त्रियो को पुरुषों जैसा अधिकार दिया गया और साधना क्षेत्र मे उनका समान अधिकार माना गया।

संत साधना एकांगिनी थी। उसमे मनुष्य के पूर्ण विकास की कोई व्यवस्था नहीं थी। संत कबीर तथा दादूदयाल ने मनुष्य की भीतरी शक्तियों के विकास के लिये नाना प्रकार के साधनों का प्रयत्न किया था, फलतः पथ-निर्माण की भावना से इसकी उन्नति मे बाधा उत्पन्न हुई, परन्तु इस काल मे यह प्राचीन भावना पुनः जाग्रत हुई और साधना के साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रवेश हुआ।

इस काल मे व्यक्तित्व के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया तथा विचार में स्वतन्त्रता भी आ गई। बुद्धिवाद के सहारे कुछ लोगों ने नास्तिकता को प्रोत्साहन दिया। कुछ सम्प्रदायों ने व्यवसाय भी प्रारम्भ कर दिया।

महात्मा गांधी तथा स्वामी रामतीर्थ ने अपने स्वतन्त्र धार्मिक विचार प्रगट किये और किसी पथ या सम्प्रदाय की स्थापना नही की। महात्मा गांधी ने पूर्ण मानव जीवन के आदर्श को जनता के सामने रक्खा और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे धर्म का समन्वय किया। "इन आधुनिक सतो के कारण विचार-स्वातन्त्र्य, निर्भीकता, विश्व प्रेम, अहिंसा, विश्व शान्ति एव विश्व नागरिकता जैसे नैतिक गुणों को अपनाने की एक बार पुनः प्रेरणा मिली[4]।"

१. कबीर की विचार धारा—त्रिगुणायत। पृष्ठ ४४०
२. उत्तरी भारत की संत परम्परा। पृष्ठ ६३६
३. भूठा पंथ जगत सब म्यूटा कहा कबीर सो मारग छूटा :घट रामायन
४—संत-काव्य। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ १६

(ब) बावरी साहिबा और उनके पंथ की परम्परा

ऊपर वर्णित संतों की इस परम्परा में बावरी पंथ का विशेष स्थान है। यह भारतवर्ष के प्रमुख पंथों तथा सम्प्रदायों में से एक है। जैसा कि आगे कहा जायेगा, इसका निर्माण काशी में हुआ था। फिर यह सुदूर दिल्ली में फैला और फिर एक बार पूर्व की ओर लौटा। इसके अनुयायी पूर्व में ही अधिक पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले तथा बिहार का पश्चिमी भाग इसके अन्तर्गत आते हैं।

इस पंथ के प्रवर्तक के विषय में दो मुख्य मत हैं। प्रथम मत पर विश्वास करने वाले यह कहते हैं कि इस पंथ के प्रवर्तक रामानन्द थे जो बनारस जिले के अन्तर्गत किसी पटना ग्राम के निवासी थे। इस पंथ के ग्रन्थों से भी इस बात की पुष्टि होती है। भुड़कुड़ा से प्रकाशित "महात्माओं की वाणी" के एक वंश-वृक्ष द्वारा भी ऐसी ही बात ज्ञात होती है। इतना ही नहीं, इस पंथ से सम्बन्धित प्रत्येक संत ने इसकी पुष्टि की है। कुछ लोगों का अनुमान है कि कबीरदास के गुरु प्रसिद्ध रामानन्द ही इसके प्रवर्तक थे। "उत्तरी भारत की संत परम्परा" के विद्वान् लेखक ने इस पर शंका प्रकट की है। रामानन्द का मृत्यु-काल सम्वत् १५०० के आस-पास माना जाता है। यह भी प्रसिद्ध है कि बावरी साहिबा अकबर की समकालीना थीं। अकबर की मृत्यु सम्वत् १६६२ में हुई। अतः बावरी साहिबा और रामानन्द की मृत्यु तिथि में लगभग १६२ वर्षों का अन्तर है। बावरी साहिबा स्वामी रामानन्द की चौथी पीढ़ी में आती हैं, अतः यह अन्तर सम्भव हो सकता है और इस मत के प्रथम प्रवर्तक इतिहास प्रसिद्ध रामानन्द ही हो सकते हैं।

द्वितीय मत के अनुसार इस पंथ की प्रवर्तिका बावरी साहिबा ही थीं कदाचित् यह मत 'कल्याण' के 'संत विशेषांक' पर आधारित है। इस अंक में बावरी साहिबा ही इसकी संस्थापिका मानी गई है, परन्तु इस मत की पुष्टि के लिए कोई उचित प्रमाण नहीं दिया गया। हो सकता है कि प्रथम तीन संतों द्वारा व्यक्तिगत साधना पर अधिक ध्यान देने के कारण पंथ निर्माण की ओर विशेष रुचि प्रदर्शित नहीं की गई हो, उन्होंने इसे सुव्यवस्थित रूप नहीं दिया हो और न ही इस पंथ का सुनियोजित प्रचार ही किया हो। हो सकता है कि इस पंथ

को कदाचित कोई प्रश्रय भी न मिला था। बावरी साहिबा एक उच्च कुल की महिला कही जाती हैं। ये भी सम्भव है कि उनका सम्बन्ध दिल्ली के किसी राज घराने से था[1] और इसी कारण हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही उनसे आकर्षित तथा प्रभावित थे। बावरी साहिबा के प्रयत्न से ही इसका प्रचार हुआ और एक सुव्यवस्थित रूप में आकर यह एक अलग पंथ बन गया जो बावरी साहिबा के नाम पर "बावरी पंथ" के नाम से विख्यात हुआ। इस प्रकार रामानन्द द्वारा प्रणीत इस पंथ ने बावरी साहिबा के समय अपना अलग अस्तित्व बना लिया।

कुछ लोग इसे सतनामी सम्प्रदाय कहते हैं। उनका कहना है कि यह सम्प्रदाय ब्रह्म को सत्य नाम से पुकारता है और उसी की भक्ति करता है[2]।

रामानन्द के शिष्य का नाम दयानन्द था जो पटना ग्राम के निवासी कहे जाते हैं। इनके विषय में विशेष ज्ञात नहीं है। इनके शिष्य का नाम मयानन्द कहा जाता है जो अज्ञात स्थान के निवासी थे और उन्होंने अज्ञात कारणवश अपने मत का प्रचार दिल्ली में करना अधिक उपयुक्त समझा[3]। इनके सम्बन्ध में भी विशेष ज्ञात नहीं है, केवल वंशावली में यह नाम सुरक्षित है। ये सब साधक थे, अतः न तो इनकी रचनाएँ उपलब्ध हैं और न इन्होंने इस पंथ का प्रचार ही किया।

'महात्माओं की वाणी' से ही ज्ञात होता है कि बावरी साहिबा मयानन्द की शिष्या थी। बाल्यकाल से ही अध्यात्म में इनकी विशेष रुचि थी। सत्य की खोज में इन्होंने दिल्ली स्थित समस्त संतों से सत्संग किया। ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने मयानन्द को समस्त संतों में सबसे योग्य समझा और इन्हीं को अपना गुरु स्वीकार किया। अनुमान किया जाता है कि इनका आविर्भाव प्रसिद्ध सम्राट् अकबर के समय अर्थात् सम्वत् १६६२ के आस-पास हुआ था और दादू दयाल तथा हरिदास निरंजनी इनके समकालीन थे[4]। महात्माओं की वाणी में इनका एक चित्र प्रकाशित है जिसके देखने से ज्ञात होता है कि ये एक सफल साधिका थी।

बावरी का अर्थ पगली होता है। यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका मूल नाम बावरी नहीं था। साधक भगवान् के ध्यान में इतना लीन हो जाता

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा......पृष्ठ ४७६।

२. महात्माओं की वाणी......जीवन चरित्र।

३. भुड़कुड़ा जिला गाजीपुर के महंत रामवरन दास इस पंथ को सतनामी सम्प्रदाय मानते हैं। उनका कथन है कि आज भी इस सम्प्रदाय के लोग अभिवादन तथा पूजा में सतनाम का प्रयोग करते हैं।

४. उत्तरी भारत की संत परम्परा......पृष्ठ ४७६।

है कि उसे अपने तन तथा मन की सुधि नहीं रहती है।' परमतत्त्व के वियोग में वह इतना व्याकुल हो जाता है कि उसके सारे कार्य विचित्र हो जाते हैं। परम-तत्व की अनुभूति के पश्चात् उसकी मनोदशा ऐसी हो जाती है कि साधारण सांसारिक मनुष्य उसे पागल या विक्षिप्त कहने लगते हैं। हो सकता है कि इस लोक के आकर्षण से दूर आध्यात्मिक जगत में चित्त के रम जाने से उनकी मनोदशा ऐसी हो गई हो और उनके स्वभाव में विचित्रता आ जाने के कारण उनका नाम बावरी पड़ गया हो। उनकी निम्नलिखित रचना से उनकी मनोदशा तथा नाम की सार्थकता पर प्रकाश पड़ता है :—

> बावरी रावरी का कहिये मन ह्वै के पतंग भरै नित भावरी।
> भांवरि जानहिं संत सुजान जिन्हें हरि रूप हिये दरसावरी॥
> सांवरि सूरत मोहनी मूरति देखकर ज्ञान अनन्त लखावरी।
> खावरी सौंह तिहारी प्रभु गति रावरी देखि मति बावरी'॥

बावरी साहिबा द्वारा रचित पदों के प्रकाश में न आने से इनका मत जानना कुछ कठिन है। फिर भी इनका साधना-पद्धति पर प्रकाश डालने वाला एक पद नीचे उद्धृत किया जा रहा है :

> अजपा जाप सकल घट बरते, जो जाने सोइ पेखा।
> गुरु गम जोति अगम घर वासा, जो पाया सोइ देखा।
> मैं बन्दी हौं परम तत्व की, जग जानत की भोरी।
> कहत बावरी सुनो हो बीरू सुरति कमल पर डोरी'।

अर्थात् सबके शरीर में स्वतः अजपा जाप की क्रिया हो रही है, परन्तु इस क्रिया को वही समझ सकता है जो इसका अनुभवी हो। उस ज्योति तथा परम तत्व की अनुभूति जब गुरु कृपा से होती है तभी साधक सफल होता है। बावरी साहिबा अपने शिष्य बीरू साहब को सम्बोधित करती हुई कह रही है कि ए बीरू ! मैं उस परम तत्व की दासी हूँ और यह संसार व्यर्थ ही मुझे पगली मानता है। वे कहती हैं कि सुरति को कमल में जोड़े रखना आवश्यक है।

इन पंक्तियों से उनकी साधना पर प्रकाश पड़ता है। उनकी साधना अजपा जाप पर निर्भर थी। उस परम तत्व या निर्मल ज्योति को गुरु की कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसे ही 'सुरति-शब्द योग' कहते हैं। इसमें माला इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं है।

---

१. महात्माओं की वाणी पृष्ठ १
२. महात्माओं की वाणी............पृष्ठ ८

बीरू साहब

बावरी साहिबा के इकलौते शिष्य का नाम बीरू साहब था। इनके विषय में बहुत कम ज्ञात है। इतना कहा जाता है, कि ये एक उच्च मुसलमान घराने के थे और बावरी की मृत्यु के उपरान्त दिल्ली में उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी बने। इनके रचित केवल तीन पद उपलब्ध हैं जो महात्माओं की वाणी में संगृहीत हैं। इनकी भाषा पर पूर्वी हिन्दी का प्रभाव है। क्योंकि बाभन, ग्रायल इत्यादि शब्दों के प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलते हैं[1]। इन शब्दों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका सम्बन्ध पूर्वी उत्तर-प्रदेश से अधिक रहा होगा।

अपने गुरु बावरी साहिबा की भांति बीरू साहब भी केवल एक साधक थे। इनकी साधना भी सुरति-शब्द योग पर आधारित थी। इसीलिये इन्होंने अपने हृदय के मध्य उस मोहनी मूरति का रूप धारण कर त्रिकुटी का ध्यान करने को कहा है। वहां पर मुरली की ध्वनि सुनाई पड़ती है[2]। बक नाल तथा अनहद को छोड़कर आगे बढ़ने पर ओंकार का श्रवण होता है। तत्पश्चात् प्रियतम के दर्शन होते हैं[3]।

यह जीवात्मा इस देश में परम तत्व के अनुभूति स्वरूप मोती चुनने के लिए आया था, परन्तु यहां पर मायावश होने के कारण अपना कर्तव्य भूल गया और गन्दे झील का जल ग्रहण करने लगा'''विषय-वासनाओं में लिप्त हो गया। बीरु साहब को सद्गुरु की कृपा से ही निज स्वरूप का ज्ञान हुआ और उन्हें मुक्ति मिल सकी[4]।

बीरू साहब का एक चित्र गुरुकुदा में सुरक्षित है। उस चित्र में उनके हाथ में तार का एक बाजा है। उससे ज्ञात होता है कि उन्हें संगीत से विशेष रुचि थी और वे भजन गाने के विशेष प्रेमी थे।

यारी साहब

यारी साहब, जिनका मूल नाम यार मुहम्मद कहा जाता है, बीरू साहब के शिष्य थे। कहा जाता है कि ये किसी शाही परिवार के शाहजादे थे और संसार की असारता तथा तज्जन्य विरक्ति के कारण इन्होंने सन्यास ले लिया था[5]। बीरू साहब

१. हंसा रे बाभन मोहि यहि घरा।
मोतिया चुगा हंसा ग्रायल हो।
महात्माओं की वाणी'''पृष्ठ १

२. महात्माओं की वाणी'''पृष्ठ २ पद ३

३. ,, ,, ,, ,, ,,

४. ,, ,, ,, पृष्ठ १ पद २

५. महात्माओं की वाणी''' पृष्ठ ख

की मृत्यु के बाद इन्हीं को दिल्ली की गद्दी मिली। इनकी समाधि दिल्ली में वर्तमान है। इनकी रचित 'रत्नावली' वेलविडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हो चुकी है जिसके सम्पादक ने इनका जन्म सम्वत् १७१५ और १७८० के मध्य किसी समय माना है।

यारी साहब मुसलमान थे। अतः इनकी भाषा पर फारसी का अधिक प्रभाव है। दिल्ली मे निवास करने तथा सूफी-संतों के सम्पर्क में रहने के कारण भी भाषा पर यह प्रभाव पड सकता है। इन्होने साखी, शब्द तथा रमैनी लिखी है। इनकी कविता मे फारसी का ककहरा तथा झूलना भी मिलता है।

साधना-पद्धति पर लिखने के अतिरिक्त इन्होने दार्शनिक तत्वों का निरूपण भी किया है। यह इस पन्थ के लिए नवीन देन है। इस प्रकार अब यह पन्थ केवल साधना प्रधान नही रह गया, बल्कि इसमे सिद्धांत भी स्थिर किये जाने लगे।

इन्होने ब्रह्म को अल्लाह भी कहा है। मुहम्मद साहब का नूर सबमें व्याप्त है। यह इस्लाम की मान्यता है जिसका मुख्य कारण इनका मुसलमान होना ही कहा जा सकता है। इनके अनुसार वह ब्रह्म, जिसे सतगुरु या सतपुरुष कहा जाता है, पिण्ड तथा ब्रह्माड सबमे व्याप्त है। वह ऊंचे से भी ऊंचा तथा दूर से भी दूर है[1]। उसका आदि, मध्य तथा अन्त कुछ भी नही है। वह अगम तथा अपार है[2]। वह ज्योति-स्वरूप ब्रह्म कहीं आता-जाता नहीं है[3]।

वह ज्योति स्वरूप ब्रह्म आंख, कान, नाक तथा मुंह बन्द करके त्रिकुटी पर ध्यान करने से दृष्टिगोचर होता है। वहां पर बिजली चमकती है। भवर गुफा में घुसने के बाद मोक्ष मिलता है[4]। सोहं शब्द श्रवण के पश्चात् जब यह जीव माया देश को टपाकर आगे बढ़ता है उस समय उसकी गति विहंगम की हो जाती है[5]। माया देश से आगे का दृश्य भी विचित्र है। वहा पर अहर्निश प्रकाश की सृष्टि होती है। अनहद शब्द सुनाई देता है तथा मोती बरसते हैं[6]।

केसो दास

यारी साहब के ५ शिष्य कहे जाते हैं। उनके नाम केशोदास, हस्त मुहम्मद, सूफी शाह, शेखन शाह तथा बुल्ला शाह हैं। ऐसा कहा जाता है कि केसो दास जाति

१. यारी साहब की रत्नावली···	पृष्ठ २	पद ५
२. ,, ,, ,, ,,	,, ६	पद १६
३. ,, ,, ,, ,,	,, १७	साखी १
४. ,, ,, ,, ,,	,, १२	पद ५
५. ,, ,, ,, ,,	,, ४	,, ११
६. ,, ,, ,, ,,	,, २	,, ८

के बनिया थे और दिल्ली में ही रहते थे। उनका जन्म काल संवत् १७५० और संवत् १८२५ के मध्य किसी समय कहा जाता है। इनकी रचनाओं का एक संग्रह "अमीघूंट" बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

उक्त संग्रह में इनके द्वारा रचित शब्द, रेखता, कवित्त तथा साखी इत्यादि संगृहीत हैं। भाषा पर फारसी का प्रभाव कम है। यारी साहब की भांति इन्होंने संसार की नश्वरता तथा ऐश्वर्य की अनित्यता की ओर संकेत किया है तथा समस्त माया-जन्य विकारों को त्यागने की सलाह भी दी है[1]।

इनका परम तत्त्व अद्भुत है। वह अलख, अभेद, अगम, अनेस तथा अविनाशी है। वह पृथ्वी तथा आकाश से परे निवास करता है। समस्त चराचर में यही विद्यमान है। जिस प्रकार एक पक्षी के निवास हेतु कई पिंजड़े हों उसी प्रकार एक ही आत्मा सबके शरीर में व्याप्त है[2]।

केसो दास की रचनाओं में रहस्यवाद का भी दर्शन होता है। उनका मन अपने अविनाशी दुल्हे पर न्योछावर हो जाता है। वह प्रियतम अत्यन्त प्रकाशमान है। करोड़ों सूर्य उसकी समता में नहीं आ सकते[3]। उसकी प्राप्ति में मनोविकार बाधक होते हैं, अतः इन्हें त्याग देना चाहिए। साराश यह है कि ज्ञान के द्वारा काम, क्रोध, मद तथा लोभ को नष्ट कर देना चाहिए[4]। इस प्रकार आत्म-शुद्धि के पश्चात् प्राण तथा अपान वायु को आसमान में स्थिर करके उस अनेस प्रियतम को देखा जा सकता है[5]।

शाह फकीर

यारी साहब के दूसरे शिष्य शाह फकीर की रचनाएँ पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हैं। 'महात्माओं की बाणी' में केवल ६ पद संगृहीत हैं। उन पदों में साखी तथा शब्द के अतिरिक्त एक झूलना भी है।

इनकी भाषा फारसी मिश्रित है। ये मुसलमान थे, अतः इनकी रचनाओं में फारसी शब्दों का बाहुल्य अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता है। उपलब्ध समस्त पद

		अंग	शब्द
१. केसो दास का अमी घूंट			
२. " " " "	पृष्ठ	१०	पद १६
३. " " " "	"	११	" ६
४. " " " "	"	४	" ३
५. " " " "	"	८	" १२
६. " " " "	"	८	" १३

साधना से ही सम्बन्ध रखते हैं। इनका मत है कि मन की एकाग्रता के बिना साधना आगे नहीं बढ़ सकती। मन एक ऐसा शक्तिशाली घोड़ा है जो किसी प्रकार स्थिर नहीं रह सकता। इसकी निर्मलता तथा एकाग्रता के पश्चात् ही सुरति को पकड़ कर त्रिकुटी पर ध्यान लगाने से साधक पाताल में पहुँच कर फिर सुमेर पर चढ़ता है। सात कमलों के पश्चात् अष्टदल कमल का दर्शन होता है परन्तु साधक का मुख्य कर्त्तव्य चन्द्रमा पर ध्यान लगाना है। उस ध्यान के पश्चात् अनहद नाद सुनाई देने लगता है और ज्योति-स्वरूप ब्रह्म के दर्शन होते हैं।

शाह फकीर की अन्य रचनाएँ प्राप्त न हो सकने के कारण इनके विषय में विशेष कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि ये पहुँचे हुए संत थे।

बुल्ला साहब

यारी साहब के एक शिष्य बुल्ला साहब ने भुड़कुड़ा जिला गाजीपुर में अपनी गद्दी स्थापित की। कहा जाता है कि इनका जन्म एक कुर्मी कुल में सम्वत् १६८६ में हुआ था और १७६६ में इनकी मृत्यु हुई। प्रसिद्ध है कि ये गुलाल साहब के हलवाहा थे और इनका प्रारम्भिक नाम बुलाकीराम था। ये अपने जमींदार गुलाल साहब के साथ दिल्ली आया जाया करते थे। एक बार संयोगवश यारी साहब से दिल्ली में ही इनकी भेंट हो गई। बुलाकीराम इनसे प्रभावित होकर उन्हीं द्वारा दीक्षित हो गये और कालान्तर में एक सिद्ध संत माने जाने लगे। गुलाल साहब को अकेले ही घर आना पड़ा। एक दिन लोगों ने भुड़कुड़ा के पूरब और राम वन में इन्हें घूमते हुए देखा। गुलाल साहब ने फिर इन्हें हलवाही पर लगा दिया परन्तु बुला की राम की साधना अहर्निश अटूट चलती थी और अजपा जाप में सर्वदा लीन रहते थे। एक बार गुलाल साहब ने हल चलाना छोड़कर इन्हें खेत की मेंड़ पर बैठे हुए देखा। और क्रोध में बुलाकीराम को एक लात मारी। ऐसा कहा जाता है कि बुलाकी राम के हाथ से दही छलक गया। उन्होंने कहा कि मैं सन्तों को दही परस रहा था और आपने लात मार कर उसे गिरा दिया। गुलाल साहब इस घटना से प्रभावित हुए और अपने हलवाहे को अपना आध्यात्मिक गुरु स्वीकार किया।

बुल्ला साहब की कुछ रचनाओं का संग्रह "शब्द सार" बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित है और कुछ पद महात्माओं की वाणी में संगृहीत हैं। उन्होंने सुरति-शब्द योग का उपदेश दिया है। ये सुखमन को डोरी बनाकर, कन्दरा में घुसकर, प्राण को

---

१. बुल्ला साहब का शब्द सार जीवनी

उलटकर अनहद नाद श्रवण करने का उपदेश देते हैं। इनकी साधना-पद्धति पर निम्न लिखित पद से प्रकाश पड़ता है।

सुखमनि सुरति डोरि बनाव।
मेटिहे सब कर्म जिय के, बहुरि इनहिं न आव।
पैठि अन्तर देखु कंदर, जहाँ जिय को वास।
उलटि प्रान अपान भेटों, सेत शब्द निवास।
गंग जमुना मिल सरस्वती, उमगि सिन्धर बहाव।
लवकति बिजली दामिनी, अनहद गरज सुनाव।
जीती आपा आपही गुरु, चारि शब्द सुनाव।
तब जानि बुल्ला भक्ति ठानो, सदा रामहि गाव।
(बुल्ला साहब का शब्द सार पृष्ठ १ पद २)

उन्होने उस श्वेत प्रकाशमय शब्द ब्रह्म का वर्णन "झलकि-झलक निर्गुन के जोती कोटिक भानु उदय छवि होती" के रूप मे किया है। इनके समय इस पन्थ पर शास्त्रों का प्रभाव भी लक्षित होता है। भाषा पूर्वी हिन्दी मिश्रित है।

बुल्ला साहब का एक चित्र भुड़कुड़ा मठ मे सुरक्षित है। इनके हाथों पर दो पक्षी बैठे हुए हैं जिनका मुँह एक दूसरे के सम्मुख है। पता नही ये आत्मा परमात्मा के मिलन के द्योतक है या सूर्य तथा चन्द्र नाड़ियों के एकीकरण के।

गुलाल साहब

बुल्ला साहब के दो शिष्य कहे जाते है। इनके एक शिष्य जगजीवन साहब ने कोटवा मे सत्यनामी सम्प्रदाय का प्रचार आरम्भ किया, परन्तु इनके द्वितीय शिष्य गुलाल साहब ने मूल पथ का संगठन भुड़कुड़ा में रहकर ही किया। गुलाल साहब संवत् १७६६ मे गद्दी पर बैठे और सम्वत् १८१६ मे इनकी मृत्यु हो गई। ये जाति के क्षत्रिय थे और भुड़कुड़ा जिला गाजीपुर के निवासी थे और बुलाकीराम से प्रभावित होकर संत बन गये थे।

गुलाल साहब के बहुत से पद उपलब्ध हैं। कुछ पद महात्माओं की बाणी में संगृहीत हैं और कुछ गुलाल साहब की बानी मे। यद्यपि इस पन्थ की रूप-रेखा कुछ परिवर्तित होती जा रही थी और उस पर वेदान्त का प्रभाव पड़ता जा रहा था, परन्तु इस मत की शुद्ध अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं से प्रकट होती है। आसन, प्राणायाम, सुरति, निरति तथा उस प्रकाश स्वरूप ब्रह्म को देखने के लिए योग मार्ग का सहारा लिया गया है। इनकी रचनाओं पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा है।

परम तत्व को प्रियतम मानकर तथा उसके वियोग में विह्वल होकर भावातिरेक में गुलाल साहब रहस्यवादी क्षेत्र में भी आ जाते हैं। उस परम तत्व की अनुभूति तथा उससे प्राप्त परमानन्द का वर्णन भी उनकी रचनाओं में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। उस आध्यात्मिक आनन्द की वर्षा का, उसकी बूंद का, प्रियतम की प्रीति तथा आह्लाद का तथा झिलमिल दृश्य का वर्णन अत्यन्त मार्मिक है :—

> आजु भरि बरसत बूंद सुहावन।
> पिय के रीति प्रीति छवि निरखत॥
> पुलकि पुलकि मन भावन।
> सुखमन सेज जे सुरति सवारहिं॥
> झिलमिल दरस दिखावन।
> गरजत गगन अनन्त शब्द सुनि॥
> पिया पपीहा गायन।
>
> (गुलाल साहब की बानी : पृष्ठ ३५)

वैष्णव भक्त की भाँति गुलाल साहब ने कई स्थानों पर भगवान् से दया की भीख मांगी है। इन्होंने यत्र-तत्र ब्रह्मतत्व का निरूपण भी किया है। इससे ज्ञात होता है कि गुलाल साहब के समय इस पथ की रूप-रेखा निश्चित हो रही थी तथा सिद्धांतों का प्रतिपादन भी आरम्भ हो रहा था।

गुलाल साहब की रचनाओं का संग्रह "गुलाल साहब की बानी" बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित है और उनके कुछ पद महात्माओं की बानी में संगृहीत हैं। इनकी भाषा पर पूर्वी हिन्दी का प्रभाव अधिक है। इनकी रचनाओं में गेय पद भी पाये जाते हैं।

भीखा साहब

गुलाल साहब की मृत्यु के उपरान्त इनके शिष्य भीखा साहब भुड़कुड़ा की गद्दी पर बैठे। ये खानपुर बोहना तहसील मुहम्मदाबाद जिला आजमगढ़ के निवासी एक चौबे ब्राह्मण थे[1]। कहा जाता है कि बाल्यावस्था से ही इनका परमार्थ और साधु सेवा का इतना उत्साह था कि १२ वर्ष की उम्र में घर त्याग कर पूरे गुरु और सच्चे संत की खोज में काशी गए। वहां कुछ न पाकर लौटे। रास्ते में पता लगा कि भुड़कुड़ा में एक संत अभ्यासी सिद्ध महात्मा गुलाल साहब हैं। वे भुड़कुड़ा आकर गुलाल साहब से दीक्षित हो गए[2]।

---

१. गुलाल साहब की बाणी — पृष्ठ ८ : पद १४

२. वही — ,, १४,१५

इनकी बनाई गई कई पुस्तकों का पता चलता है, जिनके नाम राम-कुंडलिया, राम सहस्र नाम, राम सबद, राम राग, राम कवित्त तथा भक्त वच्छावली है[1]। इनकी रचनाओं का संग्रह भीखा साहब की बानी है। इसको बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ने प्रकाशित किया है। इनके कुछ पद महात्माओं की वानी में भी संगृहीत हैं। इनकी एक पुस्तक राम जहाज के नाम से भी विख्यात है जो अप्रकाशित है।

भीखा साहब ने जिस ब्रह्म का वर्णन किया है वह दृष्टि में अलग, अगम तथा अगोचर है। वह सबमें निवास करता है। उसके हाथ-पैर नहीं हैं। वह निरकार निरुपाधि तथा निरामय है। इतना ही नहीं वह :—

अगम अगोचर बसत निरंतर,
जाके सीस न पाव न पानी।
निर्गुन निर्विकार सुखसागर,
अपरंपार अखंडित बानी।
× × ×
निरकार निरुपाधि निरामय,
भीखा रूप न रंग निसानी।
(भीखा साहब की बानी : पृष्ठ ३१)

है। उस ब्रह्म की अनुभूति भी विचित्र है। उसका रूप भी विचित्र है तथा उस शब्द रूप ब्रह्म की समस्त गतियाँ भी विचित्र हैं। वहाँ झराझर बूंद टपकती हैं :—

यह तो बादर उठत चहूं दिसि,
बिबसहिं सूर छिपाई।
वह तो सुन्न निरंतर घुघुवत,
गरजि गरजि झरि लाई।
(भीखा साहब की बानी : पृष्ठ ३२)

उस ब्रह्म की प्राप्ति का साधन वही प्राचीन योग पद्धति है जिसमें प्राणायाम द्वारा वायु का स्तम्भन करके तदनन्तर वायु को सुषुम्ना के पथ से प्रवाहित किया जाता है :—

थाम्हें मूल पवन को धीरा,
जो नेकु गहै दिल धीरा।
दूजे घर तीजे तेज अपरबल,
चौथे वायु सन नीरा।

1. उत्तरी भारत की संत-परम्परा पृष्ठ ४८६

पथये अवाग दठे तम छोडो,
गतयें होइ मन थीरा।
अपरमपार वस्तु की जागह,
भीखा बांध फकीरा।
(भीखा साहब की बानी पद २३, पृष्ठ ७०)

इन्होंने सत्गुरु की महिमा, नाम, स्मरण, शुद्ध आचरण तथा इन्द्रिय निग्रह को महत्वपूर्ण माना है। ब्रह्म निरूपण, माया वर्णन, जीव वर्णन तथा अन्य प्रकार के आध्यात्मिक वर्णन शास्त्रीय पद्धति पर किये गये हैं। इस प्रकार भीखा साहब के काल में पंथ का गठन अधिक हुआ। सिद्धांतों के प्रतिपादन की शैली में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हो गई।

गेय पदों में, कवित्त तथा अरिल्ला में उनकी अधिक रचनाएँ मिलती हैं। कुछ पद तो होली तथा झूलना में भी मिलते हैं। अधिकतर पद गेय हैं। भाषा पर पूर्वीपन का प्रभाव अधिक है और तुक मिलाने के लिये शब्दों को तोडा-मरोडा भी गया है।

भीखा साहब के उत्तराधिकारी

भीखा साहब की मृत्यु के पश्चात् क्रमशः चतुर्भुज साहब, नरसिंह साहब, कुमार साहब, रामहित साहब तथा जयनारायण साहब भुड़कुड़ा की गद्दी पर बैठे। इन संतों के विषय में विशेष ज्ञान नहीं है। चतुर्भुज साहब ब्राह्मण थे और बनारस के किसी धारर्र नामक ग्राम के निवासी थे। भीखा साहब की भांति ये भी सत्गुरु की खोज में भुड़कुड़ा आये थे और भीखा साहब के प्रभाव में आकर उनके शिष्य बन गये थे। भीखा साहब की मृत्यु के पश्चात् सम्वत् १८४६ में उनके उत्तराधिकारी हुए। उनकी रचनाएँ इधर-उधर बिखरी पडी हैं। सम्वत् १८७५ में इनकी मृत्यु के पश्चात् नरसिंह साहब इनके उत्तराधिकारी हुए। ये जाति के राजपूत थे और गाजीपुर के किसी शेरनपुर नामक ग्राम के निवासी थे। सम्वत् १९०७ में इनकी मृत्यु के पश्चात् रामकुमार साहब इनके उत्तराधिकारी बने। ये भी जाति के राजपूत थे और तातिनपुर जिला बलिया के निवासी कहे जाते हैं। बलिया में लगने वाले ददरी मेले के समय अज्ञात कारण से विरक्त हो गए और किसी प्रकार से उनकी भेंट सिटवडागाँव के देवकीनन्दन साहब से हो गई। ये उन्हीं के प्रयत्न से भुड़कुड़ा चले गए। इनकी मृत्यु वहीं पर सम्वत् १९३६ में हो गई और इनके पश्चात् सम्वत् १९३६ में ही रामहित साहब भुड़कुड़ा की गद्दी पर बैठे थे। ये भी राजपूत थे और गेल्हुआ जिला बलिया के निवासी कहे जाते हैं। सम्वत् १९४९ में उनके देहान्त के

पश्चात् जयनारायण साहब अगले वर्ष गद्दी पर बैठे। ये भी राजपूत थे और बलिया जिले के ग्राम पतोई, के जो चरौंवा के निकट है, निवासी थे। ये अपनी भावना तथा सच्चरित्रता के लिए प्रसिद्ध थे। इनकी मृत्यु सम्वत् १९८१ में हुई और तत्पश्चात् रामचरन दास इनके उत्तराधिकारी हुए जो वर्तमान महंथ हैं। ये शिक्षा प्रेमी हैं। तथा समाज सेवा में लीन रहते हैं। इन्हीं के समय महात्माओं की बानी प्रकाशित हुई जिसमें बावरी साहिबा, यारी साहब, बुल्ला साहब, गुलाल साहब तथा भीखा साहब के पद गृहीत हैं।

हरलाल साहब तथा उनके उत्तराधिकारी

गुलाल साहब के दूसरे शिष्य हरलाल साहब ने अपने गांव चिटवड़ागाव, जिला बलिया में अपनी गद्दी को खड़ा किया। उन्होंने जो मठ बनवाया उसे आजकल राम शाला कहते हैं। ये राजपूत थे और ऐसा प्रसिद्ध है कि ये एक सिद्ध तथा निस्पृह संत थे। ये वृद्धावस्था में गद्दी पर बैठे और कुल ९ वर्ष उपरान्त सम्वत् १७८० में इनकी मृत्यु हुई।

ऐसा कहा जाता है कि कार्तिक पूर्णिमा के दिन गुलाल साहब गंगा और छोटी सरयू के संगम पर स्नान करने के लिए प्रत्येक वर्ष आते थे। उस समय यह संगम चिटवड़ा गाँव के पास ही था। वे रात के समय उसी स्थान पर ठहरते थे, जहाँ रामशाले के पास एक चबूतरा बना हुआ है। चिटवड़ा गाँव की अधिकांश जनता शैव थी और मांस भक्षण में विश्वास रखती थी। गुलाल साहब ने लोगों को सदुपदेश दिया और उस गांव के एक प्रतिष्ठित नागरिक दुनियाराय से एक पुत्र मांगा। उन्होंने सहर्ष एक पुत्र दे दिया जो बाद में हरलाल साहब के नाम से विख्यात हुए। हरलाल साहब ने वहीं पर अपना मठ स्थापित किया। वे एक सिद्ध सन्त थे और समस्त कौशिक वंश उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखता था।

सुनते हैं कि गाजीपुर के किसी नवाब ने एक बार चिटवड़ा गाँव पर आक्रमण किया और हरलाल साहब के पास जाकर अपनी विजय का वरदान मांगने लगा उन्होंने ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रगट की। फलस्वरूप क्रोध में आकर उस नवाब ने अपनी तलवार से इनकी गर्दन उड़ा दी। आज भी उनकी समाधि में सिर और धड़ के लिए दो स्थान बने हुए दिखाई देते हैं। हरलाल साहब ने अपनी मृत्यु के समय अपने उत्तराधिकारी को गृहस्थी में प्रवेश करने का आदेश दिया था। फलस्वरूप महंथ की मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र गृहस्थाश्रम से पृथक् होकर महंथ बनता है और तबसे एक संत का जीवन व्यतीत करता है।

हरलाल साहब की मृत्यु के उपरान्त इनके पुत्र गजराज साहब गद्दी पर बैठे और सम्वत् १८०५ में इनकी मृत्यु हो गई इनके पुत्र जियानन्द साहब इनके

उत्तराधिकारी बने। इनके विषय मे विशेष ज्ञात नही है। इनकी मृत्यु सम्वत् १८४८ में हुई थी। तत्पश्चात् इनके पुत्र देवकीनन्दन साहब गद्दी पर बैठे और सम्वत् १६४७ तक जीवित रहे। इनकी रचनाएँ उपलब्ध हैं।

देवकीनन्दन साहब के कोई पुत्र नही था। अत. उन्होंने अपने सम्बन्धी वनमाली साहब को गोद ले लिया था। ये राजपुर जिला आरा के निवासी थे। सम्वत् १६०३ मे इनको गद्दी मिली और सम्वत् १६२७ मे इनकी मृत्यु हुई। इनकी मृत्यु के उपरान्त सम्वत् १६७३ मे इनके पुत्र राजाराम साहब गद्दी पर बैठे और सम्वत् २०११ तक जीवित रहे। इनकी मृत्यु के उपरान्त गद्दी रिक्त रही और सम्वत् २०१८ मे इनके ज्येष्ठ पुत्र राधाकृष्ण साहब गद्दी पर बैठे। आज कल ये ही महथ हैं। इन आठो मतों की समाधियाँ चिटवड़ा गाव की रामशाला मे बनी हुई है।

देवकीनन्दन साहब ने स्वरचित एक भूलने मे चिटवड़ागाँव की शाखा की शिष्य-परम्परा का इस प्रकार वर्णन किया है।

हरी लाल रामजी भूलहि,
निशिदिन लियो ब्रह्म विचारा।
गजराजनन्द विमुक्त होय,
नित करत नाम उचारा।
जियन नन्द जेतधारी भूलहि,
कियो अलख दीदार।
भूलहि भक्त अनन्त अब,
जन देवकी किया पार।

(देवकी नन्दन साहब की बानी : अप्रकाशित)

इसी ग्राम के निवासी श्री हरिहर वर्मा ने इस परम्परा का वर्णन निम्नलिखित पद मे किया है:—

प्रथमे हर लाल साहब, ग्राम को ज्ञान दिये,
दूसरे गजराज साहब, राम गुण गायो है।
तीसरे राम जीवन साहब रामयश गायो तरे
चौथे तेजधारी साहब योग रस पायो है।
पाँचवे महथ देवकी नन्दन परम भक्त,
छटयें वनमाली साहब ब्रह्म ज्ञान लायो है।
सातवें व्रजमोहन साहब ब्रह्म मे ही लीन रहे,
आठवें महंथ राजा राम जी कहायो है।

रचनाएँ

चिटवडागांव की परम्परा में रचनाओं का अभाव है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस परम्परा के संतों ने व्यक्तिगत साधना को प्रधानता दी और साहित्य-निर्माण की ओर कम ध्यान दिया। यह भी सम्भव है कि इनमें से किसी में साहित्य-सृजन की क्षमता नहीं थी। जो हो, इन संतों में से केवल देवकीनन्दन साहब की रचनाएँ उपलब्ध हैं, परन्तु सब अप्रकाशित हैं। इन्होंने घट में ही आत्म रूप देखा है और उसको प्राप्त करने की विधि में उसी चाँद, सूर्य तथा सुषुम्ना का परम्परागत अनुकरण किया है।

> घट में आतम रूप लखो री।
> पान अपान मिलाय गगन में, अनहद नाद सुनो री॥
> चाँद सूर गति थकित भयो है, उलटि सुषमना बोरी।
> कोटि सूर ससि नूर बदन पर, पीवत दृष्टि चकोरी॥
> मनि मानक बरसत तहाँ हरदम, पुलकित हम चकोरी।
> जन देवकी सतगुरु बलिहारी, अरध उरध लै डोरी॥

(देवकीनन्दन साहब की शब्दावली अप्रकाशित)

तथा :

> इगल पिंगल घर राख, सुखमना साधि के,
> अरध उरध के मध्य, पवन को बाँधि के।
> कोटि सूर तहाँ नूर, त्रिवेणी आधि के,
> हरिहां देवकी त्रिकुटीक्येहि समाधि के।

(देवकीनन्दन साहब की शब्दावली अप्रकाशित)

यह भी शून्य, अनहद, सुरति तथा निरति इत्यादि का वर्णन रोचक ढंग से करते हैं और उस परम तत्त्व का अनुभव शून्य मंडल में दामिनी के गर्जन रूप में तथा उस परमानन्द के रस का वर्णन रिमझिम बरसते हुए अमृत की भाँति करते हैं।

इनकी साधना पर वैष्णव भक्ति भावना की गहरी छाप है और राम तथा कृष्ण के साथ राधिका की भी विनय सम्बन्धी पद तथा गीत इनकी रचना में पाए जाते हैं। इन्होंने नाना प्रकार के राग, शब्द, सवैया तथा कवित्त में रचना की है। भाषा पर पूर्वी हिन्दी का प्रभाव है। साहित्यिक दृष्टि से इनकी रचना अच्छी नहीं कही जा सकती। शब्द तोड़े-मरोड़े गये हैं और व्याकरण दोष के साथ वाक्य-रचना भी अव्यवस्थित है।

गोविन्द साहब

भीखा साहब के एक शिष्य का नाम गोविन्द साहब था। ये जाति ब्राह्मण थे और नगपुर जलालपुर जिला फैजाबाद के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम पृथुकर और माता का नाम दुलारी देवी कहा जाता है[1]। ये बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे और नित्य प्रति श्रीमद्भागवत पुराण का पाठ करते थे। इनकी जन्म तिथि अगहन सुदी १० दिन मंगलवार सम्वत् १७८२ मानी गई है।

सम्मत विक्रम रह बयासी,
सहस एक सत सात प्रकासी।
अगहन मास धरम सब माने,
तिहि पर मास कहँहि अगवाने।
दसमी तिथि हिम ऋतु सुखदाई,
शुक्ल पक्ष रवि उत्तर आई।
मध्य दिवस रह मंगलवारा,
तेहि दिन सतगुरु लिए अवतारा।
(गोविन्द साहब का जीवन चरित्र...पृष्ठ ८)

बाल्यकाल से ही गोविन्द साहब भक्त तथा संत सेवक थे। जहाँ कहीं भी संत मिल जाता था, उसे वे अपने घर ले आते थे और उसकी सेवा करते थे। उनकी माता ने जब विवाह की चर्चा की तो उन्होंने ऐसा करने से स्पष्ट इनकार कर दिया। कहा जाता है कि सर्वप्रथम ये राताराम के शिष्य बने। बाद में पलटूदास ने इन्हें राताराम से कृष्ण मंत्र लिया[2]। माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त इन्होंने एकान्त में जाकर साधना प्रारम्भ की और कृष्ण की पूजा में लीन रहने लगे। जनता की आस्था इन पर जमने लगी और उन्हीं की सहायता से इन्होंने वहीं पर एक तालाब भी बनवाया। कहा गया है कि इन्होंने मुसलमानों को भी दीक्षित किया और उन्हें अहिंसा का पाठ पढ़ाया। इस बात की चर्चा शाह तक गई और उसने इन्हें नाना प्रकार के कष्ट दिये। यहां तक कि पैरों को छिदवाकर तथा उसमें रस्सी पहना कर नगर भर में घसीटा। इनको मरा हुआ समझ कर अन्त में उसने इन्हें तमसा में फिंकवा दिया। ये भी कहा गया है कि चित्रुगाबाई ने वहाँ से इन्हें अपने घर लाकर इनका समुचित उपचार किया और अन्त में ये स्वस्थ हो गये। उधर अत्याचारी शाह

१. गोविन्द साहब का जीवन चरित्र पृष्ठ ५
२. ,, ,, ,, ,, १६
३. ,, ,, ... ,, ३०,३४

का इकलौता पुत्र मर गया और उस पर नाना प्रकार की विपत्तियाँ पड़ने लगी। बेगमे गोविन्द साहब के पास आकर रोने लगी तथा क्षमा याचना करने लगी। गोविन्द साहब ने इन्हें क्षमा कर दिया और बहुत कहने-सुनने पर शहजादी द्वारा वंश चलने का आशीर्वाद दिया[1]।

इनकी उपलब्ध रचनाएँ योग भास्कर, निर्णय सार तथा सत्यसार हैं, जिनमे गैबदास भिक्षु द्वारा संशोधित सत्यसार श्री बच्चा साहब जी स्थान जैराम पट्टी जिला बस्ती द्वारा प्रकाशित है।

'गोविन्द साहब का जीवन चरित्र' के अनुसार इनकी मृत्यु फागुन सुदी ११ दिन सोमवार सम्वत् १८७९ को तीन पहर दिन चढे हुई। इस प्रकार इनकी आयु लगभग ९७ वर्ष ठहरती है[2]।

गोविन्द साहब के अनुसार सब लोग सत्य की ही खोज करते हैं परन्तु सत्य को कोई सच्चा ही जान सकता है। घर छोड़कर लोग उसको खोजने के लिए जगल मे जाते हैं तथा समस्त परिवार को त्याग देते हैं। कुछ लोग गुरुओ के पास जाते हैं, कुछ वेद-शास्त्र तथा पुराण का अध्ययन करते हैं, बहुत से लोग व्रत तथा नेम करते हैं ताकि उस सत्य का पता लग सके। परन्तु वास्तव मे इनसे कोई लाभ नही है। अगर सत्य ज्ञान देने वाला सच्चा गुरु मिल जाय तो सहज स्वरूप की प्राप्ति हो सकती है।

उस सत्य स्वरूप के लिए नियमित भोजन, नियमित आसन तथा नियमित निद्रा की आवश्यकता है। अभिमान का त्याग, मन को एकाग्र करना तत्पश्चात गुरु द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करने से ही इस सत्य की प्राप्ति हो सकती है। सारांश यह है कि उन्होने यम-नियम के अनुसार चलकर उस अलख स्वरूप को त्रिकुटी मे देखने को कहा है। उसका रग उज्वल है तथा उसके स्थान पर शब्द की ध्वनि होती रहती है। दिव्य दृष्टि तथा विहगम गति से उस स्थान को प्राप्त किया जा सकता है[3]। उनके द्वारा वर्णित साधना-पद्धति पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वे सुरति शब्द योग के मानने वाले थे।

---

१. गोविन्द साहब का जीवन चरित्र··· पृष्ठ ३०,३४

२. अष्टादस सत समत उनासी,
फागुन सित पच्छ तिथि इकदासी।
तिपहर समय वार शशि वारा,
तजि तन गुरु निज देश पधारा।
(गोविन्द साहब का जीवन चरित्र···पृष्ठ···४१)

३. देखिए गैब दास भिक्षु द्वारा संकलित सत्यदेर तथा सत्यसार

गोविन्द साहब के शिष्य

गोविन्द साहब के शिष्यो की सख्या १२ कही जाती है। पलटू दास, बाके बिहारी, मोती दास, वेनी राम, राम चरन दास उर्फ बबुआ साहब, घनश्याम दास, कृपा दास, इच्छा दास, अवध दास, गोविन्द दयाल, थान दास तथा खड्ग दास उनके नाम हैं। किसी के जीवन वृत्त, जाति तथा जन्म-स्थान के विषय मे कही उल्लेख नहीं मिलता। कहा जाता है कि वेनी राम गोविन्द साहब के यहा ही जीवन पर्यन्त रहे और वही इनकी मृत्यु भी हुई। राम चरन दास भी गोविन्द साहब के साथ रहे। घनश्याम दास करहा जिला आजमगढ मे एक मठ की स्थापना करके वही रहने लगे। अवध दास ने मुबारकपुर जिला फैजाबाद मे रहकर अपने मत का प्रचार किया। कृपा दास ने करमा जिला इलाहाबाद मे अपना प्रचार केन्द्र स्थापित किया। उनकी कुछ कविताएँ भी उपलब्ध हैं। इच्छा दास कविता लिखने के प्रेमी थे और नगर जिला बस्ती मे उन्होंने एक मठ की स्थापना करके अपने मत का प्रचार करना प्रारम्भ किया। गोविन्द दयाल मेहदावल जिला फैजाबाद चले गये। थान साहब के विषय मे कुछ पता नही चलता। कहा जाता है कि किसी रुद्रगढ जिला गोंडा मे इनकी मृत्यु हुई और वे वही रहते भी थे। खड्ग दास खिडकी जिला गाजीपुर में जीवन-पर्यन्त रहे और वहीं इनकी मृत्यु हुई। बाके बिहारी, मोती दास और पलटू दास अयोध्या चले गये और वही रहने लगे। इन तीनों की समाधियाँ वहीं पर विद्यमान हैं।

=०=

द्वितीय अध्याय

संत पलटूदास की जीवनी एवं व्यक्तित्व

(१) जीवन विषयक सामग्री

(२) जीवन वृत्त

(३) व्यक्तित्व

जीवन विषयक सामग्री

अधिकांश सतों ने अपने विषय मे कुछ लिखना उचित नही समझा। अत उन की रचनाओ मे उनके जीवन वृत्त सम्बन्धी तथ्य अल्प मात्रा मे मिलते हैं। उनके शिष्यो, समसामयिक सन्तो तथा सेवकों ने जो कुछ लिखा है वह अपूर्ण तथा अप्राप्य है। मुद्रण कला की अनभिज्ञता से पाँडुलिपियाँ, जो अल्प सख्या मे थी, प्राय: नष्ट हो गई और अज्ञानतावश सग्रहकर्ताओ ने उन्हें असावधानी से रखकर विनष्ट कर दिया। ज्ञान की ज्योति जगाने वाले इन सतों की वानियाँ तथा जीवन वृत्त अन्धकार के गर्भ में विलीन हो गये।

सन्त पलटूदास के जीवन वृत्त का परिचय देने वाले पुष्ट प्रमाणों का प्राय अभाव है। न किसी सामयिक इतिहासकार ने इनके सम्बन्ध मे कुछ उल्लेख किया है और न तो किसी समकालीन सत ने ही इनके विषय मे कुछ लिखा है। इन्होंने अपने विषय मे प्रसगवश जो कुछ कह दिया है उसी पर सतोष करना पडता है। इनके शिष्यो ने भी इनके विषय में कोई महत्वपूर्ण चर्चा नही की है। ऐसा कहा जाता है कि इनके शिष्य हुलासदास ने केवल एक स्थान पर इनकी जन्म तिथि का निर्देश मात्र कर दिया है इनके 'ब्रह्मविलास' मे एक ऐसा दोहा उपलब्ध है जिससे इनकी मृत्यु के विषय मे कुछ चर्चा मिलती है, लेकिन उसमे पूर्णता नही है। इनके कथित अनुज तथा शिष्य पलटूपरसाद ने अपनी 'भजनावली' मे इनसे सम्बन्धी पदो की रचना की है जिनसे इनके जीवन के कुछ अ गो पर प्रकाश पडता है। गैव दास मिश्र द्वारा रचित 'गोविन्द साहब का जीवन चरित्र' नामक पुस्तक मे भी इनके सम्बन्ध मे प्रसंगवश कुछ कहा गया है। अतः इनका जीवन वृत्त अधिकतर किंवदन्तियो एवं जनश्रुतियो पर आधारित है। ऐतिहासिक सामग्री के अभाव मे इन पर विश्वास करने मे कुछ कठिनाई उपस्थित होती है।

जन्म-स्थान

संत पलटूदास का जन्म नगपुर जलालपुर ग्राम मे हुआ था जो फैजाबाद जिले के अन्तर्गत है। यह ग्राम आजमगढ तथा फैजाबाद जिलो की सरहद पर माती-

पुर स्टेशन से लगभग आठ मील उत्तर पूरब टौंस नदी के किनारे स्थित है। उन्होंने नगपुर जलालपुर के विषय में स्वयं लिखा है :—

> सहर जलालपुर मूंड मुड़ाइन,
> अवध तोरिन कर धनिया,
> पलटू दास सतगुरु बलिहारी,
> पाइन भक्ति अमनियां ।१।

इनके तथाकथित अनुज शिष्य पलटू परसाद ने भी एक स्थान पर इनके जन्म स्थान के विषय में लिखा है :—

> नगपुर जलालपुर जनम भयो है,
> बसे अवध की खोर ।
> कहे पलटू परसाद हो,
> भयो जगत में सोर ।।२।।

पलटूदास के कथन से इतना ही ज्ञात होता है कि नगपुर, जलालपुर में इन्होंने गुरु से दीक्षा ली थी। उक्त पद से इस स्थान के जन्म-स्थान होने की और कोई संकेत नहीं मिलता। परन्तु पलटू परसाद ने उक्त स्थान को उनकी जन्म-भूमि कहा है। हो सकता है कि वे यहीं के रहने वाले हों और यहीं पर दीक्षित भी हुए हों गोबिन्द मिश्र की रचना से यही निष्कर्ष निकलता है[3]

नगपुर जलालपुर में इनके जन्म स्थान पर एक मंदिर बना है जिसको महंथ लक्ष्मीदास ने लगभग ३० वर्ष पूर्व निर्मित कराया था। इस मंदिर में राम, लक्ष्मण तथा सीता की मूर्तियां स्थापित हैं।

जाति

यह निर्विवाद सत्य है कि संत पलटूदास मध्यदेशीय कान्दू बनिया कुल में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में कई स्थानों पर अपने को बनिया कहा है नगपुर जलालपुर में आज भी मध्यदेशीय कान्दू बनियों की बस्ती है, परन्तु पलटूदास के निकट सम्बन्धियों का कोई पता नहीं लगता। जाति सम्बन्धी कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं :—

---

१. पलटू साहेब की बाणी भाग ३ पृष्ठ ६७ पद ११८

२. पलटू परसाद की भजनावली (अप्रकाशित)

३. करि स्नान करहिं पुनि पूजा देखि तिहाई पलटू एकदूजा।
(गोविन्द साहिब का जीवन चरित्र पृष्ठ २४)

।१। बनिया जाति मैं अधम बड़ा ही पातकी[1]।
।२। पलटू दास एक बनिया रहे अवध के बीच[2]।
।३। बनियां ढोल बजाय रसोई दिया लुटाई[3]।
।४। समुझ देखु मनमानी पलटू निर्गुन बनिया[4]।
।५। कौन करे बनिया अब मोरे, कौन करे बनियाई[5]।
।६। देखो एक बनिया बौराना, ज्ञान की करे दुकान[6]।

गैंव दास भिक्षु ने भी प्रसगवश इन्हें बनिया ही कहा है। यह प्रसंग उस समय का है जब पलटू दास दीक्षित होने के लिए गोविन्द साहब के पास पहुंचते हैं और गोविन्द साहब उन्हें अपना जातीय व्यवसाय करने की सलाह देते हैं।

प्रेम परीक्षा हेतु कह, सुनु बान्दू की जाति।
करि वाणिज तन पालिये, तुमहिं न भगति सुहाति[7]।

व्यवसाय

ऐसा ज्ञात होता है कि अपने जीवन के प्रारम्भिक काल मे इन्होंने अपना जातीय धन्धा किया था। बनिया जाति के लोग अधिकतर मिठाई की दुकान करते हैं या गल्ले का व्यापार करते हैं। अपना सामान इधर-उधर ले जाने के लिए घोड़े या बैल का प्रयोग करते हैं। इनकी एक रचना से ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इनके पास भी एक बैल था जिस पर इनकी सामग्री लादी जाती थी। इनकी आर्थिक परिस्थिति ठोस नही ज्ञात होती। वैराग्य के उत्पन्न हो जाने के पश्चात् इन्हे अपने जातीय धन्धे से घृणा हो चली थी। अब बैल के लादने से इनका पहुँचा टूटने लगा। तौलने से हाथ मे दर्द होने लगा। बही लिखने से आखों में पीड़ा होने लगी। बोलते बोलते जीभ भी घिसने लगी। इन्होंने अपना काम धन्धा बन्द कर दिया। अपनी दुकान लुटा दी और गद्दी के स्थान पर धर्मशाला बनवा दी। चटाई के अभाव मे, सन्तो के आगमन पर धोती का ही प्रयोग होने लगा। इन तमाम परिवर्तनो के मूल में उनकी ससार से विरक्ति ही थी। उनको नश्वरता का ज्ञान हो गया था फलस्वरूप अपने बीते हुए कर्मों पर पश्चाताप भी करते थे। इस ससार के माया जाल से सतत

१. पलटू साहिब की बाणी भाग...२ पृष्ठ ८३ पद ११४
२. वही भाग...१ ,, २३ पद ५८
३. वही ,, ६६ पद २५५
४. वही भाग...३ ,, ३८ पद ११८
५ वही ,, ३८ पद ८१
६. वही ,, ७३ पद १३१
७. गोविन्द साहब का जीवन चरित्र पृष्ठ...२४

होकर ही उनकी यह मनोदशा हुई थी और उन्होंने अपने को पूर्णतः भगवान को अर्पित कर दिया था[1]। अन्त में उनको पूर्ण वैराग्य हो गया और घर बार छोड़कर विरक्त हो गये।

माता-पिता

वैराग्य लेने के समय इनके माँ-बाप जीवित थे। एक स्थल पर इन्होंने स्वयं लिखा है :—

पलटू की माता ठाढ़ी रोवै,
ऐ भैया तू जिन घर खोवै[2]।

पलटू दास की माता इसलिए रोती थी कि इनके संत हो जाने पर घर की परिस्थिति ही बिगड़ जायगी। इस समय उनके पिता भी जीवित थे और इनके वैराग्य लेने पर रोने लगे और इसे अपने कुल का नाश ही समझा :—

बाप हमारे रोइया, भई है कुल की नास।
पलटू बेटा एक था, सो हो गया हरि का दास[3]॥

---

१. खोलि न जाई ऐ माई मोसे खोलि न जाई गुप्त बात कुछ पाई।
एक ओर रोवे सेर पसेरी एक ओर रोवे अढ़ैया।
बिन उद्यम को खाये को देहैं, घर घर रोवे भैया।
छूटो दुकान सुटाय आदसे छूटो साहू का पैंठा।
छूटो खोद छूटो धर्मशाला, मैं तो मगन होइ बैठा।
साथ तराजू करौं रसोई, सन्तन केहां जेवाऊं।
घर में एक चटाई नाहीं, धोती फार बिछाऊं।
राम राय के करौं भरोसा, मन वच कर्म लगाई।
पलटू बैठा करै साहबी, झूठ मारी पहुंचाई।
(पलटू साहब की बानी……पृष्ठ……४८ पद १२६

२. वही पृष्ठ—११५ पद ३३३

३. होय न सके रोजगार अब मोसे, होय न सके कुछ।
दंत सदावन पहुँचा टूटा, लोचन हाथ गिराता।
कागद लिखन नैन भये आंधर, बोलत जीभ खिसाना॥
बहुत किहा परपंच जगत में, नजर नहीं कुछ पाया।
बुझ समुझि के हाथ सिकोरा, झूठी है यह माया।
जब आये तब रहे अकेला, उलटि अकेला जावे।
कौन करे रोजगार हमारे, हरि देहैं सो खावें॥
बंदा उठा जाय न हमसे, कुल से दूनी खाता।
पलटू दास भये बिन खाते, तिसको मैं पछताता॥
पलटू साहिब की शब्दावली……पृष्ठ ४८ पद १२७

इनके मां-बाप के नाम का पता नहीं है और न इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में ही कुछ ज्ञात है। घर-बार छोड़ने के पश्चात् इनकी क्या दशा हुई, यह भी ज्ञात नहीं है।

स्त्री

इनकी रचनाओं के कुछ पदों से ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि पलटू दास भी विवाहित थे। इनकी माता इस बात से चिंतित थी कि इनके वैराग्य लेने के पश्चात् बच्चों का पालन-पोषण किस भांति होगा :—

पलटू की मैया रोवै, करै विचारा।
को लरिकन के लगाई पारा[1]।

इनके वैरागी होने पर गृहस्थी डावाडोल हो गई थी और कदाचित भर पेट भोजन मिलना भी सम्भव न था। जब बच्चे भोजन मांगते थे तो पलटूदास उन्हें भजन करने का उपदेश देते थे :—

लरिकै कहै भूख लगी चच्चा,
पलटू कहै भजन करु बच्चा[2]।

भाई

जनश्रुति के अनुसार इनके अनुज का नाम पलटू परसाद है जो आगे चलकर इनके शिष्य हुए और इनकी मृत्यु के पश्चात् अयोध्या की गद्दी पर बैठे। परन्तु यह बात किसी ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित नहीं जान पड़ती। दो सगे भाइयों का एक ही नाम होना असम्भव नहीं तो अव्यवहार्य अवश्य है। दास तथा परसाद तो संत हो जाने के पश्चात् की उपाधियाँ हैं। उक्त जनश्रुति से तीन शंकायें उत्पन्न होती हैं :

१. दोनों एक ही व्यक्ति थे।
२. दोनों सगे भाई नहीं थे।
३. इनका सांसारिक नाम अन्य रहा होगा, पलटू नहीं।

प्रथम शंका सत्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरती, क्योंकि पलटूदास के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी उनके शिष्य पलटू परसाद ही कहे जाते हैं। पलटूदास की रचनाओं में इन दोनों के संवाद भी मिलते हैं जो अन्यत्र उद्धृत किये जायेंगे। स्वर्गीय पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने इन दोनों के विषय में शंका प्रकट की है और लिखा है कि सम्भवतः ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं और यह भी लिखा है कि भजनावली पलटूदास द्वारा रचित है[3]। परन्तु इसके लिये प्रमाण नहीं दिया गया है।

---

१. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ११४ पद ३६२
२. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ११५ पद ३३४
३. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृष्ठ ३२८ पद १३६

भजनावली के कुछ पद पलटूदास के हस्तलिखित ग्रन्थों में भी आ गये हैं और कदाचित उन्हीं को देखकर उन्हें संदेह हो गया था। इससे पलटूदास के अलग व्यक्ति होने में कोई बाधा नहीं उपस्थित होती है। अयोध्या में दोनों की समाधियाँ अलग-अलग वर्तमान हैं। जिससे साधिकार कहा जा सकता है कि दोनों भिन्न व्यक्ति थे।

जनश्रुति के अनुसार पलटूदास और पलटू परसाद दोनों सगे भाई थे। इस सम्बन्ध में पलटू दास कृत यह दोहा विचारणीय है—

बाप हमारे रोइया, भई है कुल को नास।
पलटू बेटा एक था, सो होइगा हरि का दास[1]।

तथा

एक ओर रोवे सेर पसेरी,
एक ओर रोवे अढ़ैया।
बिनु उद्यम को खावे को देहैं,
घर घर रोवे मैया[2]॥

उक्त दोहों से यही ज्ञात होता है कि पलटू दास अपने माँ-बाप की एक मात्र सन्तान थे जिनके विरक्त हो जाने से ही कुल का नाश होना कहा गया है। इनकी माता का यह कथन कि "बिना उद्यम किये रोटी कैसे चलेगी", इसी बात की ओर संकेत करता है।

नाम

सन्तों के नाम के विषय में भी यह बात देखने में आती है कि उनके नाम सत होने के पश्चात् स्वभाव अथवा गुण के अनुसार परिवर्तित हो जाया करते हैं। महात्मा तुलसीदास, सूरदास एवं संत दादूदयाल के नामकरण भी बाद के कहे जाते हैं। इनका भी नाम कदाचित पलटूदास नहीं था। इनके गुरु गोविन्द साहब ने इन्हें अहर्निश अजपा जाप में लीन रहने तथा श्वास को अन्तर्मुख पलट देने के कारण पलटू कहना प्रारम्भ कर दिया। इन्होंने स्वयं इस नामकरण का कारण बताया :—

पल पल में पलटू रहे, अजपा आठों याम।
गुरु गोविन्द अस जानि के, राखा पलटू नाम[3]।

अगर इस कथन को सत्य मान लिया जाय तो प्रश्न यह उठता है कि उनका

१. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२८ पद १३६
२. ,, ,, ,, पृष्ठ ४६ पद १५६
३. ,, ,, ,, पृष्ठ ३२३ पद ११२

प्रारम्भिक नाम क्या था ? आधुनिक सामग्री के आधार पर इस बात का पता लगाना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव प्रतीत होता है। गैवदास भिक्षु ने इनका प्रारम्भिक नाम पलट्ट लिखा है[1]।

शिक्षा

कहा जाता है कि इन्होंने किसी पाठशाला में शिक्षा नहीं पाई थी; फिर भी अपना काम चलाने भर की शिक्षा इन्हें मिली थी। इन्हें साधारण हिसाब जोड़ने तथा बही खाता लिखने भर का ज्ञान अवश्य था।

गुरु

यह भी कहा जाता है कि ये बाल्यकाल से ही एक-धार्मिक व्यक्ति थे तथा किसी जानकीदास के यहाँ अपने पुरोहित गोविन्द साहब के साथ नित्य जाया करते थे। वही गोविन्द साहब आगे चलकर इनके गुरु हुए। पलटूदास सार वस्तु की खोज में वहाँ से निकले और काशी को धार्मिक स्थल समझ कर वहाँ पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने सन्तों से सत्संग किया, पर किसी के द्वारा शान्ति नहीं मिली। किसी अज्ञात मनुष्य ने उन्हें गुलाल साहब के यहाँ जाने को कहा जो उस समय भुड़कुड़ा में थे। वहाँ जाने पर गुलाल साहब ने इन्हें संत भीखा साहब के पास भेज दिया जो मठ से लगभग दो सौ गज पूर्व की ओर रामवन में एक तालाब के दक्षिणी किनारे पर भजन किया करते थे। भीखा साहब ने इन्हें फिर गुलाल साहब के पास भेज दिया और गुलाल साहब ने इन्हें गोविन्द साहब से दीक्षित होने का आदेश दिया। अतः ये गोविन्द साहब के पास लौट आये और उन्हें सब प्रकार से योग्य और समर्थ पाकर उनके शिष्य बन गये। गोविन्द साहब स्वयं भीखा साहब के शिष्य थे और उस समय तक सिद्ध हो गये थे। उक्त जनश्रुति के अनुसार यह शंका हो सकती है कि पलटूदास भुड़कुड़ा में ही थे और गोविन्द साहब दीक्षित होकर चले भी गये और सिद्ध भी हो गये जिसका पता पलटूदास को न लगा।

यह भी कहा जाता है कि पलटूदास तथा गोविन्द साहब दोनों सार वस्तु की खोज में निकले। पलटूदास काशी की ओर चले गये और गोविन्द साहब जगन्नाथपुरी की ओर। मार्ग में इन्हें भीखा साहब मिले और उन्होंने गोविन्द साहब को गुप्त भेद बता दिया। अतः वे वहीं से लौट आये। वहाँ से लौट कर उन्होंने पलटूदास को दीक्षित किया।

ऐसा भी कहा जाता है कि पलटूदास ने गोविन्द साहब से दीक्षा लेने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि यद्यपि भगवान की भक्ति करने का अधिकार

---

१. गोविन्द साहब का जीवन चरित्र : पृष्ठ २४

सबको बराबर है, परन्तु उन्हें अपना जातीय धन्धा करना चाहिए। पलटूदास की प्रार्थना पर गोविन्द साहब ने उन्हें रानाराम के पास भेज दिया जिनसे वे स्वयं दीक्षित हुए थे। रानाराम ने कृष्ण मंत्र का उपदेश दिया। कुछ समय के पश्चात् पलटूदास फिर गोविन्द साहब के पास गये। उन्होंने अपना अनुभव बताया कि पत्थर पूजने से किसी प्रकार के लाभ की आशा नहीं है। सद्गुरु की खोज करके योग सीखना श्रेयस्कर है। गोविन्द साहब सहमत हो गये और जगन्नाथ पुरी की ओर चले गये और वहां से लौटकर भीखा साहब से दीक्षित हो गये। पलटू दास अयोध्या चले गये और अपना व्यवसाय करने लगे। थोड़े दिनों के पश्चात् पलटू दास को गोविन्द साहब की सिद्धि का पता लगा और तत्पश्चात् वे भी गोविन्द साहब से दीक्षित हो गये[1]।

इनके गुरु का नाम गोविन्द साहब था जिनके विषय में कम ज्ञात है और इनके सम्बन्ध में पहले चर्चा की जा चुकी है। पलटूदास ने अपार श्रद्धापूर्वक इनका नाम लिया है। यहाँ तक कि इन्हें कबीर के गुरु रामानन्द का अवतार घोषित किया है :—

कबीर पलटि पलटू भये, गोविन्द रामानन्द ।
तबकी मैं दावकर रहा, अबकि मैं भया कन्द[2] ॥

जन्म काल

लोगों की धारणा है कि इनका जन्म विक्रम् की उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था और अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा भारतवर्ष के सम्राट् शाह आलम इनके समकालीन थे[3]। पलटूदास सम्वत् १८२७ के आस-पास वर्तमान कहे जाते हैं[4]। इस मत की पुष्टि में हुलास द्वारा रचित निम्नलिखित पद उद्धृत किया जाता है :—

नौमी तिथि का जन्म रोज इतवार है ।
माघ महीना मकर पक्ष उजियार है ।
सत्गुरु पलटू हमार सत औतार है ।
हरिहा हुलास को दिया नाम आधार है ।
कँतिक अधम वृहन उन किया पार है ।
मैं सब से वह पापी के सरदार मोहू को तार है ।

१. गोविन्द साहेब का जीवन-चरित्र : २४ पृष्ठ
२. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२८ साखी १४५
३. पलटू साहेब की वाणी भाग १. जीवन-चरित
४. उत्तरी भारत की संत-परम्परा पृष्ठ ४६२

सम्वत् १८२६ गुरु शब्द जन्म-पत्र है ।
हरिहा हुलास को दिया सिंहासन अटल सिर छत्र है[1] ।

इस पद से ज्ञात होता है कि हुलासदास का जन्म माघ सुदी नौमी इतवार के दिन हुआ था और सम्वत् १८२६ मे वह दीक्षित हुए थे तथा पलटूदास उनके गुरु थे। यह पलटूदास के जीवन से सम्बन्धित न होकर स्वयं हुलासदास की जीवनी पर प्रकाश डालता है। इससे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये सम्वत् १८२६ मे वर्तमान थे।

यह कहा जाता है कि पलटूदास अपने गुरु गोविन्ददास से पहले मर चुके थे। यह भी अनुमान है कि इन्होंने लम्बी आयु पाई थी। अत अनुमानत. इनका जन्म गोविन्द साहब के जन्म के आस-पास सम्वत् १७८२ के बाद हुआ होगा। शाह आलम प्रथम बार सम्वत् १८१५ मे गद्दी पर बैठा। अतः यह कहा जा सकता है कि इनका जन्म सम्वत् १७८० तथा १७९० के मध्य कभी हुआ था।

मृत्यु-तिथि

इनकी मृत्यु तिथि भी अनिश्चित है। इनके शिष्य हुलासदास के अनुसार अश्विनी सुदी १२ सोमवार को ४ घड़ी दिन चढ़े इनकी मृत्यु हुई —

आश्विनी सुदी द्वादशी तिथि सोमवार घरी चार।
पलटू त्यागा देह को, बिनती बारम्बार ॥

(ब्रह्मविलास : पृष्ठ ७७)

इस पद से सम्वत् का पता नही लगता है। अतः यह अपूर्ण है। गोविन्द साहब की मृत्यु सम्वत् १८७९ में मानी जाती है और पलटूदास इनके पूर्व ही मर चुके थे। अतः इनकी मृत्यु का समय सम्वत् १८६० के आस-पास किसी समय सम्भावित हो सकता है।

इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि वृद्धावस्था में इनके शिष्यों ने इनकी उचित सेवा नही की जिसके कारण इनको अधिक कष्ट हुआ था और इसी के कारण किसी केशव को सम्बोधित करते हुए उन्हे गुरु भक्त होने तथा वृद्ध गुरु के प्रति पालन की शिक्षा दी गई है।

---

१. ब्रह्मविलास : पृष्ठ ५०

पलटू कहे सुनो हो केशव, वृद्ध की कीजै प्रतिपाल ।
मुये मुक्ति दुख जीवते, होते संत बेहाल[1] ।

तथा—

मुये मुक्ति किस काम की, जियतें मरियें रोय ।
कहे पलटू सुन केशव, इसी वृद्ध की होय[2] ।।

वृद्धावस्था मे इन्द्रियो के अशक्त होने के कारण इन्हे अपने शिष्यो पर आश्रित रहना पडा होगा और उनके द्वारा उपेक्षित होने पर ही ऐसे मार्मिक उद्गार निकले होगे । हो सकता है कि पलटू प्रसाद का ही नाम केशव हो जिनको सम्बोधित करके ऐसी बातें की गई हो अथवा उनका कोई अन्य शिष्य हो जो साधारणतया उनकी सेवा मे रहता हो ।

इनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे एक और बात विचारणीय है । ये एक स्पष्ट वक्ता, निर्भीक समालोचक, निर्गुण पथी, निस्पृह सत थे । इन्होने उस समय के विलासी महतो तथा पाखडियो की खुलकर निन्दा की । अत इन महतो से इनका झगडा होना कोई आश्चर्यजनक बात नही थी । इनकी बढती हुई ख्याति को देखकर संन्यासियो ने ईर्ष्यावश इन्हे जीवित जला दिया, परन्तु उसी समय कुछ लोगो द्वारा ये जगन्नाथपुरी मे देखे गये । ऐसा सम्भव हो सकता है कि ये किसी प्रकार बच गये हो और झगडा बचाने के लिए जगन्नाथपुरी चले गये हो ।

मृत्यु-स्थान

अनुमान है कि उनकी मृत्यु अयोध्या मे हुई थी क्योकि वही पर इनकी समाधि बनी हुई है, परन्तु समाधि ही मृत्यु स्थान का द्योतक नही हो सकती । एक सन्त की समाधि अनेक स्थानो पर पाई जाती है । मुख्यत. उन स्थानो पर स्मारक रूप मे समाधियाँ बनती है जिनसे उस सत का अधिक सबध रहा हो । कबीरदास की समाधि काशी मे भी है और मगहर तथा जगन्नाथ पुरी मे भी ।

देवरिया जिले मे सासोपार नामक एक ग्राम है । यह ग्राम देवरिया के उत्तर तथा पडरौना मे ८ मील दक्षिण मे पक्की सडक पर पडता है । इस ग्राम के पूर्व की ओर खेत मे चबूतरा बना हुआ है जिसे लोग "पलटू दास की समाधि" कहते हैं । यहा पर खिचडी, सुर्ती, गाजा, लगोट, त्रिशूल तथा जेवनार चढाये जाते हैं । लोग मनौती भी करते हैं और ऐसा कहा जाता है कि उनकी आशाएं भी प्रायः पूरी हो जाती है । जनश्रुति यह है कि लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व पलटूदास दक्षिण दिशा से यहाँ

---

१. पलटू साहेब की शब्दावली : पृष्ठ ३२१ पद १५४
२. वही : पृष्ठ ३३० पद १६२

आये थे और कुटी बनाकर रहने लगे थे। इनका प्रभाव गाँव के नवयुवकों पर अधिक पड़ा और सन्तानोत्पत्ति रुक गई। गाँव के वृद्धों ने पलटूदास से प्रार्थना की कि वे वहाँ से चले जायँ क्योंकि साधु का एक स्थान पर रहना अच्छा नहीं है। उनके चले जाने के पश्चात् उस गाँव पर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आईं। उनकी समस्त जमींदारी महाराज पडरौना के हाथ चली गई। लोगों ने चम्पारन जाकर उन्हें फिर बुलाया। साखोपार छोड़ने के १२ वर्ष पश्चात् ये फिर वहाँ आये और उसी स्थान पर रहने लगे जहाँ चबूतरा बना है। इनकी मृत्यु भी वहीं हुई और उसी स्थान पर उनकी समाधि भी बना दी गयी।

इस जनश्रुति के अनुसार इतना ज्ञात होता है कि पलटूदास यहाँ अधिक दिन रहे थे और यहाँ के निवासी उनसे अधिक प्रभावित थे। इनके काव्य पर भोजपुरी का प्रभाव इस बात की ओर संकेत करता है कि इनका सम्बन्ध पूर्व से अधिक रहा है। अनुमान लगाया जा सकता है कि जलाये जाने के उपरान्त ये अयोध्या से यहाँ आ गये हों क्योंकि अयोध्या वहाँ से दक्षिण दिशा में है। इस समाधि पर लंगोट इत्यादि का चढ़ाया जाना नाथ-पंथियों का प्रभाव कहा जा सकता है क्योंकि साखोपार गोरखपुर के निकट है जो नाथ-पंथियों का प्रभाव केन्द्र रहा है।

देशाटन

उन्होंने देश भ्रमण भी किया था। काशी तथा भुड़कुड़ा तो वे गये ही थे, उन्होंने जगन्नाथपुरी की भी यात्रा की थी। इतना स्मरण रखना होगा कि जैन, बौद्ध तथा वैष्णव जगन्नाथपुरी को समान रूप से आदर की दृष्टि से देखते थे और वहाँ बहुधा जाया करते थे। इनकी कविता में पंजाबी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि है इन्होंने पंजाब की भी यात्रा की थी। इनका सम्बन्ध बिहार प्रान्त से भी था क्योंकि चम्पारन के आस-पास इनके अनुयायी पाये जाते हैं। परन्तु इस मत की पुष्टि के लिये कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती।

ऐसा कहा जाता है कि जगन्नाथपुरी में पहुँचकर ये पूजा की चौकी पर ही शयन करते हुए पाये गये थे। प्रातःकाल जब पंडे तथा पुजारी पूजा के लिए इकट्ठे हुये तो उनको यह मर्म समझ में नहीं आया, क्योंकि शयन आरती के बाद पुजारी लोग भगवान को शयन कराकर पट्ट बन्द करके अपने-अपने घर चले गये थे। क्रोध में आकर पुजारियों ने इन्हें समुद्र में फेंक दिया, परन्तु वह सकुशल बाहर चले आये।

कहा जाता है कि पुरी का तत्कालीन शासक राजा जानू ईश्वर का परम भक्त था। उसको रात में स्वप्न हुआ कि उसके राज्य में भक्तों का अनादर क्यों

किया जाता है। जब तक भक्त कष्ट मे रहेंगे तब तक भगवान का दर्शन नही होगा और पट्ट बन्द ही रहेंगे। राजा ने पलटूदास से क्षमा मांगी और ऐसा कहा जाता है कि उनके छूने मात्र से ही मंदिर का फाटक खुल गया।

वहाँ से लौटने के पश्चात् उन्होंने अयोध्या मे एक भंडारा किया और चारों ओर निमन्त्रण भेजे, परन्तु ईर्ष्या तथा धार्मिक विद्वेष के कारण अयोध्या के महन्तों तथा वैरागियों ने उसमे भाग नही लिया। पलटू दास ने उनके विरोध की परवाह न करते हुए आगत व्यक्तियों का सत्कार किया और शेष सामग्री जनता मे वितरित कर दी। इसका वर्णन उन्होंने स्वयं इस प्रकार किया है :—

सब वैरागी बटुरि के, पलटुहि किया अजात।
पलटुहि किया अजात परभुता देखि न जाई।
बनिया कातिहक भक्त प्रगटभा सब दुतियाई।
हम सब बड़े महत ताहि को कोउ न जानै।
बनिया करै पखंड ताहि को सब कोउ मानै।
ऐसी ईर्ष्या जानि कोउ ना आवै खाई।
बनिया ढोल बजाय रसोई दिया लुटाई।
मालपुआ चारिउ वरन बाधि लेत कछु खात।
सब वैरागी बटुरि के, पलटुहि किया अजात।
(पलटू साहेब की वाणी : पृष्ठ ६६ पद २५५)

शिष्य

पलटूदास के दो शिष्यों का पता चलता है। प्रथम शिष्य पलटू प्रसाद थे जो इनके छोटे भाई थे और किसी कारण वश विरक्त हो इनके शिष्य हो गये और इन्हीं के साथ रहने लगे तथा पलटूदास की मृत्यु की पश्चात् अयोध्या मठ के उत्तराधिकारी हुए। इनके द्वितीय शिष्य का नाम हुलासदास था जो बरौली जिला बाराबांकी चले गये और वहीं पर एक मठ की स्थापना करके रहने लगे। इनके अन्य किसी शिष्य का पता नही है। इनके दोनो शिष्यों की रचनाएँ उपलब्ध है। इन दोनो मठो की परम्परा अबाध गति से आज भी चल रही हैं।

रचनाएं

पलटू दास द्वारा रचित किसी पुस्तक का पता नही है। इनकी समस्त वाणियाँ इधर-उधर बिखरी पडी हैं। इनकी रचनाओं का एक संग्रह "पलटू साहब कृत शब्दावली" पलटूदास का अखाड़ा अयोध्या मे प्रकाशित है और "पलटू दास की बाणी" तीन भागों मे बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से निकली है, परन्तु शब्दावली के बहुत से पद बाणी में भी सग्रहीत हैं। अभी बहुत से पद प्रकाशित नहीं हैं। इनकी रचनाओं

में रेखता, अरिल्ल, सवैया, कवित्त तथा कुंडलियाँ इत्यादि छन्दों का प्रयोग हुआ है। कुछ ऐसे भी पद हैं जो रागों में बद्ध हैं और होली तथा विवाह के अवसर पर गाये जा सकते हैं। कुछ ऐसे भी पद हैं जो आसानी से याद किये जा सकते हैं। इन्हीं द्वारा रचे हुये १०० संस्कृत श्लोकों का भी पता लगता है, परन्तु इसकी भाषा अशुद्ध है।

राजनीतिक परिस्थिति

पलटूदास के समय देश की राजनैतिक दशा शोचनीय थी। विक्रम की १९ वी शताब्दी ने बहुत से उथल-पुथल देखे। यह स्थिति औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् विकट रूप में प्रकट हुई और उत्तरी भारत में चारों ओर अशान्ति तथा कुव्यवस्था फैल गयी थी।

सन् १७१९ ई० में आलमगीर द्वितीय की हत्या हो गई। मिर्जा अब्दुल्ला जो बाद मे शाह आलम द्वितीय के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा, हत्या के डर से भाग गया और बिहार तथा इलाहाबाद में छिपता रहा। इसी समय अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ और उसने शाह आलम द्वितीय को दिल्ली का बादशाह घोषित किया। शाह आलम द्वितीय ने किसी प्रकार कड़ा तथा इलाहाबाद के दो जिले मराहठों को देकर उन्हीं की सहायता से दिल्ली में प्रवेश किया और उस पर अधिकार किया। सन् १७८८ ई में सिंधिया को जयपुर के राजा ने हरा दिया। रुहेलों के नेता गुलाम कादिर ने दिल्ली पर आक्रमण किया और धन न मिलने पर शाह आलम को पीटा तथा क्रोध मे उसकी आँखें फोड दी। मराठों ने शाह आलम की पेन्शन नियुक्ति कर दी और अब वह नाम मात्र का बादशाह था। सन् १८०३ मे जब अंग्रेजों तथा मराठो के मध्य युद्ध छिड़ गया तब शाह आलम अंग्रेजो की शरण में चला गया। अंग्रेजों ने दिल्ली का शासन अपने हाथ मे ले लिया। शाह आलम पेन्शन पर जीवित रहा। इस प्रकार १९ नवम्बर सन् १८०६ को शाह आलम की मृत्यु हो गई। इसका अन्तिम समय नेत्र-विहीन तथा अधिकार रहित अवस्था मे बीता[1]।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ थी। इसी समय विक्रमी १७८८ में सआदत अली खाँ, जिसका नाम मुहम्मद अमीन बुरहानुलमुल्क था, अवध का सूबेदार बना। उसकी मृत्यु के पश्चात् सफदरजंग अवध का शासक हुआ। शुजाउद्दौला

---

१. मुगल काल की जीवन-संध्या : लेखक राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह (देखिए शाह आलम सानी)

इसी का पुत्र था जो इसकी मृत्यु के पश्चात् अवध का शासक नियुक्त हुआ। उसने अयोध्या से तीन मील पश्चिम मे फैजाबाद नगर बसाया तथा घाघरा के तट पर एक किला भी निर्मित कराया। यह विलास प्रिय नवाब था। इसके राज्य में व्यभिचार, द्युत तथा मद्यपान की प्रधानता थी। न्याय नाम मात्र को नही था। लाला सीताराम ने "अयोध्या का इतिहास" मे लिखा है कि इसने गोसाइयों की सहायता से एक खत्री बालिका को उसके घर से रात मे पलंग सहित मंगा लिया था[1]। उन्होंने यह भी लिखा है कि नवाब के सम्बन्धी डाका डालते थे और कोई जानकर भी नही कहता था[2]।

शुजाउद्दौला की मृत्यु के बाद फैजाबाद उसकी विधवा बहू बेगम की जागीर मे रहा। नगर मे उसका बहुत बड़ा आतंक था। उसके बाहर निकलने पर डर के मारे घरो के किवाड बन्द हो जाते थे। यहाँ तक प्रसिद्ध है कि जो मनुष्य टीका लगा कर घूमता हुआ दिखाई देता था उसे दण्ड दिया जाता था। उसी के समय का एक दोहा प्रसिद्ध है :–

> अवध बसन को मन चहै, पै बसिये केहि ओर।
> तीन दुष्ट येहि मे रहे, बानर बेगम चोर[3]॥

इस समय वारेन हेस्टिंग्ज गवर्नर जनरल था। उसने बहू बेगम से एक करोड २० लाख रुपया ले लिया। बहू बेगम की मृत्यु सन् १८१६ मे हुई।

सामाजिक परिस्थिति

पलटूदास के समय भारतवर्ष की सामाजिक स्थिति अच्छी नही थी। हिन्दू तथा मुसलमान अपने मूल धर्म से दूर बाह्याडम्बर मे फसे थे। उनमे असत्य तथा मिथ्या की भावना भरी हुई थी। इसी के फलस्वरूप आपसी शंका तथा भ्रम बढ़ते जा रहे थे। तात्पर्य यह कि सामाजिक एकता नष्ट हो चुकी थी और चारो ओर विशृंखलता फैली हुई थी।

हिन्दुओ की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। मुसलमानो द्वारा पराजित होने के कारण एक विजित जाति के रूप मे उन्हे हेय जीवन व्यतीत करना पड रहा था। अपने उद्धार की कोई सम्भावना न देखकर वे निराश भी हो चले थे। विजेताओ ने उन्हे लूटकर निर्धन बना दिया था। यवन शासकों के अत्याचार उत्पीडन तथा

---

१. अयोध्या का इतिहास' लाला सीताराम पृष्ठ १५८, १५९
२. " " " पृष्ठ १५९
३. " " " १६०

स्वेच्छाचारिता से उनकी दशा क्रमशः शोचनीय होती गई और वे निरुत्साही होते गए। अपने मंदिरों को आँखों के सामने मस्जिद में परिवर्तित होते देखकर भी वे मौन थे। उनकी आस्था भी इन देवी-देवताओं से हटती जा रही थी।

जाति परम्परा हिन्दू धर्म का मुख्य अंग है। व्यवसायगत आधार पर टिकी हुई यह प्रणाली वंशगत हो गई और ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया उनके बीच की खाई चौड़ी होती गई। इन जातियों में शूद्रों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। समाज में उनका कोई भी स्थान नहीं था। उनकी परछाईं पड़ने पर ब्राह्मण अशुद्ध हो जाते थे। कबीर इत्यादि संतों ने इस व्यवस्था के विरुद्ध प्रचार किया था, परन्तु उसका प्रभाव अधिक व्यापक नहीं पड़ा था।

हिन्दुओं से अच्छी दशा मुसलमानों की भी नहीं थी। उनमें भी कई उप-जातियाँ बन गई थीं जो आपस में लड़ती रहती थीं। शिया तथा सुन्नी का झगड़ा कहीं-कहीं उग्र रूप धारण कर लेता था। मुसलमानों में भी दो मुख्य वर्ग थे। प्रथम वह वर्ग था जो सीधे अरब से यहाँ आकर बस गया था और दूसरा वह वर्ग था जो भारतीय हिन्दू समाज से मुसलमान बनाया गया था। इन दोनों में भी वैमनस्य था।

शासक वर्ग के होने के कारण मुसलमान हिन्दुओं से अधिक शक्तिशाली थे। उनके पास ऐश्वर्य की कमी नहीं थी। वे पुराने आदर्शों को भूल गए थे और कंचन तथा कामिनी में लिप्त थे। वे सहस्रों की संख्या में स्त्रियाँ रखते थे और युद्ध-स्थल पर भी साथ ले जाते थे। ये योद्धारूप में विलासी अमीर बन गए थे। यवनों का आचरण अत्यन्त भ्रष्ट हो गया था।

धार्मिक परिस्थिति

पलटूदास के समय की धार्मिक परिस्थिति औरंगजेब के काल की परिस्थिति से भिन्न नहीं कही जा सकती। धर्म के नाम पर अधिक अत्याचार होते थे। निर्धन हिन्दू जनता धन के लाभ में तथा अन्य हिन्दू बलात् ही मुसलमान बनाये जाते थे। यवनों की अत्याचार तथा राज्य विस्तारक नीति के कारण हिन्दू राजा शक्तिहीन हो गए थे। अतः हिन्दुओं के समस्त अधिकार छीन लिए गये थे। न तो वे स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना धर्म पालन कर सकते थे और न स्वतन्त्रता पूर्वक उपासना ही कर सकते थे। उस समय भारतवर्ष की धार्मिक एकता नष्ट हो चुकी थी और नाना प्रकार का धर्मों का अभ्युदय हो रहा था। यूरोपीय जाति के आगमन के साथ ईसाई धर्म भी यहाँ आया और वह भी धीरे-धीरे भारतीय धर्म तथा समाज को प्रभावित

कर रहा था। ऐसे समय में धार्मिक क्षेत्र में नाना प्रकार की उथल-पुथल हो रही थी। इसका कारण उस समय की व्याप्त धार्मिक अराजकता थी।

व्यक्तित्व

पलटूदास की रचनाओं से उनके स्वभाव तथा मनोदशा पर भी प्रकाश पड़ता है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने उनका एक चित्र कहीं देखा था जो आजकल उपलब्ध नहीं हो सका। उनका कथन है कि पलटूदास गौर वर्ण, छोटे कद के तथा साधारण मोटे व्यक्ति निश्चित किए गये हैं। वे शरीर पर एक झीनी चादर डाले हुए दिखाए गए हैं। उस चित्र में उनके मुख-मण्डल पर तेज दृष्टिगोचर होता था।

पलटूदास अपने जीवन काल में भी एक ख्याति-प्राप्त संत हो चुके थे और इस दिशा में उनकी सत्यान्वेषक प्रकृति, स्पष्टवादिता तथा व्यक्तित्व ने असाधारण सहायता दी। संत होने के पहले जब वे गृहस्थ आश्रम में थे, उन्हें भर पेट भोजन तक नहीं मिलता था। यहां तक कि कभी-कभी लवणहीन भोजन करना पड़ता था, किन्तु जब से वे भगवान की शरण में आए थे तब से मिष्ठान्न तथा सुस्वादु भोजन इतनी अधिक मात्रा में इनके यहां पड़े रहते थे कि कोई उसे पूछता तक नहीं था। बड़े-बड़े अमीर हाथ जोड़कर खड़े रहते थे। यद्यपि वे कुरूप थे, परन्तु सत्य नाम लेने के कारण ब्राह्मण भी उनका चरणामृत लेते थे[1]।

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है पलटूदास के समय समस्त प्रचलित धर्मों में आडम्बर आ गया था और इस प्रकार धर्म के वास्तविक स्वरूप का लोप हो गया था। धार्मिक असहिष्णुता के कारण वातावरण विषाक्त हो गया था देश की धार्मिक स्थिति अस्त-व्यस्त थी। कबीर के काल से ही उनको निर्मूल करने के अथक प्रयत्नों

१- हाथ जोरि आगे मिले ले ले भेंट अमीर।
ले ले भेंट अमीर नाम का तेज बिराजा।
सब कोई रगरे नाक आइके परजा राजा।
सकलवार मे नहीं नीच फिर जाति हमारी।
गोड़ धोय पट करम बरन पीवैं ले थारी।
बिन लसकर बिन फौज मुलक मे फिरे दुहाई।
जन महिमा सतनाम आपु मे सरस बड़ाई।
सतनाम के लिहे से पलटू भया गम्भीर।
हाथ जोरि आगे मिले ले ले भेंट अमीर।
(पलटू साहेब की बानी: भाग १ पृष्ठ ८ कं० १६)

के होते हुए भी इस प्रकार की धार्मिक बुराइयाँ समाज में प्रचलित थीं। पलटूदास ने नागाओं तथा वैरागियों के गढ़ अयोध्या में ही क्रांति का झंडा ऊँचा किया। इन्होंने उनके प्रति जो आरोप लगाया वह किसी व्यक्तिगत विरोध या विद्वेष की भावना से प्रेरित होकर नहीं किया है, अपितु उनका ध्येय धर्म को शुद्ध रूप में जनता के सामने रखना था तथा उसे इन बाह्याडम्बरों से बचने का उपदेश मात्र देकर वस्तुस्थिति को स्पष्ट करना था।

एक संगठित समाज के प्रति क्रान्ति करना खेल नहीं है। इनकी स्पष्टवादिता से एक ओर मुल्ला असन्तुष्ट हुए तो दूसरी ओर हिन्दू धर्म के ठेकेदार महंत, नागा तथा वैरागी इनकी जान के प्यासे हो गए। दोनों ऐश्वर्यशाली तथा बलशाली थे। महंतों द्वारा नाना प्रकार से प्रताडित, बहिष्कृत तथा तिरस्कृत होते हुए भी पलटूदास ने दृढतापूर्वक उनका सामना किया। कबीर की भाँति उनका भी इस बात पर दृढ विश्वास था कि धर्म तथा समाज में जो मल एकत्रित हो गए हैं उनको धोने के लिए क्रान्ति आवश्यक है। उन्होंने प्रत्येक धार्मिक कलुष के लिये मुल्ला तथा पंडित को दोषी ठहराया। उनकी खूब खिल्ली उड़ाई। उनके प्रत्येक कारनामे की आलोचना की तथा उनकी शक्ति की लेश मात्र भी चिन्ता न करते हुए एक निर्भीक समालोचक की भाँति उनकी काली करतूतों का भण्डाफोड किया। यद्यपि इसके लिए उन्हें जीवित ही जलना पड़ा तथा महंतों द्वारा तिरस्कृत होना पड़ा, *परन्तु उन्होंने उनकी सच्ची आलोचना बन्द नहीं की, उनकी जीभ पर ताला नहीं* लगा। ब्राह्मणों को निर्बुद्धि तथा मुल्लाओं की खिल्ली उडाना उस समय एक साधारण व्यक्ति का काम नहीं था।

पलटूदास मस्तमौला थे। न उनका कोई मित्र था, न कोई शत्रु। हार-जीत, मान-अपमान, सुख-दुःख तथा विपत्ति सब इनके लिए समान थे। इन्हें न मरने का दुःख था और न जीने में प्रसन्नता थी। ये संसार से एकदम उदासीन[1] थे।

पलटूदास मस्तमौला तो थे ही, इस संसार से बेपरवाह भी थे। इनका मनोराज्य विचित्र था। ये फक्कड तथा निष्कामी भी थे। वे ऐसे मनोराज्य के

१. ना काहू से दुष्टता ना काहू से रोच।
ना काहू से रोच, दोऊ को इक रस जाना॥
बैर भाव सब तजा, रूप अपना पहिचाना।
जो कंचन सो काच, दोऊ की आसा त्यागी॥
हार जीत कछु नाहिं प्रीति इक हरि से लागी।
दुख सुख सम्पति विपति भाव ना यहुं से दूजा॥
जो बाम्हन सो सुपच दृष्टि सम सबकी पूजा।
ना जियने की खुशी है पलटू मुवें न सोच।
ना काहू से दुष्टता ना काहू से रोच॥
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ १४ पद ३५)

बेपरवाह राजा थे जहाँ न तो उन्हे किसी वस्तु की चिन्ता ही थी और न किसी में अन्तर था :—

हम तो बेपरवाही मिया वे हमको अबका चाही।
दिल दिल्ली मन तख्त आगरा, चले सबर दे माही॥
ज्ञान ध्यान की फौज हमारी, दफ्तर नाम इलाही।
दुनिया दीन दोऊ है तालिब, ऐसी ही बादशाही॥
पलटूदास दूरि भइ दुई, सादी गमी कोई नाहीं॥
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ७६ पद १३७)

बुद्धिवादी होने के कारण वे लिखित तथ्यों पर सहसा विश्वास नही करते थे। 'खोजत मूढ गरथन मे, भल कागज मे कहुँ राम लुकाही' इत्यादि तर्क इसी भावना के द्योतक हैं। कबीर की भाँति इन्होने जो कुछ माना, वह तर्क की कसौटी पर कस कर ही माना। इन्होंने अपनी अनुमति की सहायता से सत्य की खोज की थी, अत: इनके सारे विचार अनुभव-जनित सत्य पर टिके हुए हैं।

पलटूदास किसी के पक्षपाती नही थे, न जाति के न विशेष धर्म और न विशेष व्यक्ति के। उनकी दृष्टि समदर्शिनी थी और ये चाहते थे कि हर स्थान पर धर्म मे, समाज मे या अन्य स्थलों पर सबको एक दृष्टि से देखा जाय। इस भावना के कारण इन्होने किसी धर्म के मूलरूप की निन्दा नही की। ये किसी धर्म के पक्षपाती नही थे, उसी प्रकार जाति-पाति तथा ऊँच-नीच का विभाजन भी उन्हे अप्रिय था। उन्होंने बार-बार सम दृष्टि को महत्त्व प्रदान किया है। इन्होंने एक जाति तथा एक मानव का सदेश दिया। इस क्षेत्र में ये एक साम्यवादी के रूप मे अवतरित हुए थे।

पलटूदास को अपने मार्ग तथा अपने व्यक्तित्व पर पूर्ण विश्वास था। इसीलिए कई स्थानो पर उन्होंने विश्वास की प्रधानता दी[१] है इन्होने स्पष्ट कहा कि विश्वास से सब कुछ सिद्ध हो सकता है तथा अपनी विश्वासयुक्त साधना-पद्धति की सत्यता को सिद्ध करने के लिए वे युद्धस्थलो मे किसी को आने का आह्वान करते थे :—

पलटूदास कमान को दिया, चौक मे नाय।
देखत के डर लागई। कोऊ न सकै उठाय॥[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पलटूदास का व्यक्तित्व विचित्र था और कबीर से उनका बहुत कुछ साम्य था।

---

१. पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ८८ पद ३१।
२. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२१ पद ५२।

—

तृतीय अध्याय

संत पलटूदास की रचना और विचार-धाराएँ

(१) रचनाएँ

(२) विचारधारा

- (अ) दार्शनिक विचार
- (आ) धार्मिक विचार
- (इ) सामाजिक विचार

(३) साधना

- (अ) ज्ञान-साधना
- (आ) योग-साधना
- (इ) भक्ति-साधना

रचनाएं

पलटूदास सम्भवतः अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। बनिया जाति के होने के कारण उस समय अधिक शिक्षा अपेक्षित भी नहीं थी। इन्होंने जो कुछ ज्ञान अर्जित किया था, सत्संग के द्वारा ही किया था। जानकीदास से गीता सुनने की बात के अतिरिक्त इनका किसी अन्य से सत्संग का प्रसंग भी नहीं ज्ञात है[1]। गीता का उल्लेख इनकी रचनाओं में यदा-कदा होने से इस बात की पुष्टि भी होती है कि इन्होंने गीता से भी कुछ ज्ञान अर्जित किया था। इस पुस्तक के अतिरिक्त अन्य धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने या श्रवण करने का कोई प्रसंग इनके सम्बन्ध में ज्ञात नहीं है। इसके लिए भी पुष्टि-प्रमाणों का अभाव है कि इन्होंने अपनी रचनाओं का संग्रह भी किया था। इनकी समस्त रचनाएँ फुटकर रूप में इधर-उधर बिखरी मिलती हैं। जिनको सम्भवतः इनकी मृत्यु के पश्चात् संग्रहीत किया गया है। अयोध्या में एक वृहदाकार 'पलटूदास का अखाड़ा' नामक हस्तलिखित पुस्तक में इनकी रचनाएँ संग्रहीत हैं। इसी संग्रह में पलटूप्रसाद के पद भी सम्मिलित हैं। इसी संग्रह में पलटूदास विरचित संस्कृत के सौ श्लोक संग्रहीत हैं।

इनकी रचनाएँ अधिकतर गेय पदों के रूप में हैं। गेय पद विविध रागों अर्थात् बिलावल, सोरठा, परस्नो, हिन्डोला, भैरव, बंगला, गौरी, कहरा, जैजैवन्ती, आदि रागों में बन्धे हैं। मंगल विवाह, बसंत, झूमक, मलोरवा, इत्यादि सामाजिक उत्सवों पर गाने योग्य पदों के अतिरिक्त विवाह के अवसर पर गाई जानेवाली गाली तक का समावेश है। इनके अतिरिक्त कुण्डलिया, रेखता, झूलना अरिल्ल, ककहरा, कवित्त तथा सवैया में भी रचनाएँ उपलब्ध हैं। कुछ पद आकार में इतने छोटे हैं कि आसानी से याद रह सकते हैं और गाए जा सकते हैं। मूल संग्रह के अभाव में आधुनिक संकलित ग्रंथों की पाठ शुद्धि संदिग्ध ही कही जा सकती है क्योंकि गेय पद कालान्तर में अपने शुद्ध स्वरूप का त्याग कर विकृत हो जाते हैं।

नागरी-प्रचारणी सभा की खोज रिपोर्ट के आधार पर पलटूदास के पांच संग्रह-आत्म कर्म, कुण्डलिया, पलटूदास की बानी, राम कुण्डलिया तथा ककहरा अरिल्ल उपलब्ध हैं। आत्म कर्म हस्तलिखित रूप में रघुंश्रा पचुपा के किसी पंडित जय

१—पलटू साहेब की बानी भाग १ देखिये जीवन चरित।

मंगल प्रसाद शास्त्री के यहाँ प्राप्त हुई थी। यह नागरी-लिपि मे है तथा उसका लिपि काल संवत् १९३० अंकित है। इसमे १२८ पद हैं। इसके वर्ण्य विषय योग, ब्रह्म तथा जीव, भक्ति, ध्यान, अलख दर्शन तथा ब्रह्म की प्राप्ति के उपाय हैं'। दूसरा संग्रह 'राम कुण्डलिया' है जो पलटूदास का अखाड़ा अयोध्या से ही प्राप्त हुई है। यह भी नागरी लिपि मे है। इसमे २७९ कुण्डलियाँ हैं। इसका विषय ज्ञान तथा भक्ति है। इसके अन्त मे इस पुस्तक का लिपि-काल चैत बदी पचमी अंकित है, परन्तु सम्वत् नही दिया हुआ है'। तीसरा प्राप्त संग्रह पलटू दास की बानी है जो ठाकुर लक्ष्मण सिंह ग्राम छाता जिला मथुरा से प्राप्त हुई है। यह ग्रन्थ खण्डित है और रचना काल अज्ञात है। इसमे कुण्डलियाँ, अरिल्ल, ककहरा तथा भूलना संग्रहीत है। इसकी भाषा ब्रज, खड़ी तथा फारसी मिश्रित खड़ी बोली है। इसी मे ब्रह्म परिचय भी है जिसमे ब्रह्म के संबंध मे लिखा गया है'। बन के गाव जिला सुल्तानपुर के महंत श्री जगन्नाथ जी के यहा से "ककहरा तथा अरिल्ल" एक संग्रह मिला है जिसका लिपि काल सम्वत् १९०२ वि० है और इसमे योगाभ्यास तथा ज्ञानोपदेश का वर्णन है।' पलटूदास के अखाडे मे एक अन्य संग्रह पलटूदास की बानी भी प्राप्त है जिसमे कुल २६८ पद हैं, परन्तु यह ग्रन्थ अपूर्ण है। पलटूदास के समय मे इन्ही द्वारा संग्रहीत किए हुए पदो का कोई संग्रह उपलब्ध नही है। आधुनिक समय मे पाई जाने वाली हस्तलिखित पुस्तक, जिसमे पलटूदास तथा पलटूप्रसाद की रचनाओ का संग्रह है, के लिपि-काल या लिपिकर्ता के विषय मे भी कुछ नही कहा जा सकता और न तो उन साधनो का ही पता है, जिनकी सहायता से रचनाएँ उपलब्ध हुई और उनको एकत्र किया गया।

पलटूदास की रचनाओ का आधुनिक संग्रह तीन भागो मे बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक ने उन साधनों का नाम स्पष्ट नही किया है जहाँ से समस्त सामग्री उपलब्ध है। केवल इतना भर लिख दिया गया है 'हमने देश देशान्तर से बड़े परिश्रम एवं व्यय के साथ हस्तलिखित दुर्लभ ग्रंथ या फुटकल शब्द जहाँ तक मिल सके असल या नकल रूप में मगाए'।' कदाचित् असल से इनका तात्पर्य

१	खोज रिपोर्ट	काशी नागरी	प्रचारिणी सभा	पृष्ठ ३४२ रिपोर्ट संख्या	१२४ ए
२	,,	,,	,,	पृष्ठ ३१३	२२२
३	,,	,,	,,	पृष्ठ ३४३	१०६
४	,,	,,	,,	३४३	१२४ सी
५	,,	,,	,,	खोज संख्या	२०३ ख

६　पलटू साहेब की बानी भाग १ देखिये संत बानी पुस्तक माला'ए' पर दो शब्द

उन मूल हस्तलिखित पोथियों में है जो इन्हें प्राप्त हो गई थीं और जिन लोगों ने इन्हें अपनी पुस्तकें नहीं दीं, वहीं पर उनकी नकल कर ली गई।

पलटूदास की रचनाओं का दूसरा संग्रह पलटू साहेब की शब्दावली है। यह अयोध्या से प्रकाशित हुई है और अखाड़े में सुरक्षित पुस्तक के चुने हुए पदों का संग्रह है। इसमें शब्द तथा साखियाँ संग्रहीत हैं। साथ ही साथ प्रारम्भ में पलटूदास की जीवनी भी दी हुई है जो 'बानी' के जीवन चरित से विस्तृत है।

"पलटू साहेब की बानी भाग १" में केवल कुण्डलियों का संकलन है जिनकी संख्या २६८ है। वर्णित विषय गुरुदेव, नाम, संत और साध, भक्तजन, पाखण्डी, चेतावनी, भक्ति, प्रेम, विश्वास, सत्संग, ध्यान, सूरमा, पतिव्रता, उपदेश, ज्ञान, विनय मान, भेद, अद्वैत, उलटवाँसी, दुष्ट, जीवहिंसा तथा जाति भेद आदि हैं। कुछ पद मिश्रित हैं। "पलटू साहेब की बानी भाग २" में पलटूदास द्वारा रचित रेखता, झूलना, अरिल्ल, ककहरा, कवित्त तथा सवैया संग्रहीत हैं। वर्ण्य विषय प्रायः वही है। "पलटू साहेब की बानी भाग ३" में कुछ चुने हुए शब्दों तथा साखियों का संग्रह है। शब्दों की संख्या कुल १५७ है और साखियों की संख्या १६५, परन्तु इनमें से १०२ शब्द तथा ३१ साखियाँ "पलटू साहेब की शब्दावली" में भी संगृहीत हैं। इन शब्दों तथा साखियों के अतिरिक्त अन्य पद दो बार नहीं आए हैं। इस आधार पर पलटूदास द्वारा रचित प्रकाश में आए हुए मुद्रित पदों की संख्या १८२२ है।

पलटू साहेब की बानी भाग	१ पदों की संख्या	२६८
,, ,, ,,	२ ,,	३५५
,, ,, ,,	३ ,,	३२२
पलटू साहब की शब्दावली–पदों की संख्या		१० १०
योग		१९५५
शब्दावली में आए हुए पदों की संख्या] जो बानी में भी संगृहीत हैं।]		१३३
कुल मुद्रित पदों की संख्या		१८२२

'पलटू साहेब की बानी भाग ३' और 'पलटू साहेब की शब्दावली' दोनों में आए हुए पदों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि अधिकांश पदों में वैषम्य है। शब्द सम्बन्धी अन्तर स्पष्टतया लक्षित होता है। ऐसा ज्ञात पड़ता है कि शब्दावली में शब्दों को शुद्ध करके लिया गया है। कहीं-कहीं वाक्यांशों तक का हेर-फेर है। पदों के कड़ियों की संख्या भी कम अथवा अधिक है। यह बात उदाहरण से अधिक स्पष्ट हो जायगी।

१. गगन की धुनि आवई, सोई गुरु मेरा है।
वह मेरा सिरताज है, मैं वाका चेरा।
सुन मे नगर बसावई सूतन मे जागे।
जल मे अगिन छपावई, सग्रह में त्यागे।
जत्र बिना जंत्री बजे, रसना बिनु गावे।
सोहं सबद अलापि के, मन को समुझावे।
सुरति डोर अमृत भरे, जहं कूप उरध मुख।
उलटेहिं कमलहिं गगन मे, तब मिले परम सुख।
भजन अखडित लागई, जस तेल की धारा।
पलटूदास दंडित करि, तेहि बारम्बारा।

(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पद १)

गगन की ध्वनि जो आवई, सोई गुरु मेरा।
वह मेरा सिरताज है, मैं वाको चेरा।
शुन्य मे नगर बसावई, सोवत मे जागे।
जल मे आग छिपावई, सग्रह मे त्यागे।
यंत्र बिना यत्री बाजे, रसना बिनु गावे।
सोहं शब्द अलापि के, मन को समुझावे।
सुरति डोर अमृत भरे, जहां कूप अधोमुख।
उलटें कंवल गगन महें, तब मिले परम सुख।
भजन अखडित ला गई, जैसे तेल के धारा।
पलटूदास दंडवत करौं, तेहि बारम्बारा॥

(पलटू साहेब की शब्दावली पद २६४)

२. बूझि बिचारि गुरु कीजिए जो कर्म ते न्यारा।
कर्म बध हरि दूरि हैं, बूड़हु मझधारा।
काम क्रोध जिनके नहीं, नहिं भूख पियासा।
लोभ मोह एको नहीं, नही जग की आसा।
ज्यों कचन त्यों काँच है, अस्तुति सो निन्दा।
सत्र मित्र दोऊ एक हैं, मुरदा नही जिन्दा।

जोग भोग जिनके नहीं, नहीं संग्रह त्यागी।
बद मोज एको नहीं, सत सबद के दागी।
पाप पुण्य जिनके नहीं, नहीं गरमी पाला।
पलटू जीवन मुक्त ते, साहिब के लाला।

(पलटू साहेब की बाणी भाग ३ पद २)

बूझि बिचारि गुरु कीजिए, जो कर्म से न्यारा।
कर्म बंध हरि दूरि हैं, बूड़े मझधारा।
काम क्रोध जिनके नही, नहिं भूख पियासा।
लोभ मोह जिनके नहीं, नहिं जग की आसा।
ज्यों कंचन त्यों कांच है, अस्तुति सो निन्दा।
शत्रु मित्र सब एक हैं, मुर्दा नही जिन्दा।
पाप पुण्य जिनके नहीं, नहिं संग्रह त्यागी।
बंध मोक्ष एको नही, सत शब्द के दागी।
जोग भोग एको नहीं, नहिं गरमी पाला।
पलटूदास जीवन मुक्त, साहेब के लाला।

(पलटू साहेब की शब्दावली ३६३)

३. सन्त सन्त सब बड़े हैं, पलटू कोऊ न छोट।
आतम-दरसी मिही है, और चाउर सब मोट।

(पलटू साहेब की बाणी भाग-३ पृष्ठ ८४ पद १)

सन्त सन्त सब बड़े हैं, पलटू कोऊ न छोट।
आतमदर्शी मिही है, और चाउर ( ) मोट।

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ:३२४ पद ६७)

४. पलटू संत हैं आयना, सब देखहिं सब ? मांहि।
टेढ सौंभ मुख आपना, ऐना टेढो नाहिं॥

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३१६ पद १)

पलटू ऐसा सन्त है, सब देखे तेहि माँहि।
टेढ सोझ मुख आपना, ऐना टेढो नाँहि ॥

(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ८५ पद २)

५- सद्गुरु केरे शब्द की, लागी है मन चोट।
पलटू रन मे बचि गया, कादरहूँ की ओट ॥

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२० पद ४१)

सतगुरु केरे सबद की, लागी मन में चोट।
पलटू रन मे बचि गया, कादिर ही की ओट ॥

(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ८४ पद ४)

६- मनसा बाचा कर्मना, जिनको है विस्वास।
पलटू हरि पर रहत है, तिन्ह के पलटूदास ॥

(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ८६ पद ३१)

मनसा वाचा कर्मणा, जिनको है विश्वास।
पल पल हाजिर रहेंगे, तिनके पलटूदास ॥

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२१ पद ६१)

७. टुक मन मे विश्वास करु, होय होय पै होय।
पल्टु मास ग्रो अगिन जल, छोट कहे मन कोय ॥

(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ८६ पद ७०)

पलटू साधु के बचन को,खाली करे ना कोय।
टुक मन मे विश्वास करि, होइ होइ पै होय ॥

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३१० पद १६)

'पलटू साहेब की बानी भाग ३' पद सख्या ४२ मे पंक्तियो की संख्या ग्यारह है, लेकिन पलटू साहेब की शब्दावली में वही पद उद्धृत है (पद-५२४) परन्तु उसमें कुल नौ पंक्तियाँ हैं। और उसी भाग के पृष्ठ ४२ का १२५ वां पद शब्दावली का ७२२वा पद है, परन्तु बानी में चार चरण अधिक हैं। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

"पलटू साहेब की शब्दावली" की भूमिका में दिखाया गया है कि "प्रस्तुत शब्दावली, श्री अयोध्या जी के पलटू साहिब के अखाड़े में सुरक्षित प्रति के आधार पर तैयार की गई है और उसका पाठ तैयार करने में विशेष ध्यान रखा गया है कि भाषा का स्वरूप न बिगड़ने पावे। इस दृष्टि से इस शब्दावली का महत्त्व और भी अधिक है कि उस समय बोली जाती भाषा ज्यों की त्यों वर्तमान है। इस से ज्ञात होता है कि शब्दावली मूल पोथी के आधार पर बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के लिखी गई है। दोनों संग्रहों में जो शाब्दिक अन्तर है उस पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि शब्दावली के परिवर्तित शब्द शुद्ध संस्कृत के तत्सम शब्द हैं और बानी में वही शब्द विकृत रूप में हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि शब्दावली में जान बूझकर यह परिवर्तन कर दिया गया है।

विचारधारा

(१) दार्शनिक-विचार

पलटूदास साधक थे, दार्शनिक नही थे। अतः उन्होने किसी दार्शनिक सिद्धान्त के प्रतिपालन की आवश्यकता नही समझी और न वे वैसा करने में समर्थ थे। स्वानुभूति के वर्णन मे प्रसगवश उपदेश के रूप मे इनकी रचनाओ मे आध्यात्मिक तत्वों या सिद्धान्तो का समावेश अनायास ही हो गया है और उसी प्रसगवश कुछ कह दिया गया है। न उनमे किसी मत का निरूपण है और न किसी एक मत विशेष का प्रतिपालन ही है। उनकी उपलब्ध रचनाओ के आधार पर इनके विचारो पर प्रकाश डाला जा रहा है।

ब्रह्म

पलटूदास साधारणत ब्रह्म वर्णन मे अद्वैतवाद के पक्षपाती प्रतीत होते हैं। उन्होंने कई स्थलो पर ब्रह्म और जीव की एकता का समर्थन किया है और द्वैतवाद का खण्डन[1] किया है। उन्होंने ब्रह्म को परम पुरुष[2] तथा साहब[3] इत्यादि नामों से सम्बोधित किया है। इनके अनुसार महावत्त(?)भी ब्रह्म ही[4] है।

पलटूदास के अनुसार वह ब्रह्म निर्गुण है, शास्वत है तथा अखण्ड है। वह सर्वव्यापी है। अतः ससार के कण-कण मे व्याप्त है। सूर्य के तेज में, चन्द्रमा की शीतलता में, फूल की सुगन्ध मे तथा काठ मे अग्नि की भाँति वह प्रत्येक स्थान मे

१-जोई जीव सोई ब्रह्म एक है।

दृष्टि अपानी चर्मा।।

(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ४४ पद ६२)

२- परम पुरुष के संग रंग बहु कीजिये। शब्दावली पृष्ठ ६६ पद २००

३- साहेब से मइ यारी सजनी, ब्याह भयो बिन मंगनी।

(पलटू साहब की शब्दावली पृष्ठ ४ पद १५)

४-पूरन ब्रह्म अखंड सकल घट आपु बिराजे। बानी भाग १३८। ६६

सर्वदा विद्यमान रहता है।[1] कोई स्थान ब्रह्म से रिक्त नहीं है। साथ ही साथ यह *सृष्टि भी उसी विराट में स्थित है :-*

खालिक खलक खलक मे खालिक ऐसा अजब जहूरा है।
हाजी हज्ज हज्ज मे हाजी, हाजिर हाज हजूरा है।
फल मे फूल, फूल मे फल है, रोसन नबी का नूरा है।
पलटूदास नजर नजराना पाया, मुरसिद पूरा है[2]।

इन्होंने ब्रह्म को दो *प्रकार का कहा है। एक निर्गुण जो निराकार है।* इसके ऊपर जगत् अथवा जीव का कोई गुण आरोपित नहीं किया जा सकता। विश्वातीत रूप मे यह अनिर्वचनीय है, परन्तु यही ब्रह्म माया युक्त होने के कारण सगुण हो जाता है जो इस सृष्टि का सृजन, पालन तथा संहार करने वाला होता है। वस्तुतः दोनो एक ही हैं। एक सोपाधि ब्रह्म कहा जा सकता है और दूसरा मायातीत निरुपाधि, निर्गुण ब्रह्म। माया रूपी वायु के सम्पर्क मे ब्रह्म रूपी जल मे सगुण ब्रह्म रूपी तरगो को ब्रह्म ही कहेंगे। लहर और जल मे अन्तर नहीं है। भिन्न रूप होने के कारण दोनो अलग नहीं कहे जा सकते। उस ब्रह्म की अद्वैतता सिद्ध करने के *लिए पलटूदास ने कनक कुंडल तथा मिट्टी और घड़े का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत* किया है :-

जोई जीव सोई ब्रह्म एक है, दृष्टि अयानी चर्मा।
जिव से जाइ ब्रह्म तब होता जिव बिनु ब्रह्म न होई॥
फल मे बीज बीज मे फल है अवर न दूजा कोई।
नीर मे लहर लहर मे पानी, कैसे के अलगावे॥
छाया मे पुरुष, पुरुष मे छाया, दुइ कहवां से पावे॥
अच्छर में मसी मसी में अच्छर, दुइ कहवा से कहिये॥
गहना कनक कनक मे गहना, समुझि चुप्प करि रहिये॥
जीव मे ब्रह्म ब्रह्म मे जिव है, ज्ञान समाधि मे सूझे॥
मटि मे घडा घडा मे माटी, पलटूदास यो बूझे॥
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ४४ पद ९२)

१– जैसे काठ मे अग्नि है, फूल मे है ज्यों बास।
हरि जन मे हरि रहत हैं, ऐसे पलटू दास॥
मिहंदी मे लाली रहे, दूध माहि घिव होय।
पलटू तैसे संत हैं, हरि बिन रहे न कोय॥
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ८८ पद ४६–५)

२– पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृष्ठ ६७ पद–१२०

ब्रह्म एक है और समस्त सृष्टि में व्याप्त है। जिस प्रकार घड़े में पानी भरकर रखने पर उसमें आकाश का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है, अगर उसी घड़े को फोड़ दिया जाय तो आकाश ही आकाश रह जाता है, उसी प्रकार इस नश्वर शरीर में ब्रह्म का प्रकाश है। यह प्रकाश सबमें है। जिस प्रकार घड़े के फूट जाने पर आकाश का नाश नहीं होता उसी प्रकार शरीर का ही नाश होता है, चैतन्य ब्रह्म का नहीं[१]।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" के पोषण में इन्होंने बूंद तथा समुद्र का उदाहरण दिया है। जिस प्रकार एक बूंद जल सब समुद्र भर में फैल जाता है उसी प्रकार एक ही ब्रह्म समस्त संसार में फैला हुआ है और चौरासी लाख योनियों में वही रूप भासित होता है[२]।

मानव शरीर में स्थित यह ब्रह्म सत् है। इस सृष्टि के आदि काल में वह वर्तमान था, अब भी है तथा अन्त में भी वही रहेगा। वेदान्त के मतानुसार आत्मा चैतन्य है क्योंकि परम ब्रह्म उपाधि सम्पर्क के कारण ही जीव भाव में वर्तमान रहता[३] है। पलटूदास ने भी जीव और ब्रह्म की एकता सिद्ध करते हुए कबीर की भांति उसको सर्वव्यापी तथा सत् माना है[४]।

१– प्रतिबिम्ब आकाश को देखा चहे, भरे घट में उसका भास है जो।
उसी घट को फिर फोरि डारे, आखिर को रहे अकाश है जो।।
इस भांति से जड़ शरीर महँ, चेतन करै परगास है जो।।
पलटू शरीर का नास होवे, चेतन का नाहीं नास है जो।।
[पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ५८ पद ५६]

२. पूरन ब्रह्म अवतार विदित जग जाहिर हो।
ललना लख चौरासी धरि रूप कोऊ नहीं माहिर हो।।
× × ×
बूंद एक समुद्र सारा फैलि गा संसार में।
उलटि आपा आप देखै, बूझि लेहु ओंकार में।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ २१७ पद ६१०)

३- विवेक चूणामणि–स्वामी शंकराचार्य पृष्ठ ६६।१६८

४- आदि अन्त हमहीं रहे, सबमें मेरो बास।
सबमें मेरो बास और ना दूजा कोई।।
ब्रह्मा विस्नु महेस, रूप सब हमरे होई।।
हमहीं उत्पति करैं करैं हम ही संहारा।।
घट घट में हम रहैं, रहैं हम सबसे न्यारा।।
पार ब्रह्म भगवान् अस हमरे कहवावैं।।
हमहीं सोहं शब्द जोति ह्वै सुन्न में आवैं।।
पलटू देह के धरे से वे साहिब हम दास।।
आदि अन्त हमहीं रहे सब में मेरो बास।।
(पलटू साहेबकी बानी भाग १ पृष्ठ ६६ पद १७८)

यद्यपि यह ब्रह्म उपाधि के कारण मनुष्य में जीव रूप मे वर्तमान रहता है, परन्तु दुःख-सुख का अनुभव ब्रह्म को नही होता। मुण्डकोपनिषद मे एक ही वृक्ष की शाखा पर बैठे हुए ब्रह्म और जीवात्मा रूपी पक्षियो का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया, समान वृक्षे परिवस्वजाते।
तयौरन्यः पिप्पल स्वाद्वत्यत्य नश्ननन्यो अभिचाकशीति ॥

(मुण्डक तृतीय खण्ड १ श्लोक १ पृष्ठ ८५)

पलटूदास ने इसी भाव को इस प्रकार कहा है :—

बिनु मूल के झाड इक ठाढ़ि रहा,
तिस पर आ बैठे दुइ पच्छी।
इक तौ गगन मे उडि गया,
इक लाइ रहा बकु ध्यान मच्छी।
गगन मे जाइ के अमर भया,
वह मरि गया चारा जिन भच्छी।
पलटू दोउ के बीच खेले,
तिहि बात है आदि अनादि अच्छी ॥

(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ४१ पद ३१)

यही ब्रह्म ससार का निमित्त तथा उपादान कारण है। यही कर्त्ता तथा कर्म दोनों है। यह स्वय मालिक है और नौकर भी। दाता, भिक्षुक, वेश्या, व्यसनी, रोगी तथा वैद्य, सब कुछ यही है।

जगन्नाथ जगदीश जग मे व्यापि रहे है।
चारि खानि औ लख चौरासी और न कोई दूजा।
आपुइ ठाकुर आपुइ सेवक करें आपनी पूजा,
आपुइ दाता आपुइ मगता आपुइ जोगी भोगी ॥
आपुइ वेश्या आपुइ व्यसनी आपु वेद आपु रोगी,
ब्रह्मा विष्णु महेशी आपुइ सुर नर मुनि होइ आया?
आपुइ ब्रह्म निरूपण गावैं, आपुइ प्रेरित माया?
आपुइ कारण आपुइ कारज विश्व रूप दरसाया?
पलटूदास दृष्टि तब आवे संत करे जब दाया?

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ४३ पद १४४)

पलटूदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं, परन्तु कभी-कभी वे निर्गुण तथा सगुण दोनों से परे की बात करते हैं। निर्गुण गुणहीन हैं और सगुण गुणमय है।

निरगुन में गुन नाहिं सगुन गुन भाते हो।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ २२१ पद ६१२)

परन्तु कबीर की भाँति पलटूदास का ब्रह्म विचित्र है। कबीर ब्रह्म को भारी तथा हल्का कहने में डरते हैं। वे उस अनिर्वचनीय तत्व का निरूपण करने में असमर्थ थे, उसी प्रकार पलटू का भी ब्रह्म विचित्र है। अतः वह अनिर्वचनीय है।

आदि अन्त अरु मध्य नहिं रंग रूप नहिं रेख।
गुप्त बात गुप्तै रही, पलटू तोपा देख ॥
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ३७ पद १६)

जीवात्मा

अन्त. करणावच्छिन्न चैतन्य को जीव कहते हैं। शरीर तथा इन्द्रिय समूह के अध्यक्ष और कर्म फल के भोक्ता आत्मा को ही जीव कहते हैं[१]। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से चिनगारियों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार नाना रूपों से युक्त पदार्थ उस परमात्म से उत्पन्न होते है और उसी में विलीन हो जाते हैं[२]। यह आत्मा दिव्य, अमूर्त, बाहर-भीतर विद्यमान, अजन्मा तथा विशुद्ध है। यह आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होता। उपाधि के कारण ही यह जीव भाव में विद्यमान रहता है। वस्तुतः जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं। यह अद्वैतवाद का सिद्धान्त है।

पलटूदास ने जीव की उत्पत्ति माया से मानी है। जिस प्रकार शान्त जल में वायु के कारण जल ऊपर उठता है और उसे लहरों की संज्ञा दी जाती है उसी प्रकार माया द्वारा उत्पन्न यह जीव भी उपाधि के कारण ही पैदा होता है अन्यथा मूलरूप में वही ब्रह्म है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है उन्होंने कनक-कुण्डल,

---

१- भारतीय दर्शन पृष्ठ ४४६ जीव विचार

२- तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्वि स्फुलिंगाः ।
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ।
तथाक्षरा द्विविधाः सौम्यभावाः,
प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥
(मुण्डकोपनिषद २।१।१)

३- दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः ।
अप्राणोह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥
(मुण्डकोपनिषद २।१।२)

अक्षर और मसि फल तथा फूल तथा छाया और पुरुष के उदाहरण से जीव तथा ब्रह्म की एकता को समझाया है।[1]

तीनो गुणों से युक्त ब्रह्म ही जीव होता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार आकाश से गिरा हुआ स्वच्छ जल भूमि पर गिर कर गदा हो जाता[3] है। ब्रह्म और जीव का भेद केवल अज्ञान के कारण है। जिस प्रकार जल और तरंग मे द्वैत का कारण वायु है उसी प्रकार जीव और ब्रह्म मे माया के द्वारा द्वैत की भावना दृष्टिगोचर होती है। अगर यह जीव तीनो गुणो से परे हो जाय और कर्म के बन्धनो से छूट जाय तो यही ब्रह्म हो जाता है। समस्त सतापो से मुक्ति पाकर यह जीव स्वय आनन्दित हो उठता है। चैतन्य ब्रह्म मे अस्थिरता का कारण माया है निरुपाधि जीव ही ब्रह्म होकर शान्त हो जाता है।[2]

जिस प्रकार दही मथ देने पर मक्खन निकलता है और उसको गर्म कर देने पर घी निकलता है उसी प्रकार क्षिति, जल, पावक, गगन, के साथ वायु का सहयोग होने से ही जीव की उत्पत्ति होती है। जीवात्मा का विनाश नही होता, अन्त मे सब तत्त्व नष्ट हो जाते है।[4]

---

१. भेद नहीं अलगाता है जीव ब्रह्म के सजनी ।
जल से उठे तरंग है सजनी जल हो बीच समाता है ।।
× × × × ×
छाया में पुरुष, पुरुष में छाया दूजा नहीं अटाता है।
पलटूदास फूल है एकै तामें बास बसाता है ।।
(पलटूदास की शब्दावली पृष्ठ २७ पद ६७)

२. तीन गुन जब नाहिं ब्यापे, जीव से तब ब्रह्म भयो,
भूख नहीं पियास निद्रा, आपु तजि आपा लयो।
कर्म बंधन छूटं जब हीं, तब करता आप है।।
दास पलटू मगन मूरति मेटि सब सताप है ।।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ २१८ पद ६१०)

३. भूमि परत भा ढाबर पानी, जनु जीविहि माया लपटानी।
(रामचरितमानस)

४– कहवां से जिव उत्पत्ति अंत कहाँ फिरि जाय।
माया से जिव उत्पत्ति उलटि ब्रह्म में जाय।
माया जीव और ब्रह्म का भेद नही अलगाय।
× × × ×
पलटूदास कहि दिहला बूझो भेद बनाय ।।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३६ पद १२३)

ज्यों-ज्यों यह जीव शुद्धता को प्राप्त होता जाता है त्यों-त्यों उसमें ब्रह्म की प्राप्ति के लिए व्यग्रता तथा उत्कंठा बढ़ती जाती है। आत्मा और परमात्मा के मिलन की कल्पना ही अत्यंत आनन्ददायिनी है। पलटूदास ने एक चिरविदग्धा नायिका की भाँति प्रियतम के मिलन के समय की नाना प्रकार की क्रियाओं का जिस तन्मयता पूर्वक वर्णन किया है, अपनी आशा की मूर्ति में जिस प्रकार गद्‌गद् हो जाते हैं तथा वे अपने प्रियतम से मिलने की कल्पना मात्र से ही जिस प्रकार आनन्द विभोर हो जाते हैं उसका अनुभव एक भुक्तभोगी ही कर सकता है। प्रियतम के इंगित मात्र पर ही उससे मिलने की उत्कंठा तथा प्रियतम के घर के प्राप्त हो जाने पर उस घर की बहार का वर्णन बड़ा ही मनोहर है—

पिया मोरे मान दिवाइन मोसे रहा ना जाय।
दिन दस नैहर खेलो हम धन जावें ससुरार।
त्रिगुण तोरि बहाव्उ रोवें पावों लगवार।
दस दिस में उजियारी खुलि गा गगन केंवार।
अमर लोक चढ़ि बैठे हिरहिर बहै बयार।
रूप झना भलि झलकै यह गति अगम अपार
जिन देखा सोय जाने पिया घर अजब बहार॥
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३८ पद १२६)

पलटूदास का जीव वर्णन वेदान्त सम्मत है और कबीर की भाँति पूर्ण अद्वैत है। उनके अनुसार भ्रमवश माया के ही कारण ब्रह्म और जीव में द्वैत की भावना आ जाती है। शुद्ध ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य से जब मल नष्ट हो जाते हैं तब यही जीव ब्रह्म हो जाता है।

माया

वैदिक काल में माया शब्द का प्रयोग रूप या वेश बदलने के अर्थ में किया जाता था। ऋग्वेद में 'इन्द्रो मायाभिपुरुप ईयते' का वर्णन मिलता है[१]। कालान्तर में यह शब्द भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। स्वामी शंकराचार्य ने इसे परमेश्वर की पराशक्ति माना है। और उनका कहना है कि इसी से समस्त जगत की सृष्टि[२] हुई है। ब्रह्म की भाँति यह माया अत्यन्त अद्‌भुत तथा अनिर्वचनीय[३] है। श्रीमद्‌भागवत में

१—ऋग्वेद ६।४७।१८

२—अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते॥
(विवेक चूड़ामणि पृष्ठ ३७ पद ११०)

३ सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
सांगाप्यनंगाप्युभयात्मिका नो महाद्भुतानिर्वचनीय रूपा॥
(विवेक चूड़ामणि पृष्ठ ३७-१११)

कहा गया है कि जो वस्तु न होने पर भी अस्तित्वमय प्रतीत होती है और जो आत्मा में प्रतीत नहीं होती वही माया है।[1] गो गोचर जह लगि मन जाई, सो सब माया जानहु भाई। यह कह कर महात्मा तुलसीदास ने समस्त दृश्य तथा अदृश्य संसार को माया कहा है। स्वामी विवेकानन्द ने भी समस्त ब्रह्माण्ड तथा तज्जनित प्रत्येक वस्तु को माया माना[2] है।

अन्य संतों की भाँति पलटूदास ने भी माया की बड़ी निन्दा की है और समस्त व्यक्तियों को इसके पंजे से बचने की चेतावनी दी है। इन्होंने माया को व्यभिचारिणी[3] नागिन[4], व्याघ्र[5], कलवारिन[6] तथा ठगिनी[7] इत्यादि विशेषणों से युक्त किया है।

कबीर की भाँति पलटूदास ने भी माया को नटिनी कहा है। वह प्रत्येक स्थान पर भिन्न-भिन्न आकर्षक रूपों में वर्तमान[8] है। वह परिवर्तनशील है और समयानुकूल रूप परिवर्तित करके संसार को अपने जाल में फँसाती है और इसी से नानत्व की कल्पना होती है। मोर-तोर की भेद बुद्धि का कारण माया ही[9] है। जिस प्रकार ब्रह्म से कोई स्थान रिक्त नहीं है उसी प्रकार माया भी सर्वव्यापिनी है। पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण सब स्थानों पर इसका राज्य है। वह इतनी

१. ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ?
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥
(श्रीमद्भागवत् पुराण २।९। ३२)

२. ज्ञान-योग-स्वामी विवेकानन्द-देखिये 'माया'

३. पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ७३ पद १८८

४. पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ७२ कुण्डलियाँ १८६

५. भाग रे भाग फकीर के बालके कनक औ कामिनी बाघ लागा।
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३३ पद ८५)

६. माया कलवारिनी हेत विष घोरि कै, पिवे विष सबेना कोउ भागे
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३२ पद ८३)

७. माया ठगिनी जग ठगा इन है ठगा न कोय।
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ७१ पद १८३)

८. देखा चारित खूट माया से बचे न कोई
राजा रंक फकीर माया के गोत मे होई।
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ७३ पद १८८)

९. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३२ पद ८२

मोहनी एवं शक्तिशालिनी है कि शंकर इत्यादि देवता और समस्त प्राणी इसके मोह जाल में फंसे हुए हैं। उसने सबको वश में कर लिया है, परन्तु वह स्वयं किसी के वश में नहीं है। वह अपने पति से भी नहीं डरती। अतः पलटूदास ने इसे व्यभिचारिणी कहा है[१]।

दुःखरूपिणी माया प्रत्यक्षरूप से बड़ी मोहक है। यह कनक और कामिनी के रूप में प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है। कबीर ने लिखा है कि यह ठगिनी माया ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के पास भी उनकी स्त्रियों के रूप में वर्तमान है। इसी प्रकार पलटूदास ने भी लिखा है कि यह कनक और कामिनी के रूप में प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है तथा ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी इसके रूप से प्रभावित है। इन्होंने अपने इस कथन की पुष्टि में शृंगी ऋषि, नारद तथा इन्द्र का दृष्टान्त दिया है।[२] वे उन कवियों को भी जानते हैं जो इसी मोहिनी माया के प्रभाव से योग से विरक्त होकर योगी बन गये।[३] इन्द्र को धोखा देने वाली, नारद की बुद्धि को कुंठित करने वाली तथा त्रिशूलधारी शंकर को पराजित करने वाली और अधकार रूपिणी माया भक्त का कुछ नहीं कर सकती। कबीरदास ने इसके प्रभाव को भली-भांति समझा था। उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि सब लोग ब्रह्म प्राप्त करना चाहते हैं लेकिन ये कनक और कामिनी रूपी घाटे किसी को नहीं पहुंचने देती[४]।

सांख्य में इस माया को प्रकृति कहते हैं। मनुष्य शरीर में पच्चीस विकार हैं जो ब्रह्म प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करते हैं। पलटूदास भी माया को श्री शंकराचार्य की भाँति त्रिगुणात्मिका मानते[५] हैं। पाँच तत्व और पच्चीस विकार इसके मूल तत्व हैं। क्षिति, जल, पावक, गगन तथा वायु पाँच तत्व हैं। प्रत्येक तत्व की अलग अलग पाच प्रकृतियाँ हैं। पृथ्वी की प्रकृति हाड, मास, त्वचा नाडी तथा रोम है। जल की प्रकृति, लार, रक्त, पसीना, मूत्र तथा वीर्य हैं। आकाश की प्रकृति काम क्रोध, लोभ, मोह मय, है। वायु की प्रकृति चलन, बोलन, धावन, प्रसारण संकोच

१. सबको बस में करे जगत को माया जोती।
आपु न काहू के होय रहे वह सबसे रीती॥
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ७३ पद १८८)

२. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ७१ पद १८५

३. ,, भाग २ पृष्ठ ३१ पद ८१

४ चलो चलो सबकोइ कहे पिरला पहुंचे कोय।
एक कचन एक कामिनी गहरी घाटी दोय॥ कबीर

५. लिए हैं त्रिगुन फांसी पलटू साहिब की बानी भाग १ पृष्ठ ७३
पद १८१

तथा अग्नि की प्रकृति क्षुधा, तृष्णा, आलस्य, निद्रा तथा मैथुन हैं। यही विकार मनुष्य को ब्रह्म प्राप्ति मे बाधा उत्पन्न करते है। पलटूदास ने चेतावनी दी है कि इन भूतो से दूर रहो। ये व्याघ्र हैं, तुम्हे खा जाएंगे। ये साँप हैं, तुम्हें काट लेंगे। उन्होने कहा है कि कृपा, सत्संग, ज्ञान तथा वैराग्य द्वारा इस माया को जीता जा सकता है[1]।

कबीरदास की भाँति पलटूदास ने भी माया को माटी तथा झीनी कहा है। दूसरे प्रकार से इसी को जड तथा चेतन प्रकृति कहा जा सकता है। एक अविद्या रूपिणी है और दूसरी विद्या रूपिणी। माटी माया को बाह्य स्वरूपगत आकर्षक पदार्थ जैसे कनक और कामिनी तथा झीनी माया को संस्कारगत अर्थात् दु:ख-सुख मान-अपमान कह सकते हैं। पलटूदास के अनुसार माटी माया को छोडा जा सकता है, किन्तु झीनी माया का त्याग करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य[2] है ?

माया के कई सहायक हैं। इनमे काम, क्रोध, मद तथा लोभ इत्यादि मुख्य हैं। पलटूदास ने एक रूपक द्वारा माया तथा उसके सहायको का आकर्षक रूप खीचा है। माया एक चक्की है जिसमें सारा संसार पिस रहा है। काम-क्रोध इत्यादि इसके पीसने वाले हैं। त्रिगुण ही झीक (मुट्ठी भर अनाज जो पिसने के लिए छेद मे डाला जाता है।) डालते है। दुर्बुद्धि इस प्रकार से पीसे हुए आटे को सान कर कर्म के तवे पर सेकती[3] है, परन्तु भगवान का भजन ही माया को मोक्ष से मिला सकता है।

मन और माया का घनिष्ट सम्बन्ध है। पलटूदास ने मन और माया को मित्र माना है। इस मित्रता के फलस्वरूप विवेक नष्ट हो जाता है और मनुष्य दुष्कर्म करने लगता है।[4] इस शरीर रूपी देश का स्वामी मन है। लोभ-मोह इसके दीवाने हैं। कुमति खजांची है और इस राज्य मे पच्चीस विकारो की शक्ति

---

१. पलटू साहेब की शब्दावली भाग २ देखिए माया

२. मांटी माया तो सब तजे, मैंही नहीं तजि जात है जी।
   ओही उनकी खोराक भई, मांटे रहे दिन राति है जी !
   पलटू जो मैंही माया तजै, सो श्री साहिब की जाति है जी ?
   (पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ५० पद ३३)

३. पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ट ७२ पद १८५

४. मन माया में मिलि गया, मारा गया विवेक।
   (पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ८६ पद २८८)

मिल जाती है।[1] जिस प्रकार माया से कोई स्थान रिक्त नहीं है उसी प्रकार मन से भी[1]।

पलटूदास ने माया का संबंध ब्रह्म से जोड़ा[2] है और भगवान को उसका पति स्वीकार किया है, लेकिन माया व्यभिचारिणी है, अत. वह अपने पति से नहीं डरती[4]। उपनिषद में भी एक स्थान पर कहा गया है–

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्[5] ॥

अर्थात् प्रकृति माया है और परमेश्वर मायावी। उसी के अवयव भूत से सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। गीता में भी भगवान् ने अर्जुन से 'मम माया दुरत्यया' कहकर माया को अपना माना[6] है।

पलटूदास ने माया को ही इस सृष्टि का कारण माना है। यही सृष्टि करती है और यही सम्पूर्ण सृष्टि को अपने में इस प्रकार समेट लेती है जिस प्रकार नागिन स्वयं बच्चे पैदा करती है और स्वयं उन्हें खा जाती[7] है। उपनिषद में ब्रह्म को जगत् का सृजक माना गया है और वही सृष्टि को उसी प्रकार समेट

---

१. मुलुक शरीर में भया नवाब मन, लोभ श्रो मोह दिवान जाके।
अमल दस दिसि किहा फौज को राखि के, काम श्रो क्रोध सिपाह बाके।
पाप तहसील चौमुल होने लगी कुमति खजांची रहे ताके।
दास पलटू कहें पाँच पच्चीस को भया अख्तयार बेइमान पाके ॥
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३१ पद ७६)

२. पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ४५ पद ६३

३. माया है राम की लगेगी दौरि के यार फकीर सम्हारो रहना।
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३२ पद ८४)

४. हरि को देइ भुलाय, अमल वह अपना करती।
ऐसी है वह नारि खसम को नाहीं डरती ॥
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ७४ पद १८८)

५. श्वेताश्वर उपनिषद ४।१०

६. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ गीता ७।१४

७- पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ७३ पद १८६

लेता है जिस प्रकार मकडी अपने ही द्वारा निर्मित जाले[1] को। ब्रह्म माया के साथ मिलकर ईश्वर हो जाता है और सृष्टि का कारण बनता है। पलटूदास का यह वर्णन, उपनिषद के अनुकूल ही कहा जाएगा।

पलटूदास ने माया के निरूपण का कोई प्रयत्न नही किया है। प्रसगवश ही कही कुछ कह दिया है। उनका मुख्य उद्देश्य ससार को माया से सतर्क कर देना था, परन्तु उन्होंने माया के केवल ध्वसात्मक रूप को ही देखा है। गुरू का उपदेश, सत्संगति तथा विवेक को इससे मोक्ष पाने का उपाय कहा है ? इन्होंने कनक और कामिनी को माया का रूप तथा ससार का बन्धन माना है और बार-बार इससे बचने के लिए उपदेश दिया है[2]।

जगत वर्णन

पलटूदास की रचनाओं मे कही भी सृष्टि क्रम या जगत् के सम्बन्ध में स्पष्ट वर्णन नही मिलता है। फिर भी अद्वैत के प्रतिपादन या जगत् की नश्वरता के प्रसंग मे जो कुछ कहा गया है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जगत् वर्णन मे उनके ऊपर अद्वैतवाद का प्रभाव है।

अद्वैतवादियो का मत है कि सृष्टि के आदि मे सर्वप्रथम एक निर्विकार तथा अरूप ब्रह्म था। उस ब्रह्म से ओंकार या शब्द की उत्पत्ति हुई। शब्द से आकाश तथा आकाश से वायु विरचित हुआ। वायु से अग्नि को, अग्नि से जल की तथा जल मे पृथ्वी की रचना हुई। इन सूक्ष्म भूतों से दस इन्द्रियाँ, पचवायु तथा बुद्धि और मन बने। इन्हीं अवयवो से सूक्ष्म तथा स्थूल भूतों की रचना की गई है। इस प्रकार जगत की रचना का कर्त्ता ब्रह्म ही है। यही ब्रह्म माया से आवृत्त होकर जब सृष्टि की रचना करता है तब ईश्वर कहा जाता है। यही जगत का निमित तथा उपादान कारण है तथा जगत के कण-कण मे व्याप्त है। कोई स्थान उससे रिक्त नहीं है। वही ब्रह्म इसका विधायक, पालक तथा सहारक है। उसी के द्वारा जगत का सारा विधान संचालित होता है।

---

१. यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च।
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति॥
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि।
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥
(मुण्डकोपनिषद १।१।७)

२. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३३ पद ८१

इस जगत मे एक अविनाशी अश्वत्थ है। इसकी जड ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर फैली हुई हैं। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण मे सिंचित यह वृक्ष शब्द रूप तथा रस इत्यादि पत्तो को धारण करता है। इस वृक्ष की शाखाएं समस्त ससार मे व्याप्त हैं?

पलटूदास के अनुसार इस जगत का निर्माता स्वय ब्रह्म है। उसने ही क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर की रचना की और इन्हीं पांच तत्वो से मनुष्य शरीर का निर्माण हुआ जिसमे वह ब्रह्म स्वयं निवास करता है[1]? इस जगत को देखकर आश्चर्य होता है क्योंकि यह ऐसा उपवन है जो प्रत्यक्ष रूप से बिना माली की देख-रेख के पल्लवित तथा पुष्पित होता है[2]।

एक स्थान पर पलटूदास ने साख्य दर्शन पर आधारित सृष्टि क्रम को अद्वैतवादी पद्धति पर अपनाया है। इन्होंने महातत्व को ब्रह्म मानकर द्वैत की निन्दा की है[3]।

स्वामी शकराचार्य ने ब्रह्म को छोड़कर सबको असत्य माना है। जिस रूप से जो पदार्थ निश्चित होता है यदि वह सतत स्वभाव से विद्यमान रहे तो उसे सत्य

---

१. पानी पवन अगिन से जोरा धरती और अकासा।
पांच तत्व का महल उठाया तहाँ लिहा तुम बासा॥
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ४६ पद १५३)

२. ऐसी कुदरति तेरी साहिब, ऐसी कुदरति तेरी है।
धरती नभ दुइ थीति उठाया, तिसमें घर एक छाया है॥
तिसघर भीतर हाट लगाया, लोग तमासे आया है।
तीन लोक फुलवारी तेरी, फूलि रही बिनु माली है।
घट-घट बैठा आपै सींचे, तिल भर कहीं न खाली है।
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ४ पद ६)

३. पवन पानी कहै अगिन से जोरि के,
नाड़ माटी केरी महल छाया।
पांच है तत्त सोई पांच भूतात्मा,
इन्द्री दस ज्ञान औ कर्म लाया।
मन परकीर्ति हंकार फिर जीव है,
महातत्त सोई है ब्रह्म आया।
दास पलटू कहै दूसरा कौन है,
मार्ग को छोड़ि दे द्वैत माया॥
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ५ पद १३)

कहते हैं[1]। प्रतिक्षण परिवर्तनशील तथा चंचल संसार कदापि सत्य नहीं माना जा सकता। जिस प्रकार अज्ञानवश रज्जु में सर्प की, सीपी में चाँदी की मिथ्या प्रतीति होती है उसी भाँति अज्ञान से ही यह संसार मृगतृष्णा की भाँति सत्य भासित होता है। जिस प्रकार रात्रि का स्वप्न मायिक, काल्पनिक तथा असत्य है उसी प्रकार असत्य होते हुए भी यह नामभात्र जगत सत्य प्रतीत होता है[2]।

मोक्ष

यद्यपि पलटूदास ने निष्काम भक्ति पर अधिक बल दिया है, परन्तु अन्ततोगत्वा किसी प्रकार की भक्ति का फल मोक्ष ही होता है। मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य आत्म-दर्शन ही है जिसका फल मुक्ति है। आवागमन से छुटकारा पाना ही मुक्ति है। अज्ञानवश यह जीव अपने सत्य स्वरूप को भूल जाता है और नाना प्रकार के क्लेशों को सहन करता हुआ चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है। जब साधना के द्वारा जीव और ब्रह्म का भेद तिरोहित हो जाता है और भ्रम दूर हो जाता है तब साधक मुक्त कहा जाता है। उपनिषद् का मत है कि जिस प्रकार समुद्र में तरंग उठती हैं और फिर उसी में लीन हो जाती हैं, जिस प्रकार कि पानी की एक बूंद समुद्र से दूर होकर फिर उसी में मिल जाती है उसी प्रकार वह उन्मुक्त आत्मा भी ब्रह्म में लीन हो जाता है। जिस प्रकार गन्दा जल भी कीचड़ के नीचे बैठ जाने पर स्वच्छ जल मात्र रह जाता है उसी प्रकार दोष से रहित होकर यह आत्मा भी प्रकाशित होने लगता है।

पलटूदास ने नाना प्रकार के दृष्टान्तों द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता को सिद्ध किया है। कभी लहर और पानी का, कभी मणि और प्रकाश का और कभी बूंद और समुद्र का दृष्टान्त देकर उन्होंने अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है[3]।

वेदान्त की मुक्ति दो प्रकार की है—एक जीवन मुक्ति और दूसरी विदेह-मुक्ति।

---

१. भारतीय दर्शन- डा० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ४६४

२. साहिब मेरा सब कुछ तेरा है, अब नाहीं कुछ मेरा है,
यहि हमता ममता के कारन, चौरासी डिहाय फेरा है।
मृगजल निरखि के तृषा बुझै नहिं, मूले भटका बेरा है,
यह संसार रैन का सपना; क्या ममतीपो केरा है।
पलटूदास सब अरपन दीन्हीं तन मन धन औ डेरा है।
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ३३ पद ७३)

३. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ४७ पद ४२

जीवन मुक्त मनुष्य को ससारिक प्रपञ्च नहीं सताते। उसको दुःख-सुख मान-अपमान की चिन्ता नहीं रहती। ससारिक कष्ट उसे सताते अवश्य हैं, परन्तु वह उनसे बाधित नहीं होता। जीवन मुक्त का अर्थ है इस जीवन में ही जीते जी, दुःखों से मुक्ति पा लेने वाला व्यक्ति[1]। जब जीव के स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के कर्मों का अन्त हो जाता है तब जीव को विदेह-मुक्ति प्राप्त हो जाती है।[2]

पलटूदास ने कई स्थानों पर जीवन-मुक्ति का वर्णन किया है और उसे जीवन मृतक भी कहा है। जीवन–मुक्ति की अवस्था आ जाने पर साधक काम-क्रोध इत्यादि से मुक्त हो जाता है। उसको खाने-पीने की चिन्ता नहीं रहती। लोभ-मोह नहीं सताते। लोहा तथा सोना में कोई अन्तर नहीं ज्ञात होता। पाप-पुण्य भी उसे नहीं मिलते क्योंकि सचीयमान कर्म उसके द्वारा नहीं होते। वह ससार की आशा नहीं करता, वह भगवान के प्रेम में मस्त रहता है[3]।

जीवन काल में ही मुक्त होने के कई साधन हैं। लोभ, मोह, अहंकार, काम तथा क्रोध इत्यादि मनोविकारों को त्यागने से भी जीवन मुक्ति मिल सकती है:–

लोभ मोह अहकार ताही की गरदन मारे।
काम क्रोध कछु नाहिं लगे ना भूख पियासा॥
जियते मितंक रहे ना जग की आसा।

---

१. भारतीय-दर्शन पृष्ठ ४७८

२. ,, ,, ,, ४७६

३. काम क्रोध जिनके नहीं, नहिं भूख पियासा।
लोभ मोह एको नहीं, नहिं जग की आसा॥
ज्यों कंचन त्यों कांच है, अस्तुति से निन्दा!
सत्रु मित्र दोउ एक हैं, मुरदा नहिं जिन्दा।
जोग भोग जिनके नहीं; नहिं संग्रह त्यागी।
बन्द मोन एको नहीं, सतत सबद के दागी।
पाप पुन्य एको नहीं, नहिं गरमी पाला!
पलटू जीवन-मुक्त ते, साहब के लाला।
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ २ पद २)

तथा—

जग की आसा करे न कबहूँ पानी पिये ना माँगी हो।
भूख पियास छूटे जब निद्रा जियत मरै तन त्यागी हो॥
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ १५ पद ३४।१)

नाम-स्मरण से भी यह अवस्था हो सकती है :-

पलटू में जियते मुआ नाम भरोसा पार।

(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ६१ पद १५४)

केवल वाचक ज्ञान से मुक्ति नही मिल सकती। उसके अनुसार सत्कर्म करना पड़ेगा। लोभ और मोह को प्रश्रय देने वाले पंडित नरक मे चले गए :-

बिना रहनी रहे मुक्ति ना मिलैगी,
काम ओ क्रोध को नाहिं जीता[1]।

संतो के चरणों की कृपा से भी मनुष्य मुक्त हो सकता है :-

आरति कीजै संत चरन की,
यही उपाय न आन तरन[2] की।

गुरु की कृपा तथा सत्संग से मुक्ति मिल सकती है :-

जब लगि गुरु दरिआव नब न पाये,
तब लगि फिरे भुलाना है ॥
पलटू दास हम पैठि नहाना,
मिटि गा आना जाना[3] है ॥

पांचों भूतो को वश में करके साधक शुद्ध चैतन्य ब्रह्मस्वरूप हो जाता है :-

पांचों भूत जो बसि किया,
तो का लै राम को करना जी।
आपुइ वह रामजी होइ गया,
जियत भया जब मरना[4] जी ॥

× × × ×

जीवित दशा में मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् साधक का अपना कुछ भी नही रह जाता। यह जीव की मुक्त अद्वैतावस्था है :-

साहिब मेरा सब कुछ तेरा,
अब नाही कुछ मेरा है।

---

१. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ २४ पद ६६
२. ,, ,, ,, भाग ३ पृष्ठ ६ पद १३
३. ,, ,, ,, पृष्ठ २ पद ३
४. ,, ,, ,, भाग २ पृष्ठ ४४ पद १८

पलटूदास सब अर्पण किन्हां,
तन मन धन ओ डेरा है[1] ॥

पलटूदास की इस वेदान्त सम्मत विचारधारा पर बौद्ध-धर्म के निर्माण का भी कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अष्टांगिक मार्गों के अनुसरण करने पर सांसारिक पदार्थों की अनित्यता का बोध हो जाता है। तब साधक (भिक्षु) राग, द्वेष आदि क्लेशों को नाश कर अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। निर्वाण वह मानसिक दशा है जिसमे भिक्षु जगत के अनन्त प्राणियों के साथ अपना विभेद नही करता प्रत्युत वह सबके साथ अपनी एकता स्थापित करता[2] है। विषय वासनाओं का नष्ट हो जाना ही निर्माण है। इसमे मन तथा हृदय शान्त हो जाते हैं। धीरे-धीरे साधक पाप-विहीनता की ओर अग्रसर होता है और कालान्तर मे शुद्ध हो जाता है। पलटूदास कही पर शून्य को शून्य मे लीन करते है और साथ ही साथ मनोमारण की भी चर्चा करते हैं।

पलटूदास ने कही-कही कैवल्य अवस्था का भी वर्णन किया है। जब सब उपाधियाँ नष्ट हो जाती हैं और जब केवल ब्रह्म ही रह जाता है या यों कहा कहा जा सकता है कि जब चेतन शक्ति अपने स्वरूप मे लय हो जाती है तो वही केवल अवस्था है। इन्होने इसी अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है :-

अब चित चले ना इत उत आपु मे आपु समाना[3] ?

पलटूदास की मोक्ष सम्बन्धी धारणा बौद्धो तथा योगियों से प्रभावित होती हुई भी वेदान्त सम्मत है। वह अद्वैत सिद्धान्त पर आधारित है। उन्होंने सूफियों की मारिफत की भी बातें की हैं, परन्तु वह केवल मुक्ति के समानार्थी के रूप मे मौलवियों को समझाने मात्र के लिए प्रयोग किया गया जान पड़ता है। इन्होंने उन्मुक्त आत्मा को ब्रह्म लोक मे या कबीर-पंथियों की भाँति इसे सत्त लोक मे जाने की चर्चा नहीं की है ?

धार्मिक विचार

भारतीय मनीषियों ने धर्म की परिभाषा नाना प्रकार से की है। मनु ने सामाजिक तथा नैतिक नियमो को धर्म कहा है[4]। महाभारत के कर्ण पर्व मे महर्षि

१. पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ३३ पद ७२
२. बौद्ध दर्शन मीमांसा डा० बलदेव उपाध्याय
३. पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ३७ पद ६५
४. आचार प्रभवो धर्मः। मनुस्मृति १-१०२

वेदव्यास ने भी धर्म की परिभाषा दी है। उनके अनुसार समाज को व्यवस्थित रखने वाले समस्त तत्वों को धर्म की संज्ञा दी जाती है।[1] इसके अन्तर्गत समस्त नैतिक आचार तथा सामाजिक व्यवस्थाएं आ जाती हैं। महर्षि कणाद की परिभाषा कुछ और ही है। उन्होंने लौकिक तथा पारलौकिक प्रत्येक प्रकार के अभ्युदय को देने वाली वस्तु को धर्म[2] कहा है। महर्षि कणाद की परिभाषा एकांगिनी नहीं है। इसके अन्तर्गत सांसारिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने वाला तत्व ही धर्म है। मृत्यु के पश्चात् पारलौकिक समृद्धि का दाता भी धर्म ही है।

धर्म के दो स्वरूप होते हैं। एक तो साधारण तथा दूसरे को विशेष धर्म कह सकते हैं। साधारण धर्म देश, काल तथा जाति से नहीं बंधा रहता। उसका सीधा सम्बन्ध नैतिक आचारों से है। अतः समस्त संसार का साधारण धर्म लगभग एक ही है। सत्य बोलना, चोरी न करना तथा परोपकार इत्यादि साधारण धर्म के अन्तर्गत आते हैं। इसी को मानव धर्म भी कहते हैं। मनुस्मृति में दस मानव धर्मों का उल्लेख है और यही समस्त धर्मों को आधार मिला[3] है। विशेष धर्म का सम्बन्ध विशेष जाति देश अथवा काल से होता है। फलस्वरूप इसका क्षेत्र संकुचित होता है। यह परिवर्तन-शील है। अतः कालान्तर में इसका स्वरूप क्रमशः विकृत होता जाता है जो सामाजिक द्वन्द तथा उथल-पुथल या प्रतिस्पर्द्धा का कारण बनता है। उसी धर्म के माननेवालों में कुछ ऐसे महापुरुष उत्पन्न हो जाते हैं जो उसकी काटछांट कर शुद्ध रूप में लाने का प्रयत्न करते हैं। इन्हीं विशेष धर्मों की प्रतिक्रिया स्वरूप अन्य धर्मों का अभ्युदय होता है जो प्राचीन धर्मों की समस्त त्रुटियों को जनता के सामने रखकर अपना नया धार्मिक रूप जनता के सामने रखते हैं।

कबीर ने जिस मत का प्रचार किया था वह हिन्दू, इस्लाम, जैन तथा बौद्ध इत्यादि धर्मों की विकृति अवस्था को देखकर ही किया था। इसलिये उनके धर्म में समन्वय की प्रधानता है। नाना प्रकार के बाह्याडम्बरों में लिप्त यह हिन्दू धर्म उस

---

१. धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यस्माद् धारणं संयुक्त स धर्म इति निश्चयः !!
(महाभारत वर्ण ६९-५९)

२. यतो अभ्युदयानि थ्रेयससिद्धिः स धर्मः !
(कणाद)

३. धृति. क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः !
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम् ॥
(मनुस्मृति)

समय जनता के लिये कष्टसाध्य हो रहा था। इसीलिये कबीर ने सहज धर्म की स्थापना की थी। 'सहजे होय सो होय'[1] कहकर उन्होंने धर्म के सहज स्वरूप को ही लक्षित किया था।

पलटूदास भी कबीर की भांति एक ऐसे संत थे जो धर्म के बाह्याडम्बरों को देखकर सहज मार्ग के पोषक हो गए थे। उन्होंने इस मार्ग के अनुयायी होने के कारण पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि 'ज्ञान, ध्यान, युक्ति, तीर्थ, व्रत, दान, पुण्य, पूजा, नेम तथा धर्म सब अनर्गल हैं। इनकी क्लिष्टता को देखकर ही संतों की राह निकाली है'[2]।

पलटूदास भी कबीर की भांति सत्यान्वेषक थे। साथ ही साथ उनकी साधना भी अनुभूति पर ही टिकी हुई थी। लिखित तथ्यों का बहिष्कार[3] तो कबीर ने भी किया था। पलटूदास का भी इन पर विश्वास नहीं था क्योंकि अनुभूति पर आधारित सत्य इन के धर्म का आधार है। इन्होंने तर्क को ठीक नहीं समझा। द्वैत भावना से दूर रहने की चेतावनी[4] दी। अत: इनका ब्रह्म निरूपण भी सहज[5] ही रहा। पलटूदास पूर्ण रूप से अद्वैतवादी थे। उनके अनुसार यही ब्रह्म सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त[6] है। 'पूरन ब्रह्म अखण्ड सकल घट मांह विराजैं' तथा 'नीर में लहर, लहर में पानी दुई कहवां से आवैं' कहकर उन्होंने अद्वैतवाद की मान्यता दी है। पलटूदास की यह अद्वैत भावना, ज्ञान तथा तर्क का विषय नहीं है। स्वामी शंकराचार्य की भांति यह कोरे ज्ञान से नहीं सिद्ध किया जा सकता। केवल इसका अनुभव किया जा सकता है। यह सहज भावना न तो स्वामी शंकराचार्य के ब्रह्म के मेल में है और न इस्लाम के खुदा के स्वरूप ही से मिलती है क्योंकि सहज धर्म अनुभूति जन्य अद्वैत सिद्धान्त पर आधारित है।

---

१. कबीर-ग्रंथावली पृष्ठ २६६

२ ज्ञान ना धियान ना जोग ना जुगुति है, मुक्ति चेरी भई द्वार ठाढ़ी।
तीरथ ना बरत ना दान ना पुन्न है, परी जमराज पर चोट गाढ़ी।
पूजा आचार ना नेम ना धर्म है, सेन को पावै बैकुंठ बाढ़ी।
दास पलटू कहैं राह सब छोड़ि के, सहज की राह एक संत काढ़ी॥
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३५।११)

३. क्या पढ़िये क्या गुनिये, क्या बेद पुराना सुनिये।
पढ़ें गुनें होई, सहजना निसियो साई॥
(कबीर-ग्रंथावली पृष्ठ २८० पद ८३)

४. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३ पद १३

५. ,, ,, ,, पृष्ठ ३१ पद ६४

६. ,, ,, ,, भाग ३ पृष्ठ ८१ पद १५१

पल्टूदास का यह धर्म अनुभूति पर टिके होने के साथ-साथ बुद्धि प्रधान भी है। जैसा कि ऊपर कहा गया है इन्होंने कबीर की भाँति वेद-शास्त्रों को एकदम अमान्य कर दिया है। इन्होंने इन पर विश्वास नहीं किया और इनकी बाह्याडम्बर तथा कर्म काण्ड इत्यादि से भी घृणा थी। उनका यह विरोध भी तर्क पर आधारित है। यद्यपि आध्यात्मिक तत्व के चिन्तन में इन्होंने दुविधा को बुरा कहा है, परन्तु विश्वास के क्षेत्र में इन्होंने तर्क पर बल दिया है। बाह्याडम्बरों को प्रश्रय देने वाले तथा द्वेष की भावना फैलाने वाले पंडित और मुल्ला को ललकारा है। छूआछूत की भावना को जीवित रखने वाले पंडित जी से उन्होंने कहा, "पंडित जी आप तो शुद्धता का नारा लगाते हैं। तो आप ही बताइये कि कौन पानी पवित्र है। वर्षा का पानी समस्त गन्दगी को लेकर गंगाजल में मिल जाता है और इसी पानी को पवित्र मानकर गंगा में स्नान करते हैं। हाथी, घोड़ा तथा मुर्दा जलकर इसी मिट्टी में मिल जाते हैं ? उसी का बर्तन बनता है और आप उसे शुद्ध समझ कर उसी में भोजन करते हैं। गाय की नसों से निकलकर दूध बनता है और आप उसी की चर्बी खाते हैं। इन समस्त वस्तुओं में मल है उसी को आप शुद्ध कहते हैं' –

> बरसा पानी नरक बहा सब सरिता बहुरा सोई।
> तेहि बीच पाडे बैठि नहाने शुद्ध कहा से होई ॥
>
> हाथी घोड़ा मुर्दा गलि के मही से भंइ भाड़े।
> तिस भाड़े मे किया रसोई कहवा के तुम पाँडे[१] ॥

पलटूदास को जप तप इत्यादि पर भी विश्वास नहीं था। लोकाचार तथा वेदाचार को इन्होंने तिलाजंलि दे दी थी :—

> जप तप ज्ञान वैराग जोग ना मानिहों।
> सरग नरक बैकुन्ठ तुच्छ सब जानिहो।
> लोक वेद ना सुनी आपनी कहौंगा।
> अरे हाँ पलटू एक भक्ति सिर धरों सरन ह्वै रहौंगा[२]॥

उनका विश्वास था कि :—

> भूला एक ना दोय सकल ससार है।
> लोक बेद के साथ बहा मँझधार[३] है ॥

तथा

---

१. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ २२६ पद ७२०
२. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ७५ पद ६६
३. „ „ „ पृष्ठ ८६ पद १३१

ढूढत भ्रम्य गरंथ मे, लिखि कागद मे कहुँ राम लुकाही[1]।

और

तीरथ मे खोजत फिरे कहुँ राम लुकाई

एक न भूला दो नाहिं भूली दुनियाई[2]

पलटूदास का सहज धर्म इसीलिए तर्कसंगत विश्वास पर आया था। उसमें पूजा-व्रत, तीर्थ वेद-शास्त्र इत्यादि का लेश मात्र भी समावेश न था। सहज की प्राप्ति सहज ही मार्ग से हो सकती है। अतः मन हृदय तथा आचरण की शुद्धता ही इस सहज धर्म के मुख्य अंग हैं। पलटूदास का दृढ विश्वास है कि मन की शुद्धि के बिना शुद्ध चाल भी नहीं आ सकती। काम, क्रोध तथा मद इत्यादि मनोविकार समस्त भव जाल की जड़ हैं। मोर तथा तोर का समस्त झमेला तथा विषय वासनाओं के इस जाल के मूल मे यही मन की मैल काम करती है। अतः जिसने इसको त्याग दिया वही मुक्त हो गया[3]।

मन की शुद्धिकरण के साथ विचारो का निर्मल होना अत्यंत आवश्यक है। अगर विचार गन्दे हैं तो धर्म भी गन्दा है और अगर विचार शुद्ध हैं तो धर्म भी शुद्ध है। प्रायः ऐसा देखने मे आया है कि जब-जब किसी धर्म मे विचारो की अशुद्धता आई उसी समय से वह धर्म धीरे-धीरे कलुषित होने लगा और नाना प्रकार की बुराइयाँ उसमे प्रविष्ट हो गई जिसके प्रतिक्रियारूप मे अन्य धर्म की स्थापना हुई। बौद्ध तथा जैन धर्म इसके उदाहरण मे कहे जा सकते हैं। विचार शुद्धता आचारों पर आधारित रहती है। कोई धर्ममूल रूप मे बुरा नही होता बल्कि उसके अनुयायी उसमें अंधविश्वासो को जोडकर अशुद्ध कर देते हैं। आचरण के दो पक्ष होते हैं। एक विधिरूप मे और एक निषिद्धरूप मे। प्रथम मे सत्याचरण, परोपकार, दया, दान, धीरज, संतोष, सारग्राहिता, सहन-शक्ति, शील, क्षमा तथा अहिंसा आदि प्रमुख है। निषिद्ध आचरणों में मद्यपान, मांस, भक्षण, काम, क्रोध, लोभ, मान, कपट तथा तृष्णा आदि आते हैं।[4] पलटूदास ने भी निषिद्ध आचरणों के त्यागने की राय दी है।

१. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ६५ पद १

२. ,, ,, ,, पृष्ठ ६८ पद २८४

३ हमता ममता को दूरि करे, यही तो मूल जनार है जी।
चाह अचाह को छाडि देवे, यहि सहज सभाव की चाल है जी।
मोर औ तोर विकार छूटे, सबसी मिले हरहाल है जी।
पलटू जिन वासना बीज भूना वही साहेब का लाल है जी॥
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पद ४२ पृष्ठ ५३

४. कबीर की विचारधारा—डॉ० त्रिगुणायत पृष्ठ ३६१

पलटूदास साम्यवादी प्रकृति के थे, अतः प्रत्येक स्थान पर समानता का ही उपदेश देते थे। मान, अपमान, सुख, दुःख, स्तुति तथा निन्दा को समान मानते थे। जाति-पाँति को विनष्ट करके साम्यवादी समाज की स्थापना करना उनका ध्येय था। कबीर की भाँति उन्होंने भी कथनी और करनी को समभाव करने का उपदेश दिया है[१]। समस्त विषमताओं को साम्यरूप देने के लिये वे अत्यंत प्रयत्नशील दिखाई देते हैं।

पलटूदास का सहज-धर्म ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य पर आधारित था। इन्होंने वैराग्य को सर्वप्रथम स्थान दिया है। वैराग्य का अर्थ घर से निकल कर दर-दर ठोकरें खाना तथा योगिया वस्त्र धारण कर घूमना ही नहीं है, बल्कि इनके अनुसार इसका शुद्ध अर्थ माया जन्य विकारों से दूर रहने से है। धर्म-कर्म, छोड़कर, जगत की आशा त्यागने वाले को ही वैरागी कहा जा सकता[२] है। इन्द्रियों को वश में करना तथा सांसारिक प्रपंचों से विरक्त होकर मन को अपने वश में कर लेना ही वैराग्य[३] है। पलटूदास ऐसे ही एक वैरागी थे। इनका दृढ़ विश्वास था कि ऐसे पुरुष को यह तत्व प्राप्त होता है जिसके सम्मुख मुक्ति हेय है।

सहज धर्म में कर्म का भी विशेष महत्व है। बिना कर्म किये न तो ज्ञान हो सकता है और न भक्ति ही आ सकती है। अतः साधना की प्रथम अवस्था में कर्म करना विशेष आवश्यक है। साधना की द्वितीय अवस्था में इन्होंने कर्म को त्याग देने को कहा है। जिस प्रकार फल के पहले फूल का होना आवश्यक है उसी प्रकार ज्ञान के लिये कर्म भी आवश्यक है। ज्ञान रूपी फल उत्पन्न होने के पश्चात् कर्मरूपी फूल स्वतः झड़ जाते हैं। पहले ईख बोई जाती है तब उसका रस निकलता है। उसी प्रकार जब पहले कर्म किया जाता है तब ज्ञान उत्पन्न होता[४] है। इसी ज्ञान की आँधी के सामने सांसारिक विषय-वासनाओं का छप्पर उड़ जाता है और यह ज्ञान परब्रह्म का ज्ञान कहा जाता[५] है।

इन्होंने सामाजिक क्षेत्र में कर्म को मान्यता दी है। उन्होंने कहा है "अपनी-अपनी करनी, अपने अपने साथ"[६] जो जैसा करेगा उसको वैसा फल मिलेगा। इन्होंने

---

१. कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ५३
२. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ४४ पद १६
३. „ „ „ भाग २ पृष्ठ ४४–४५ पद १८
४. „ „ „ पृष्ठ ५६ पद २१
५. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १२२ पद ३०८
६. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ६० पद १५२

कथनी तथा करनी को एक ही सिक्के के दो पहलू की भाँति सबन्धित माना है। विवेक, सहनशक्ति विषय-वासनाओं से विरक्ति, नियमों तथा आचारों का सम्यक् पालन, सनातन धर्म के साथ-साथ शुभ-अशुभ कर्मों का विचार ही निर्मल कार्यों के अन्तर्गत आते है।

सरवंगी जो नाम के रहनी सहित विवेक।
रहनी सहित विवेक एक करि सबको मानै।
ग्यान पिश्रन मे जुदा नही एक मे सानै।
लिये रहै मरजाद तजै ना नेम अचारा॥
धर्म सनातन सहित अशुभ शुभ करे विचारा॥

बोले शब्द अधीर भजन अद्वैता अगी।
कारज निर्मल करे सोई पूरा सरवंगी॥
पलटू बाहर कुल धरम भीतर राखै एक।
सरवंगी जो नाम के रहनी सहित बिवेक॥

(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ६० पद १५३)

स्पष्ट है कि इनकी साधना कष्ट साध्य न होकर कबीर की साधना की भाँति सहज है। इन्होंने मानसिक साधना को प्रधानता दी है। उसमें योग की जटिलता का कहीं स्थान नहीं है। उनकी यह मानसिक साधना भक्ति पर आधारित है और उस साधना का मार्ग सरल है। उनके अनुसार हठयोगी अनाड़ी है, प्राणायाम, मुद्रा, धोती, नेती तथा चौरासी आसन इत्यादि सब व्यर्थ हैं। केवल एक भक्ति ही सत्य है। यह केवल आडम्बर है। इससे ब्रह्म प्राप्त नहीं हो सकता। इस भक्ति मे नाम स्मरण, अजपा जाप तथा प्रपत्ति ही मुख्य है :—

एक भक्ति मे जानो और झूठ सब बात।
और झूठ सब बात करै हठयोग अनारी।
ब्रह्म दोष वो लेय काया की राखै जारी।
प्रान करै आयाम कोई फिर मुद्रा साधै॥

धोती नेती करै कोई लै गयै स्वासा॥
उनमुनि लावै ध्यान करै चौरासी आसन।
कोई साखी सबद कोइ तप कुदा के डासन।

पलटू सब परपंच हैं करै सो फिर पछितात !
एक भक्ति मे जानो और झूठ सब बात !!
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ २२ पद ५६)

कबीर का सहज मार्ग मानसिक भक्ति पर आधारित है। पलटूदास ने स्पष्टतया पत्थर को छोड़कर आत्मा की पूजा करने का उपदेश दिया है। उनका कहना है कि "पत्थर की मूर्ति बना कर लोग उसका भोग लगाते हैं, परन्तु साक्षात् शरीरधारी भगवान् ही बिना भोजन किए चले जाते हैं।" अत गुरु तथा सतो की सेवा प्रत्येक मनुष्य को करनी चाहिए। "भाव भगति" का यही मर्म है, उनको कम लोग जानते' हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पलटूदास के धार्मिक विचार कबीर की विचार-धारा से मिलते-जुलते हैं। सहज धर्म का समस्त व्यापार ही सहज है। इसमे मानव-धर्म तथा नैतिकता इत्यादि का समावेश है, पाखड तथा बाह्याडम्बर को कही स्थान नही है। वह धर्म भक्ति की नीव पर खडा है। मन की शुद्धता की प्रधानता के साथ-साथ भाव भक्ति ही सब कुछ है।

सामाजिक विचार

समाज के बीच मे रहकर ही मनुष्य अपनी मानवता के वरदान को सिद्ध करता है। मनुष्य का प्रभाव समाज पर पडता है और उसी प्रकार समाज भी मनुष्य को प्रभावित करता है। समाज मनुष्यो का समुदाय है। जिसमे मानव अपनी विशेष आवश्यकता को पूरी करने के लिए ही नही अपितु समस्त जीवन की ऐसी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए एकत्र होते हैं जो समाज के सब सदस्यो मे

---

१. जल पखान को छोड़ि कै पूजौ आतम देव।
पूजौ आतम देव खाय औ बोलै माई।
छाती दैके पाँव पथर की मुरति बनावै;
ताहि धोय अन्हवाय बिजन लै भोग लगाई।
साच्छात भगवान द्वार से भूखा जाई।।
काह लिये बैराग झूठ के बांधे बाना।
भाव भक्ति की मरम है कोइ बिरले जाने।।
पलटू दोउ कर जोरि कै गुरु संतन को सेव।
जल परवान को छोड़ि कै पूजौ आतम देव।।
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ १०४ पद २६८)

अनुभव होती है। मनुष्य मे सामाजिकता का स्वभाव प्राकृतिक है। समाज बिना व्यवस्था के रह ही नही सकता। समाज तो एक प्रकार से मनुष्य जाति का एक विशाल एव विस्तृत परिवार है। जिसका आधार स्नेह है। मनुष्य के सब प्रकार के सम्बन्धो पर और उसकी सब प्रकार की संस्थाओ का नाम समाज है। जिसको मनुष्य ने अपने समाज उद्देश्य की प्राप्ति, रक्षा की भावना तथा व्यक्तित्व के विकास के उद्देश्यो से बनाया है। डा० जेम्स के अनुसार समाज मनुष्य की मैत्रीपूर्ण या कम से कम शान्तिमय पारस्परिक सम्बन्धो के स्थिति का नाम है। समाज, भूत, वर्तमान और भविष्य, तीनो कालो के मनुष्यो का ऐसा समूह है जो निरन्तर प्रगति अथवा विकास के लक्ष्य की ओर प्रगतिमान है। गांधीजी का कथन है कि मनुष्य रूपी बूंदो से समाज समुद्र का निर्माण होता है।

मनुष्यो के गुण के अनुरूप ही समाज की रचना होती है। जिस समाज में अधिक नैतिक, धार्मिक तथा कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति होगे वह समाज उतना ही उत्कृष्ट समझा जाएगा। साधारण धर्म तथा समाज की अवहेलना करने वाले कर्त्तव्ययुक्त प्राणियो से समाज अव्यवस्थित हो जाता है और उसमें पापाचार, मतभेद तथा पाखड उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार समाज का प्राचीन शुद्ध स्वरूप बदल जाता है। इस प्रकार की स्थिति के उत्पन्न होने पर महापुरुषों का अवतार होता है जो समाज को सुव्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न करते हैं और उसको शुद्धता प्रदान करते हैं।

स्वामी शंकराचार्य ने अद्वैतवाद को मान्यता देकर नानात्व मे एकत्व की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया था। स्वामी रामानुजाचार्य ने भी अपने आचरण तथा भक्ति से जनता का चरित्र निर्माण किया था। कबीर ने भी बुराइयो को दूर करने का प्रयत्न किया था, परन्तु वे पूर्णरूप से सफल न हो सके। तत्पश्चात् समस्त संतों ने इस दिशा मे कबीर के मार्ग का अनुसरण किया। उस समय भारतीय समाज मे व्यक्तिवाद की प्रधानता इतनी अधिक बढ गई थी कि इन समस्त संतो के रोकने पर भी वह उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। पलटूदास के समय मे भी लगभग यही दशा थी। नाना प्रकार की व्यक्तिगत साधनायें प्रचलित थी और पृथक्-पृथक् नामकरण किया गया था। स्वनिर्मित धर्म को ही लोग अच्छा समझते थे और इस प्रकार समाज की एकता अनेकता मे परिणित होती जा रही थी[१]।

---

१. कोयी जोग जुगत की साधन मे, कोयी बैराग्य ले ढूंढता है।
कोइ साखी सबद बनाय कहे, जोरि-जोरि बैठके गूंथता है।
कोइ भांग धतूरा खाय के जी, गुफा में बैठके झूमता है।
कोइ बेद पुरान सिद्धान्त पढ़ें, कोइ बैठि के निरगुन गुनता है।
कोइ उदासी बनि बन-बन फिरे, कोइ घायल होइ के घूमता है।
पलटू फकीर की राह जुदी, इन बातों के ऊपर थूकता है।
(पलटूसाहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ४३ पद १४)

पलटूदास ने अपने पूर्ववर्ती संतों की इस अद्वैत भावना को जागृत रखा। उन्होंने साधना-क्षेत्र में भी एकता लाने का प्रयत्न किया। व्यक्तिवाद को समूल नष्ट करने के लिए उन्होंने कबीर द्वारा निर्मित पथ को और प्रशस्त किया। उनकी निर्गुण भाव भक्ति कबीर की ही देन थी। और यह सबकी होकर भी किसी जाति या वर्ग विशेष की न थी। समस्त धर्मों के निचोड़ को लेकर भी यह सबसे अलग थी। यही कारण है कि उन्होंने प्रत्येक स्थान पर इसी का मण्डन किया है।

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है पलटूदास के समय धार्मिक परिस्थिति डांवाडोल थी। उन्होंने उसका वर्णन यत्र-तत्र किया है। कहीं पर उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों में व्याप्त बाह्याडम्बर, पाखंड तथा अंधविश्वासों का खंडन किया है। कहीं पर देश में प्रचलित विविध साधना-पद्धतियों (विशेषकर योग की जटिलता) की भर्त्सना की है। उन्होंने एक स्थान पर पंडित जी से कहा :–

ब्रह्म कर्म का मर्म न जानो, राखत फिरोहु पतुरिया।
जीव मारिके काया पोखौ, खाते मास मछरिया॥

मास मच्छ ते ब्राह्मण होवे, मछते ढेढ चमारा।
एसो ज्ञान चाहिए पांडे, बूड़हुगे मझधारा॥

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १४३, पद ४०८)

और दूसरे स्थान पर मुलने को जीव हत्या के लिए फटकारा :–

क्यों तू छुरी चलावे मौलने, तुमको दरद न आवै ?
पहले तो बकरा गल काटा, दूजे खेंचो खाला।
ले के जान किया तुम मुर्दा, तुमही कहो हलाला॥

× × × × ×

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १५, पद ४७)

पलटूदास के समय में राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थिति अस्त-व्यस्त थी। हिन्दू तथा मुसलमानों के अतिरिक्त अंग्रेज जाति भी धीरे-धीरे इस समाज में प्रविष्ट हो रही थी। यद्यपि मुसलमान विजेता थे, फिर भी अपना अस्तित्व बनाये रखने का प्रयत्न हिन्दू जनता करती ही थी। दोनों का आपसी संघर्ष जीवित था और इस प्रकार की घटनाएँ प्रायः हुआ करती थीं। यह सब काम धर्म के माध्यम से होता था। कबीरदास की भाँति पलटूदास की आत्मा भी इस संघर्ष, तज्जनित अत्याचार एवं विनाश को देखकर अत्यधिक दुखी हुई। वे नहीं चाहते थे कि व्यर्थ की बातों के लिए आपस में इस प्रकार का लड़ाई-झगड़ा हो। उनका कहना था कि दोनों

जातियों का जन्म-दाता एक ही है। दोनों एक ही प्रकार के रक्त-मांस से निर्मित हैं। मुसलमानों का सुनति तथा हिन्दुओं का जनेऊ दोनों सामाजिक हैं। दोनों धर्मावलम्बी हिंसक हैं। एक बकरा मारता है, एक गाय। दोनों एक ही कुम्भकार द्वारा निर्मित दो घड़े हैं, अतः आपस में द्वैत भावना रखना धोखा है।

लोहू मांस एक है दोनो, एकै ताना बाना।
एक राह होइ दोनों आये, एक जगह पर जाना॥
कब उन्ह भीतर सुनति कराया, कब उन्ह कीन्ह जनेऊ।
उन्ह बकरी उन्ह मुरगा मारा, दुहु में भला न केऊ॥

मुसलमान में दोष नहीं है, हिन्दू परम पुनीता।
मुसलमान मुसहब को पढ़ते, हिन्दू पढ़ते गीता॥

एक कोहार गढ़ा दुइ बरतन दूनो एकै मट्टी।
पलटूदास बोलता एकै दुइ धोखे की टट्टी॥
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ २८१ पद ७१२)

अतः उन्होंने हिन्दुओं के राम और मुसलमानों के खुदा के बीच कोई अन्तर नहीं माना। उन्होंने कई प्रकार से भाँति-भाँति के उदाहरणों द्वारा उनमें एकता की भावना का प्रतिपादन किया—

मुसलमान मुसहफ को बाचे, हिन्दू वेद पुराना हो।
बन्दगी एक दुइ राह बताया, वही राम रहिमाना हो।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १८४ पद ५१४)

पलटूदास ने दोनों की बुराइयों को सम्मुख रखा है। उनका प्रश्न था कि जब दोनों की पिण्ड रचना एक सी ही है तो फिर पाण्डे और शेख कहाँ से आये हिन्दू फाग मनाते हैं, तो मुसलमान रोजा। एक पूरब दिशा की ओर मुँह करके पूजा करता है, तो दूसरा पश्चिम दिशा की ओर। दोनों में बुराइयाँ हैं, दोनों धर्मों में ऐसे दोष हैं जिनसे संघर्ष की सम्भावना है। इसीलिए कबीर की भाँति उन्होंने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया है जो हिन्दू तथा मुसलमानों के धर्म के आधुनिक स्वरूप से सर्वथा भिन्न था।

जो हिन्दू सो मुसलमान में, सब मिलि करहुं विचारा हो।
पलटूदास दोऊ के बीचे, साहेब एक हमारा हो॥
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १८४, पद ५१४)

पलटूदास ने जाति-विहीन समाज की कल्पना की है जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय,

शूद्र तथा मुसलमान इत्यादि किसी में भेद नहीं है। 'कोई जाति न पूछे हरि को भजे सो ऊँचा है[1]?' कहकर उन्होंने जाति-पाति के भेद को मिटाने का प्रयत्न किया है और उसी को ऊँचा माना है जो भगवान् का भजन करता है। उन्होंने जाति-पाँति से ऊपर उठकर एक मानवमात्र की कल्पना की है। विचारों की एकता तथा सम दृष्टि को[2] भी आवश्यक माना है। उनके अनुसार वही मनुष्य धन्य, है जो किसी मे भेद-दृष्टि नही रखता। यहाँ तक कि भूख-प्यास तक उसे संतप्त नही करते। गीता में भी कहा गया है :—

सुख-दुखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ गीता २।३८

पलटूदास का कथन है :—

सुख दुख सम्पति विपति मान अपमान है।
शत्रु मित्र भूपाल सो एक समान है ॥
कनक काच का भेद ज्ञान मे तिच्छना।
अरे हा पलटू ऊधो से हरि कहें संत के लच्छना ॥
(पलटू साहिब की बानी भाग २ पृष्ठ ६६, पद १६)

पलटूदास के समय उच्चकुल के व्यक्ति विषय वासनाओं में लिप्त रहते थे। अधिक स्त्रियों को रखना, मास-भक्षण करना तथा शराब पीना उस समय प्रचलित थे। इसीलिए उन्होंने स्त्रियों की निन्दा की[3]। हिंसा के विरुद्ध मुल्ले[4] तथा पंडित[5] को उपदेश दिया और इस प्रकार समाज को सात्विक बनाने का प्रयत्न किया। काम,

---

१. पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ५० पद १०२

२. „ „ शब्दावली पृष्ठ ७० पद २१४

३. खरबूजा संसार है, नारी छुरी पैन।
पलटू पंजा सै का यों नारी का नैन ॥
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ६४ पद १२६)

४. क्यों तू छुरी चलावे मुलने तुमको दरद न आवे।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १५ पद ४७)

५. सब जातिन में उत्तम तुमहीं करतब करौ कसाई।
जीव मारि के काया पालो, तनिकों दरद न आई।
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ७७ पद १४०)

क्रोध तथा लोभ इत्यादि के विरुद्ध उपदेश दिया[१]। वे समाज को सदाचारी बनाना चाहते थे। इसलिए हृदय की शुद्धता[२], सदाचरण[३], संतोष[४], समदृष्टि[५] तथा अपरिग्रह इनके उपदेश के विषय थे।

---

१. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२४ पद ९२
२. " " " पृष्ठ ३२५ पद १०५
३. " ,, बानी भाग २ पृष्ठ २२ पद ६१
४ " " " पृष्ठ ८३ पद ११२
५. " ,, शब्दावली पृष्ठ १७ पद ५३

×—×

साधना

साधारणत किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किये गये विशेष प्रयत्न को साधना कहते हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र मे सब धर्मों का ध्येय जगत्-नियन्ता परम तत्त्व की प्राप्ति है। उसके लिये ज्ञान पर आधारित श्रद्धा-युक्त अनुकूल कर्म आवश्यक है। बिना ज्ञान के कर्त्तव्य पथ स्थिर नही किया जा सकता। कर्म किए बिना फल-प्राप्ति नही हो सकती। अत उस परम तत्त्व की प्राप्ति के लिये जिस मार्ग का अनुकरण किया जाता है, उसे साधना कहते है।

ज्ञान-साधना

पलटूदास ने ज्ञान-साधना को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। कबीर की भाँति[1] उनके जीवन मे भी एक बार ज्ञान की आधी आई थी, जिससे माया का छप्पर उड़ गया था। लालच की बड़ेर टूट गई थी। मोह के खम्भे उड गए थे और कुमति का कलश फूट गया था। मरम की भीति गिर गई थी और मोह का घर नष्ट हो गया था। आशा तथा तृष्णा नामक पुत्र इस झोके मे उड गये थे। केवल पलटूदास ही बच गए थे[2]। इस ज्ञान की आँधी का क्या स्वरूप था ?

इन्द्रियों के सम्पर्क, चिन्तन या मनन द्वारा किसी विषय को जान लेना ज्ञान है। यह आत्म-अनुभव से भी उत्पन्न हो सकता है। ज्ञान को दो श्रेणियो मे रख

---

१. कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ६३ पद १६

२. अरे सखी ज्ञान कै आंधी आई हिंडोलवा हो।
   माया छप्पर उड़िगा हो, लालच परी बड़ेर न·ी टूट।
   मोह के खम्भा गिरि परे सखी कुमति कलश गया फूटि॥
   ढहि गै भीति मर्म के हो, कोट महल महरान॥
   कामदेव टूटी धुरहीं सखी उड़ि गै लोभ निदान॥
   नाती तीन उडि गयेन हो आसा त्रिसना पूत॥
   दाप हंकार उडि गयेन सखी उडि गये पाँचों सूत॥
   सकल समाज उड़ि गये न हो हम धन रहे हैं अकेल॥
   पलटूदास मगन मे राखी सतगुरु के यह खेल॥
   (पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १३२ पद ३७८)

सकते हैं। एक को सासारिक ज्ञान तथा द्वितीय को आध्यात्मिक ज्ञान कहा जा सकता है। सासारिक ज्ञान के अन्तर्गत इस नश्वर जगत से सबधित धन, ऐश्वर्य, कला तथा साहित्य का ज्ञान आता है। आध्यात्मिक ज्ञान तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है। इस ससार तथा इसमे स्थित मनुष्य-शरीर की असारता तथा क्षणभंगुरता का ज्ञान है। मनुष्यो ने अपने समक्ष कितने जीवो को मरते हुए देखा, फिर भी वह उसी मे सलग्न है। यह उसकी अज्ञानता है और इसका मुख्य कारण माया है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि 'राजा तथा भिखारी दोनों मरते हैं, सब लोग मृत्यु को प्राप्त होते हैं फिर भी जीवन के प्रति यह ममता विद्यमान है। हम इसका परित्याग क्यो नही कर पाते ? यही माया' है[1]। इस आत्मज्ञान को स्वामी शंकराचार्य ने ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान कहा है। आत्मा तथा ब्रह्म की सत्ता प्रमादवश मिथ्या ज्ञान से है। आत्मा तथा जीवात्मा का पार्थक्य भ्रमवश अज्ञान के कारण है। अतः उस अज्ञान तथा भ्रम के दूर हो जाने पर आत्मा तथा जीवात्मा मे कोई अन्तर नही रह जाता। जब तक भ्रम बना रहता है तभी तक रज्जु मे सर्प की तथा सीप मे चाँदी की मिथ्या प्रतीति बनी रहती है। अत इस भ्रम को दूर करना तथा वस्तु-स्थिति को ठीक प्रकार समझ लेना ही आत्म-ज्ञान है[2]।

आत्म-ज्ञान से सम्बन्धित ब्रह्म ज्ञान है। ससार की अनित्यता, असारता तथा क्षणभगुरता के ज्ञान के पश्चात् अपने शुद्ध स्वरूप को जान लेना ही ब्रह्म ज्ञान है। आत्मा तथा ब्रह्म का अद्वैत भाव, उस ब्रह्म का स्वरूप तथा गुण ब्रह्मज्ञान के अन्तर्गत रखे जाते हैं। यह ज्ञान तर्क के सहारे भी प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु उससे ब्रह्म की अनुभूति नही हो सकती। उसे वाचक ज्ञान कहा जायेगा।

इन दोनो श्रेणियो के ज्ञान के अतिरिक्त एक तीसरा ज्ञान भी है जिसे कर्म ज्ञान या साधना ज्ञान कह सकते है। उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए कुछ निश्चित उपाय किए जाते हैं। उसमे कुछ नियमित कर्मों की आवश्यकता होती है। एक प्रकार से यह पथ-प्रदर्शन का कार्य करता है। साधना क्षेत्र मे गुरु की आवश्यकता है, जो स्वयं अनुभवी रहता है। उसी के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त होता है।

---

१. ज्ञान-योग (प्रथम भाग) स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ १३

२. विनिवृत्तिर्भवेत्तस्य सम्यग्ज्ञानेन नान्यथा ।
ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं सम्यग्ज्ञानं श्रुतेर्मतम् ।
तदात्मानात्मनोः सम्यग्विवेकेनैव सिध्यति ।
ततो विवेकः कर्तव्यः प्रत्यगात्मासदात्मनोः ॥

(विवेक चूड़ामणि पृष्ठ ६७ २०४-२०५)

अन्तिम ज्ञान ब्रह्मानुभूति सम्बन्धी है। साधना के समय भी ब्रह्म सम्बन्धी अनुभव होते हैं और उसकी प्राप्ति के पश्चात् उसके दर्शन के पश्चात्, उस परम तत्व का दर्शन तथा उससे सम्बन्धित प्रत्येक तत्व का दर्शन इसके अन्तर्गत आते हैं। पलटूदास की ज्ञान-साधना में आध्यात्मिक ज्ञान के समस्त अंगों का समावेश है।

पलटूदास के अनुसार ज्ञान से पहिले कर्म की आवश्यकता है। बिना कर्म के ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। जिस प्रकार फल से पहले फूल निकलता है, फल निकल जाने के पश्चात् फूल स्वयं ही झड़ जाता है, उसी प्रकार ज्ञानार्जन होने के बाद कर्म स्वयं ही छूट जाता है। फिर ध्यान इत्यादि की आवश्यकता नहीं रह जाती[1]।

ब्रह्म की प्राप्ति के लिए साधना की आवश्यकता है, परन्तु ब्रह्म-प्राप्ति के पश्चात् साधना करना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार निशाना मार लेने के पश्चात् भी तीर चलाते रहना। बिना आत्म ज्ञान के आत्म-स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता और न अज्ञान का परदा हट सकता है। ज्ञान समाधि के द्वारा परदा हटने के पश्चात् साधक जीवन मुक्त हो जाता है। भ्रम दूर हो जाता है।[2] काम, क्रोध, मद तथा लोभ इत्यादि समस्त विकार दूर हो जाते हैं। जगत की आशा टूट जाती है। अखण्डित भजन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है, सम दृष्टि हो जाती है तथा कंचन और

१. कर्म बिना नहिं ज्ञान होवै, कर्म कहैं नहिं निन्दिवै जी।
फल कारन ज्यों झाड़ फूले, फूल भरि जाय फल लीजिए जी।
पाछे सेती बेटा होवै पहिले मुसवकत कीजिए जी।
पलटू पहले क्रम बोवै-पाछे सेती रस पीजिए जी।
(पलटू साहिब की बानी (भाग २) पृष्ठ ५६ पद ५१)

२. परदा अन्दर का टरै देखि परै सब रूप।
देखि परै तब रूप मिटै सब मन का धोखा।
परै सब्द टकसार बहुत चोखे से चोखा।
जोग-जीत जब होय भूमिका ज्ञान की पावै।
लागै सहज समाधिशक्ति से सीव बनावै।
महल करै उजियार तेल बिनु दीपक बाती।
परमानन्द अनन्द भजन में दिन औ राती।
पलटू सूझै है नहीं जहाँ अधोमुख कूप।
परदा अंदर का टरै देखि परै तब रूप।
(पलटू साहिब की बानी पृष्ठ ५८ पद १४८)

परन्तु कोरा ज्ञान पाखण्ड ही है। बहुत से वेषधारी संत अन्य संतों द्वारा कही हुई बातों को ही दुहराते हैं। उनमें ज्ञान के अनुसार कर्म नहीं है। ज्ञानोपार्जन के पश्चात् तदनुकूल कर्म करने वाला साधक ही आदर्श की प्राप्ति कर सकता है। ऐसे ही निष्क्रिय ज्ञान को इन्होंने वाचक ज्ञान की संज्ञा दी है, जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है उन्होंने उसकी भर्त्सना भी की है। इस प्रकार का ज्ञानी बिना पूँजी के साहु के सदृश है और उस कुत्ते के समान है जो अन्य कुत्तों को भूकता हुआ देखकर अनायास ही भूकने लगता है। केवल वाचक-ज्ञान से कोई सिद्ध नहीं हो सकता, बात से कोई राजा नहीं बन सकता और पकवान की बातें करने से किसी का पेट नहीं भर सकता[1]।

'वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई। निसि गृह मध्य दीप की बातिन्ह तम निवृत्त नहि होई'[2] कहकर गोस्वामी तुलसीदास ने कर्म-विहीन ज्ञान को अच्छा तथा लाभप्रद नहीं कहा है।

पलटूदास ने ज्ञान को साधना का उत्कर्ष तथा फल माना है। इस प्रकार से उनका तात्पर्य ब्रह्म दर्शन तथा उसकी अनुभूति से है। साधक निरन्तर ब्रह्म के स्वरूप को देखता रहता है और इस आरूढ़ावस्था को सहज समाधि की संज्ञा दी जाती है। योग के नाना प्रकार के साधनों द्वारा जब सुरति रूपी जीवात्मा का लय शब्द रूपी ब्रह्म में हो जाता है और यह दशा निरन्तर बनी रहती है तब उसे आरूढ़ावस्था कहते हैं। उन्होंने आगे कहा है कि शब्द की धमक से आसमान फूट गया, सुरति की चमक के कारण आसमान में आग लग गई, शेषनाग काँपने लगे और उन्हें अपने अस्तित्व का भी ज्ञान नहीं रहा[3]।

१-वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी, ज्यों कागज का टीका।
बिनु पूँजी के साहु कहावें, कौड़ी घर में नाहीं।
ज्यों चोकर के लड्डू खावें, क्या स्वाद तेहि माहीं।
ज्यों स्वान कुछ देखि के भूके, तिन्ह ने सो कुछ पाई।
वाको भूँक सुनि जो भूँके सो अहमक कहवाई।
बातन सेती नाहीं होय राजा, नहि बातन गढ़ टूटे।
मुलक महँ जब अमल होयगा, तीर तुपक जब छूटे।
बातन से पकवान बनावे, पेट भरे ना कोई।
पलटूदास करे सोई कहना, कहे सेती क्या होई।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १० पद ३४)

२. विनयपत्रिका (गीता प्रेस, गोरखपुर) पृष्ठ २०१ पद १२३

३. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ६३ पद ४

इस अवस्था में साधक की समस्त वासनाएँ जल जाती हैं। अपने तथा पराए का भेद मिट जाता है। काम, क्रोध, मद, लोभ तथा अहंकार नष्ट हो जाते हैं और साधक ब्रह्ममय हो जाता है। इस प्रकार की साधना को सहज स्वभाव की चाल कहते हैं[१]। यह दशा क्षणिक नही है, बल्कि जीवन-पर्यन्त बनी रहती है। स्वभाव मे स्थायी परिवर्तन हो जाता है और आत्म शुद्धि भी हो जाती है। फिर तो ज्ञान के लिये ध्यान योग साधने की कोई आवश्यकता नही रह जाती। तीर्थ, व्रत, पूजा-पाठ तथा दान सब व्यर्थ सिद्ध होते हैं। स्थायी आत्म-शुद्धि के पश्चात् यह साधन निरर्थक हो जाते हैं। साधक सांसारिक पदार्थों की चिन्ता न करता हुआ भगवान के प्रेम मे मग्न रहता है और इस प्रकार उसे कोई संचीयमान कर्म नही बनते। तत्वज्ञान के कारण संचित कर्म भी नष्ट हो जाते हैं और प्रारब्ध कर्म की शक्ति भी क्रमश समाप्त होती जाती है। धीरे-धीरे जीव के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर का अन्त हो जाता है और साधक आवागमन के बंधन से मुक्त होकर अमर हो जाता है।

ज्ञान की चर्चा करते हुए पलटूदास ने अज्ञानता की ओर भी सकेत किया है। कर्मकाण्ड मे विश्वास तथा मूर्ति-पूजा इत्यादि भी इसके अन्तर्गत आते है। सासारिक प्रपञ्चो मे लिप्त रहना तथा आत्म-स्वरूप को न पहिचानना ही अज्ञानता है[२]।

प्रश्न यह उठता है कि क्या पलटूदास ने ज्ञान और भक्ति को अलग-अलग दो साधनो के रूप में देखा है ? कही पर उन्होंने भक्ति को प्रधानता दी[३] है और कहीं पर ज्ञान[४] को। क्या दोनो मे वैषम्य है ? बात यह है कि उन्होंने ज्ञान तथा भक्ति का समन्वय करके ज्ञान भक्ति की चर्चा की है। ज्ञान से युक्त भक्ति अधी नही हो सकती। यद्यपि ज्ञान तथा भक्ति साथ ही आये हैं, फिर भी भक्ति की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। उन्होने अपने पथ को ज्ञान योग तथा वैराग्य से सबधित करके ज्ञान तथा योग का समन्वय किया[५]। फिर भी भक्ति का स्थान इससे कम नही होता।

ज्ञान का विषय संसार की नश्वरता तथा मनुष्य की क्षण भंगुरता है। जांति-पाति के बंधन मे फसना भी अज्ञानता है। माता, पिता पुत्र, कलत्र तथा

---

१. पलटू साहेब की बानी (भाग १) पृष्ठ ५३ पद ४२।
२- ,, ,, ,, भाग २ पद १६० पृष्ठ ७४
३- ,, ,, ,, ,, पद ५६-५७ पृष्ठ २२
४- ,, ,, शब्दावली पृष्ठ ३१५ पद २
५. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२७ पद १२४

ऐश्वर्य में फंसाकर मनुष्य सांसारिकता में फंस जाता है। समस्त भौतिक पदार्थ असत्य हैं। केवल भगवान् ही सत्य है[१]।

ज्ञान का सीधा सम्बन्ध योग-साधना से है। यह ऐसी जटिल साधना है, जिसमें क्रियाओं के सम्यक् ज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है। विषय-वासनाओं को त्यागकर जब साधक वैराग्य लेता है तो वह गुरु की सहायता से योग के प्रारम्भिक नियमों का ज्ञान प्राप्त करता है। आसन, प्राणायाम, कुंडलिनी उत्थापन तथा खेचरी मुद्रा बिना गुरु के करना कष्टसाध्य है तथा सकट से पूर्ण है। अतः पलटूदास ने जो ज्ञान गुरु से सीखा था वह यौगिक क्रियाओं से अधिक सम्बन्धित है। इन्होंने ज्ञान का अर्थ अधिक स्थानों पर इन्हीं क्रियाओं के सम्बन्ध में किया है और इस ज्ञान का दाता गुरु ही है।[१]

योग—साधना

पलटूदास वाचक ज्ञानी नहीं थे। इन्होंने ब्रह्म-दर्शन के लिए कतिपय साधनाओं का आश्रय लिया था। उन्होंने अपनी साधना क्रम को निर्दिष्ट करते हुए स्वयं लिखा है कि तीसरी मञ्जिल हठ योग साधना[२] है। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने वैराग्य तथा ज्ञान के पश्चात् योग-साधना की होगी। उस समय देश में नाना प्रकार की यौगिक क्रियाएँ प्रचलित थीं। सन्त परम्परा से आती हुई साधना-पद्धति से भी अनभिज्ञ थे कबीर की [illegible] उन्हें नया मार्ग प्रशस्त नहीं करना था।

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में योग की महत्ता है। यह एक ऐसा मार्ग है जिसकी सत्यता, साधना पद्धति तथा आदर्श में कोई मतभेद नहीं है। आत्म-साक्षात्कार के लिये यह एक अद्वितीय मार्ग है। माया जाल से मुक्त करने का यह एक महान् अस्त्र है। इसलिए लगभग समस्त प्रचलित धर्मों में इसका समावेश है। योगसाधना के विषय पर उपनिषदों में यदाकदा विचार किया गया है। यहाँ तक कि कुछ उपनिषदों में अधिकतर योग सम्बन्धी क्रियाओं का ही वर्णन मिलता है, कठोपनिषद में मृत्यु ने नचिकेता को पाँचों इन्द्रियों को मन में स्थिर करके चेष्टारहित होने की बात की है। उसमें नाड़ियों की संख्या तथा वायु सम्बन्धी वर्णन भी मिलते हैं[४]। श्रीमद्भागवत,

१-पलटू साहेब की बानी (भाग १) पृष्ठ ७ पद १८
२. ,, ,, ,, ,, १ ,, १ पद १
३. ,, ,, शब्दावली ,, ११८ पद ५४६
४.यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ।
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥
कठोपनिषद २ । ३-११

पुराण, गीता तथा योगवशिष्ट मे भी इस पर विशद चर्चा की गई है।[1] यहाँ तक कि बौद्ध तथा जैन धर्म भी किसी न किसी प्रकार योग को मान्यता देते हैं। नाथ सम्प्रदाय मे योग का विशेष महत्त्व है।

दो पदार्थों का अपना स्वरूप त्याग कर एक हो जाना योग कहा जाता है। श्रीमद्‌भागवत-इन्द्रियों को विषय-वासनाओं से रोककर मन को आत्मस्थ करने को योग मानता है[2]। गीता के अनुसार कुशलतापूर्वक किया हुआ कर्म ही योग है[3]। साधारणत. योग वह क्रिया है, जिसके द्वारा इन्द्रिय-निग्रह के पश्चात् आत्म-दर्शन होता है। यह वह साधना है जो जीव तथा ब्रह्म को एकाकार कर देती है।

सर्वप्रथम महर्षि पतञ्जलि ने योग-दर्शन की रचना की थी। उनके अनुसार चित्त की वृत्तियो को सर्वथा रोक देना ही योग है[4]। जब तक योग साधना द्वारा चित्त की वृत्तियो का निरोध नही हो जाता, तब तक दृष्टा उन व्यक्तियों के अनुरूप अपना स्वरूप समझता रहता है ? उसे अपने वास्तविक ध्येय का ज्ञान नही होता। योग का परम लक्ष्य इन्द्रिय-निग्रह द्वारा आत्म-स्वरूप मे लीन हो जाना है। अतः *योग इन्द्रिय-निग्रह द्वारा आत्म-साक्षात्कार करने का साधन है। मनुष्य की इन्द्रियाँ* उसे सासारिक विषय-वासनाओं की ओर मोडती हैं। अत वह अज्ञान मे रहता है और अपना शुद्ध स्वरूप नहीं पहिचान पाता।

महर्षि पतजलि के अनुसार योग के आठ अंग हैं–यम, नियम, आसन, *प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा तथा समाधि*[5]। *अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य* तथा अपरिग्रह यम[6] हैं और शौच, सतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान पाँच नियम[7] है। यम तथा नियमों के पालन से शरीर तथा मन की शुद्धि होती है। तत्पश्चात् आसन किए जाते हैं। बिना आसनों की सफलता के प्राणायाम शुद्ध नही

१-सुन्दर दर्शन पृष्ठ २२
२-कल्याण (योगांक) पृष्ठ १२२
३-गीता–२–५०
४-योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः—पातंजल योग दर्शन सूत्र २
५-यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि
पातजल योग दर्शन साधनापाद सूत्र २९
६-अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः
पातजल योग दर्शन साधनापाद सूत्र ३०
७. शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः
पातजल योग दर्शन साधनापाद सूत्र ३२

हो सकता। शिवसंहिता में चौरासी आसनों का वर्णन है[1]। उनमें केवल चार को प्रधानता दी गई है और सिद्धासन का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। आसन सिद्धि के पश्चात् प्राणायाम की व्यवस्था है। प्राणायाम तीन प्रकार का होता है-प्रथम वाह्यवृत्ति या रेचक प्राणायाम, जिसमें वायु शरीर से बाहर निकाल कर कुछ काल तक रोकी जाती है। द्वितीय आभ्यन्तर वृत्ति या पूरक प्राणायाम कहा जाता है जिसमें प्राण वायु को भीतर ले जाकर रोकना होता है। तृतीय को स्तम्भ वृत्ति या कुम्भक प्राणायाम कहा गया है, जिसमें प्राण वायु को चाहे वह भीतर हो या बाहर, वहीं रोक दिया जाता है[2]। एक चौथे प्रकार का भी प्राणायाम है जिसमें बाहर और भीतर के विषयों का त्याग कर देने से तथा मन को इष्ट चिन्तन में लगा देने से देश, काल तथा संख्या के ज्ञान के बिना ही अपने आप प्राणों की गति किसी देश में रुक जाती है।[3] इन्द्रियों को वाह्य वृत्ति से हटाकर मन में एकाग्र करने का नाम प्रत्याहार[4] है। इसकी सिद्धि के पश्चात् धारणा की जाती है। शरीर या उसके बाहर कहीं भी अपने चित्त को ठहराना धारणा है[5]। जिस वस्तु में चित्त को लगाया जाय उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना ध्यान है[6]। ध्यान करते करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, उसमें अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है तथा ध्येय से भिन्न उसकी उपलब्धि नहीं होती, उस समय उस ध्यान को ही समाधि कहते हैं[7]। महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में वर्णित अष्टांग योग का संक्षिप्त रूप यही है।

अष्टांग योग के अतिरिक्त एक प्रकार की और साधना है, जिसे हठयोग कहते हैं। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार हठ का अर्थ सूर्य तथा चन्द्र नाडी है और इन्हीं का एकाकार करना हठयोग[8] है। हठयोगियों का विश्वास है कि शरीर दो प्रकार का है एक स्थूल शरीर और दूसरा सूक्ष्म शरीर। स्थूल शरीर सर्वदा सूक्ष्म को प्रभावित करता रहता है। अतः स्थूल शरीर के द्वारा ही सूक्ष्म शरीर शुद्ध किया जा सकता है। चित्तवृत्ति निरोध के लिये विविध साधनों की सहायता से स्थूल शरीर द्वारा सूक्ष्म शरीर

---

१. शिवसंहिता पृष्ठ ६१ श्लोक १००
२. पातंजलि योग दर्शन साधनापाद सूत्र ५०
३. ,, ,, ,, ,, सूत्र ५१
४. ,, ,, ,, ,, सूत्र ५४
५. ,, ,, ,, विभूतिपाद सूत्र १
६. ,, ,, ,, ,, ,, सूत्र २
७. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३
८. हठ योग प्रदीपिका पृष्ठ ३

पर प्रभाव डाला जाता है। हठयोग ही अन्त मे राजयोग मे परिणित हो जाता है। अष्टागयोग के प्रथम पाच अग हठयोग के अन्तर्गत आते हैं और अन्तिम तीनों राजयोग के। इस प्रकार हठयोग की साधना राजयोग के लिये सोपान है।

हठयोग में कुण्डलिनी का विशेष महत्त्व है। यहां तक कि यह समस्त यौगिक साधना का आधार है। मनुष्य शरीर के भीतर तीन मुख्य नाडिया हैं। उन्हें इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना कहते हैं। इडा बाईं ओर पिंगला दाईं ओर तथा सुषुम्ना मध्य मे है इनको गंगा-यमुना या सरस्वती तथा बालरडा कहते हैं[1]। इन तीनो का मिलना ही त्रिवेनी कहा जाता है जहाँ स्नान करने की बात की जाती[2] है। वज्रा चित्रिणी तथा ब्रह्म नाड़ी मिलकर सुषुम्ना कही जाती है। मेरुदण्ड के नीचे अन्तिम भाग में गुदा तथा लिंग के मध्य में स्वय भूलिंग है। इसी लिंग को साढे तीन वलयो मे लपेट कर कुण्डलिनी सोती है[3]। यह सर्प की कुण्डली की भाँति है। साधारणत. प्राणवायु इड़ा तथा पिंगला से आता-जाता है। योगी इन दोनों पथो को अवरुद्ध कर प्राण वायु को सुषुम्ना में प्रविष्ट करता है। तब कुण्डलिनी जागृत होती है। जब यह सुषुम्ना के पथ से ऊपर उठती है, तो उसमे एक शब्द होता है जिसे नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है, जिसे बिन्दु भी कहते हैं। इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया इसके तीन रूप हैं। इन्ही को क्रमश: सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि भी कहते हैं या ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

ज्यो-ज्यो कुण्डलिनी चक्रो का भेदन करती हुई ऊपर उठती है, नाना प्रकार के शब्द सुनाई पडते हैं। आरम्भ मे समुद्र-मेघ गर्जन, भेरी तथा भर्झर, मध्य मे शंख घंटा तथा काहल की ध्वनि और अंत में किंकिणी वीणा तथा भ्रमर गुंजन के शब्द

---

१. इडा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
इडा पींगलयोर्मध्ये बालरंडा च कुण्डली॥
(हठ योग प्रदीपिका श्लोक ११०)

२. इडा गगा पुरा प्रोक्ता पिंगला चार्कपुत्रिका।
मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां संगोऽतिदुर्लभः॥
(शिवसंहिता श्लोक १६५)

३. पश्चिमाभिमुखी योनिर्गुदमेढ्रान्तरालगा।
तत्र कन्दम् समाख्यातं तत्रास्ति कुण्डली सदा।
संवेष्ट्य सकला नाडीः सार्द्धत्रिकुटीलाकृतिः
मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णाविवरे स्थिता।
(शिवसंहिता श्लोक ७५-७६)

शरीर में ही सुनाई देते हैं[१]। फिर तो साधक को दीन दुनिया से कोई संबंध नहीं रह जाता और वह अनहद नाद श्रवण करने लगता है। इस स्थिति को उन्मन, समाधि, मनोन्मनी, लय, शून्य, अशून्य, तत्त्व तथा परम-पद कहा जाता है[२]।

इस शरीर मे कई चक्र हैं। प्रथम मूलाधार चक्र है जो गुदा के ऊपर लिंग मूल के पास है। इसका रंग स्वर्ण के सदृश पीत है और इसमे चार दल हैं। इसी पद्म के मध्य मे योनि है जिसमें कुंडलिनी सोती है। द्वितीय चक्र का नाम स्वाधिष्ठान चक्र है। यह लिंग मूल मे स्थित है। इस कमल में छः दल हैं। यह रक्त वर्ण का है। मणिपूर नाम का तृतीय पद्म नाभि स्थल मे है। वह हेम वर्ण का है। उसमें १८० पत्र हैं। प्राण वायु का आधार अनाहद चक्र हृदय स्थान पर स्थित है। यह उज्ज्वल रक्त वर्ण से शोभायमान है। इसमे बारह दल हैं। पंचम चक्र विशुद्ध चक्र है। यह कंठ स्थान मे स्थित है। इसमे सोलह दल हैं। यह स्वर्णाभ है। यहां जीवात्मा सदा विराजमान रहता है, भ्रू के मध्य मे आज्ञा चक्र है। इसमें दो दल हैं, इसका रंग उज्ज्वल है[३]। आज्ञा चक्र के पश्चात् सहस्रदल कमल है। इसे चन्द्र मंडल भी कहते हैं। इसी स्थान मे ब्रह्म रन्ध्र के विवर मूल में सुषुम्ना का अन्तिम भाग है। ब्रह्म रन्ध्र मे छः दरवाजे हैं। इसको कुंडलनी खोल सकती है[४]। इसी ब्रह्म रन्ध्र को दसवां द्वार या शून्य भी कहते हैं[५]।

मुद्राएं दस हैं। इनमे खेचरी मुद्रा प्रधान है। इस कठिन मुद्रा को सिद्ध करने मे अधिक समय लगता है। सहस्र दल कमल के मूल मे एक चन्द्रमा है[६] जिससे निरन्तर अमृत-सा चुआ करता है। जो सर्पिणी नाड़ी मे प्रवाहित होकर मूलाधार कमल स्थित सूर्य मे जाकर भस्म हो जाता है। योगी अपनी जीभ को उलट कर कपाल कुहर मे स्थिर करता है और इस प्रकार चन्द्रमा से निरन्तर बहते हुए अमृत

---

१. आदौ जलधिजीमूतभेरीझर्झरसम्भवाः।
मध्येमर्दलशङ्खोत्था घंटाकाहलजास्तथा।
अंते तु किंकिणीवंशवीणाभ्रमरनिःस्वनाः।
इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते देहमध्यगाः।
(हठयोग प्रदीपिका पृष्ठ २०-८५-८६)

२. कबीर—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० ५०

३- चक्रों के लिए देखिए शिवसंहिता चक्र विवरण

४. कबीर की विचारधारा—डा० त्रिगुणायत पृष्ठ ३०६

५. ,, ,, ,, ,, ,, ३०६

६. हठयोग प्रदीपिका पृष्ठ ११०-४४

का रसास्वादन करता है। इसी को सुरापान भी कहा जाता है[1]।

हठ योग प्रदीपका में लय योग का भी वर्णन है। दोनो भृकुटियो के मध्य मे शिवरूप ईश्वर या सुखरूप आत्मा का स्थान है। उसमें मन को लीन करना ही लययोग[2] है। नाद श्रवण या ज्योति दर्शन द्वारा मन को स्थिर किया जाता है। कुण्डलनी को, जिसे शक्ति कहते हैं, जागृत करके पुरुष या शिव के स्थान सहस्रार तक पहुँचा कर उसी मे लय कर देने को ही लय योग कहते हैं। पलटूदास का सुरति शब्द योग यही है। यद्यपि ये तीन प्रकार की साधना पद्धतियाँ ज्ञात होती हैं, परन्तु वास्तव में तीनों एक ही हैं।

पलटूदास की साधना-पद्धति पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उन्होने सर्वप्रथम हठयोग की साधना को अपनाया था। इस अवस्था मे उन्होने कुण्डलनी उत्थापन, शिव तथा शक्ति का मेल, प्राणायाम इत्यादि का वर्णन किया है। उसमे हठ योग की जटिलता नहीं है। वर्णन स्पष्ट है। एक ही बात को कई स्थानों पर कई प्रकार से कहा गया है। उसमें से एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है:–

जोग को पाइ के, जुगति को ध्याइ के। ज्ञान अरु ध्यान एक घाट करना ॥
अर्सी संगम भहै कड़क बिजुली छुटै। उसी के सीस पर सुरति धरना ॥
सहस कोटि ऊँच है बीच मे भानु है। सानिन पकरि के बोरि मरना ॥
सहम गुंजार मे परम अली भाल है। भिलमिल उलटि के पवन भरना ॥
सखिनी डकिनी सोर सब करेगी। सोर मुनि वहाँ से नाहिं टरना ॥
बक पहार में साँकरी गयल है। गली के खड के बीच झरना ॥
हद अनहद के बीच में जगना। सिंह को देखि के नाहिं डरना ॥
कर्मनी नदी पर भर्मनी ताल है। ताल के बीच मे रहत अरना ॥
चौक से निकरि जाय बाहर हुआ। तत्व को पकरि क्यो बैठ रहना ॥
सातवें महल पर तत्त का जाल है। तत्त के जाल से तप्त फिरना ॥
वालों महल का कहा दीवाल है। दीवान को भाकि के कूदि परना ॥
दास पलटू कहैं छोर मन कमनसी। पैठि दरिवाव दीदार करना[3] ॥

कुंडलनी उत्थापन के साथ-साथ इन्होंने खेचरी मुद्रा के विषय मे भी बहुत स्पष्ट शब्दों मे लिखा है। आकाश मंडल स्थित महल के मध्य से अमृत का स्राव हो रहा है, परन्तु उसे एक सर्पिणी पी रही है। योगी का काम है कि वह उस अमृत को पीकर अमर हो जाय।

---

१. हठयोग प्रदीपिका १११-४०
२. हठयोग प्रदीपिका पृष्ठ ९२ २–३
३. पलटू साहब की बानी भाग ३ पृष्ठ २६ पद ६८

गगन महल के बीच अमी झर नागिनी।
टीपन बूँद बूँद पिवे एक नागिनी।[१]
नागिनी डारा मारि बूँद को पिया है।
अरे हाँ पलटू अमर लोक गये हँस जुगो-जुगो जिया है॥[१]

परन्तु यह साधना अत्यन्त कठिन है। बिना क्रिया रूप में देने तथा किसी दूसरे से दिखाए इससे शारीरिक कष्ट उत्पन्न हो सकते हैं और मृत्यु तक हो सकती है। इसलिये पलटूदास ने चेतावनी दी है कि बिना युक्ति के ज्ञान से योग साधना नहीं करनी चाहिए। अगर वह केवल किसी की देखा-देखी की जाएगी तो शरीर का नाश हो सकता है, साधक पागल हो सकता है और उसका फिर संभलना अत्यंत कठिन है।

जोग करे जिन कोई हो, जो जुक्ति न आवे।
देखी-देखी जोग करहुगे, नाश देहि के होई हो।
जोग करत बौराइ जाहु गे, बात जायनी खोई हो।
पवन जहाँ तजबीज होइ जइहे, दिन काटहुगे रोई हो॥
पलटूदास यह बचन हमारो, मानि लेहु नर सोई हो[२]॥

हठयोग में कहीं-कहीं प्रेम का मिश्रण भी इनकी साधना में मिलता है। प्रेम तथा हठयोग का संयोग निम्नलिखित पद में सुन्दर बन पड़ा है;—

अरे सखी झूलहिं संत सुजान डोलना हो।
अर्द्ध-उर्द्ध दोनों खम्भवा हो लगी है सुरति के डोरि।
सखिया पच्चीस मिलि झुलहिं सखी गगन झकोरि झकोरि।
सुरति निरति ले पोढ़ा हो, मन भीना मारैं पेंग।
प्रेम के किहेन्न खटोलना सखी त्रिगुण खाँहि दरेग।
सुखमनि के घर भीतर हो अनहद नाद बजाय।
लम्विका सुर ले गावहिं सखी शब्द रहाय-रहाय॥
वायु बहै पुरवइया हो, रिमझिम बरसे नीर।
पिया मोर हसि हसि बोलहिं सखीवानी गहिर गभीर।
सीस लिहै एक नरिअर हो गले पुहुप के माल।
पलटूदास तहाँ झूलहु सखी जारि जगत जजाल[३]।

१. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ २६ पद ६८
२. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ८० पद ६८
३. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ २८, पद ६६
४. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १३६, पद ३६६

ऐसा ज्ञान होता है कि पलटूदास ने काया-शोधन के लिए ही हठयोग की साधना की थी और प्राणायाम की क्रिया को भी साधना मे प्रधान स्थान दिया था। परन्तु बाद मे उन्हे हठयोग की क्रिया से अरुचि हो गई थी या उन्हे इसकी आवश्यकता ही नही प्रतीत हुई। उनकी रचनाओ से ज्ञात होता है कि साधना की द्वितीयावस्था में इन्होंने लययोग या सुरति शब्द योग का सहारा लिया था, क्योकि वे बार-बार अनहद श्रवण, त्रिकुटी, बक नाल मे प्राण वायु को ले जाकर उस शब्द रूप ब्रह्म को देखने तथा श्रवण करने की बाते करते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि इस ससार की उत्पत्ति शब्द ब्रह्म से हुई है। सर्वप्रथम मूल रूप मे चैतन्य का स्वरूप निर्मल था। तत्पश्चात् सुरति की धार उससे निकली और कई स्थानो पर ठहरती हुई तथा अपने विश्राम स्थान पर लोको का सृजन करती हुई आगे बढी। त्रिकुटी के ऊपर के समस्त लोक मूलरूप से क्रमश: कम चैतन्य तथा कम निर्मल होते गये। त्रिकुटी के नीचे भी उसने रचना की। परन्तु उसका रचयिता काल पुरुष है, अतः उसको काल देश या माया देश भी कहते हैं। यहाँ पर मन तथा माया के मेल के कारण चैतन्य दब गया, परन्तु सुरति अपने मूल स्थान तक पहुँचने के लिए सर्वदा व्याकुल रहती है। मन तथा माया उसे सत्पथ पर जाने से रोकते हैं और उसे नाना प्रकार के प्रलोभनो के द्वारा कुपथ पर ही ले जाते हैं। इसीलिए सतो ने सुरति को चूहा तथा मन और माया को बिल्ली कहा है। बिल्ली को देखकर चूहा बाहर नही निकलता, उसी प्रकार मन तथा माया के डर से सुरति आगे बढने का साहस नही करती।

मन तथा माया की शक्ति काल देश तक ही है। इसीलिए त्रिकुटी तक पहुँची हुई सुरति फिर नीचे मुड़ सकती है। इसी को कबीर ने कहा है कि मैंने मछली को काट कर तथा स्वच्छ करके ऊपर छीके पर रख दिया, परन्तु वह अनायास तालाब मे आकर तैरने लगी।[1] इस मन तथा माया को अशक्त तथा पगु कर देने पर ही सुरति आगे बढ सकती है। इसीलिए नाना प्रकार की साधनाओ की व्यवस्था है।

इस शरीर मे दो आत्मा हैं। एक शुद्ध ब्रह्म है और एक मन तथा छाया के चक्कर मे फसी हुई जीवात्मा है। ब्रह्म शब्द रूप तथा जीवात्मा सुरति रूप है। शब्दरूप ब्रह्म की ध्वनि इस शरीर में ही स्थित नाना लोको मे भिन्न प्रकार से सुनाई देती है। ओम, सोहं तथा ररकार इत्यादि शब्द पृथक-पृथक लोको के प्रतीक हैं। शब्द तथा सुरति का एकीकरण या शब्द में सुरति का लय कर देना ही सुरति-

१. काटी कुटी माछरी सीके धरी चहोरि।
फिर कोई आखिर मन बसा, दह में परी बहोरि॥ —(कबीर)

शब्द योग कहा जाता है। अभ्यास की प्रथम अवस्था में सुरति तथा शब्द एक दूसरे से पृथक् रहते हैं, परन्तु धीरे-धीरे दोनों का तदाकार हो जाता है या सुरति शब्द में लय हो जाती है।

यह साधना एक प्रकार से जीवित ही मृत हो जाने का अभ्यास है। मृत्यु के समय सर्वप्रथम पैरों से प्राण निकलता है, इसलिए वे ठंडे पड़ जाते हैं। तत्पश्चात् ऊपर के अंग क्रमशः सुन्न होते हैं। त्रिकुटी से बाद का रास्ता बन्द होने के कारण प्राण वहीं पर आकर रुक जाता है। दोनों आँखों के बीच से जीव की धार दोनों आंखों में विभक्त है। अतः इन्हीं आँखों के द्वारा ही प्रायः प्राण निकलता है। जीवित अवस्था में सुरति की धार अधोमुखी रहती है। लययोग में इसे नीचे से ऊपर चढ़ाया जाता है। इसीलिये इसे उलटी चाल भी कहते हैं प्राणायाम या अन्य साधना के सहारे सुरति को चढ़ाकर त्रिकुटि तक लाया जाता है। त्रिकुटी पर ज्योति-दर्शन या शब्द-श्रवण के द्वारा भी यह कार्य किया जाता है। जब ध्याता तथा ध्येय तदाकार हो जाते हैं तब साधक शब्द श्रवण करने लगता है। आगे बढ़ने पर सुरति एक स्थान पर पहुंचती है जहाँ उसमें तथा शब्द में कोई अन्तर नहीं रह जाता। उस समय साधक की दशा मृतक की भाँति होती है, क्योंकि प्राण का अस्तित्व ब्रह्म से पृथक् नहीं रह जाता।

सुरति को त्रिकुटी तक ले जाना साधारण काम नहीं है। मन भागता रहता है, इसलिए इसे एकाग्र करने में समय लगता है। वह धीरे-धीरे स्थिर होता है। इसलिए त्रिकुटी तक पहुँचने में साधक को पिपीलिका गति से आगे बढ़ना पड़ता है। त्रिकुटी के बाद साधक तीव्र गति से आगे बढ़ता है, क्योंकि वह माया के प्रभाव क्षेत्र से बाहर हो जाता है। इसलिए इसे विहंगम गति कहते हैं।

त्रिकुटी पर शब्द का सुनाई देना परन्तु मन तथा माया के फंदे में फंसी हुई सुरति का उस शब्द के श्रवण के लिए व्याकुल होना तथा उसको प्राप्त करने के लिए विविध साधनों का वर्णन पलटूदास ने एक पद में मार्मिक ढंग से किया है। उन्होंने कहा है कि त्रिकुटी पर प्रथम ग्रन्थि है। वहाँ से प्रियतम का शब्द सुनाई दे रहा है। सुरति कहती है कि 'मैं शरीर में आ फंसी हूँ। इसलिए प्रियतम का शब्द नहीं सुनाई देता। शरीर षट चक्र की घाट है, त्रिकुटी के ऊपर महल और अटारी है। मैं प्रियतम की सेज की पाटी पर अपना सिर रखकर जागूंगी। सम्भव है कि प्रियतम मुझे मिल जाय।' संसार में प्रवृत्त होने के कारण सुरति अपने प्रियतम से अलग हो गई है तो चाहिए कि साधक सतर्कता पूर्वक [illegible] अर्थात् अपने अभ्यास को [illegible] मेरे प्रियतम अप्रा[illegible] । यहीं ठगकर

मुझको यहाँ लाया है। लेकिन अज्ञानता का आवरण हट गया है। मुझे विश्वास है कि प्रियतम परम दयालु है और मुझे अवश्य ही क्षमा कर देगा।' इस मृदुल वचन को सुनकर मेरे प्रियतम हँसने लगे और इस प्रकार प्रियतम का दर्शन बड़ी तपस्या के पश्चात् हुआ।"

> गाँठ परी पिया बोलहिं न हमसे।
> निसु दिन जागो पिया की सेजिया,
> नयना अलसाने वे निकरि गयऊ घर से॥
> जो मैं जनितिउ पिया रिसिअइहे,
> काहे को प्रीति लगवतिउ ऐसो ठग से।
> अपने पिया को मैं वेगि मनैवो,
> सो तकसीर परन प्रभु जन से॥
> सुनि मृदु वचन पिया मुसुकाने,
> पलटूदास मिलै मोरे तन मे।

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ २६४, पद ७२७)

ज्ञात होता है कि योग सम्बन्धी ऊपर वर्णन की हुई पद्धतियों के पश्चात् पलटूदास ने कबीर की भाँति सहज योग को अपनी साधना का अन्तिम रूप माना है। कबीर ने "सहजे होय सो होय" कहकर इस साधना का रूप बताया है कि सहज योग की साधना हठ योग की भाँति कष्टसाध्य नहीं है। साधारणतः यह सब सुलभ है। इस साधना का स्वरूप बताते हुए पलटूदास ने कहा है कि इस साधना मे न ज्ञान की आवश्यकता है और न ध्यान धारण करने की। इसमें तीर्थ व्रत नेम तथा धर्म किसी की भी आवश्यकता नहीं है। सर्वसाध्य तथा सर्वसुलभ मार्ग होने के कारण सन्तों ने साधना की यह पद्धति निकाली है।

> ज्ञान ना ध्यान ना जोग ना जुगति है,
> मुक्ति चेरि भई द्वार ठाढ़ी।
> तीरथ ना बरत ना दान ना पुन्न है,
> पड़ी जमराज पर चोट गाढ़ी।
> पूजा अचार ना नेम ना धर्म है,
> लेन को आये बैकुण्ठ वाड़ी।
> दास पलटू कहे राह सब छोड़ि कै,
> सहज की राह एक मत्त काढ़ी॥

(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३५, पद ६१)

कबीर ने ब्रह्म में ब्रह्म का लय ही सहज योग माना है। मन का मन में विलीन होना भी यही है। यह भी कहा जा सकता है कि मन का सहज में लय करना ही सहज योग का उद्देश्य है।

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, यह मन की समस्त इन्द्रियों का स्वामी है। इन्द्रिय-निग्रह करने के लिये मन को अपने अधिकार में लाना परम आवश्यक है। मन की चचलता आत्मदर्श होने में बाधा डालती है तथा मन के समस्त विकार ही नानात्व या द्वैत का सृजन करते हैं। मन और माया का घनिष्ट संबध है। ये दोनों मिलकर जीवात्मा को सासारिकता में फंसाए रखते हैं और उसे ब्रह्म-प्राप्ति की ओर जाने से रोकते हैं। अतः साधक का मुख्य कर्तव्य यह है कि वह चचल मन को थकित कर दे ताकि वह शान्त हो जाय, परन्तु इ में कठिनाई है। यह किसी प्रकार मारा नहीं जा सकता, क्योंकि इसमें स्थूलता नहीं है। जब किसी ने इसे देखा ही नहीं तब यह कैसे हाथ लग सकता है? यह स्वभाव से इतना चचल तथा तीव्रगामी है कि कभी एक स्थान पर नहीं रह सकता।[1] कभी वैराग्य की बातें करता है तो कभी काम-क्रोध को नष्ट करने की सोचता है, कभी भोग-विलास में लिप्त रहता है तो कभी कुटिल हो जाता है।[2] यह एक ऐसा बहादुर सिपाही है जो बदमाशी किया करता है और एक पल में हजारों कोस चला जाता है। यह स्यार की भाँति डरपोक, लोमड़ी की भाँति चतुर, काक की भाँति धुर्त तथा शेर की भाँति शक्तिशाली है।[3]

सच पूछा जाय तो समस्त सृष्टि का निमित्त कारण यह मन ही है। यह खोटा मन चोर तथा चमार है। यह राजा-रक तथा फकीर सबको दुःख देता है। असतोष का मुख्य कारण भी यही है। दोनों गुणो से युक्त यही मैला मन आवागमन का कारण है। अतः अगर यही मन मार दिया जाय या उपाधि-विहीन कर दिया जाय, तो साधक मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकता है। अगर सासारिक विषय-वासनाओं की ओर से मोड़कर इस मन की प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी कर दिया जाय तो जीवात्मा उद्‌बुद्ध हो सकती है।

बाह्याचार तथा मूर्तिपूजा मन को किसी प्रकार एकाग्र नहीं कर सकते। क्योंकि ये उसके बहिर्मुखी होने में सहायक होते है। बाल मुंडाने और गेरुआ वस्त्र धारण करने से यह मन अन्तर्मुखी नहीं हो सकता, क्योंकि इनका सम्बन्ध शरीर से है न कि मन से। इसीलिये इन्होंने एक स्थान पर कहा है कि लोग नाना प्रकार के

---

१. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ८४, पद ११७
२. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ९८, पद १
३. ,, ,, ,, भाग ३ पृष्ठ ९३, पद ११३

वेष बनाकर बहुरूपिए का स्वांग भरते हैं, परन्तु उनको नरक में ही जाना पड़ेगा, क्योंकि उन्होंने आशा तथा तृष्णा का मन मे त्याग नही किया है। शरीर मे त्याग की भावना लक्षित होती है, परन्तु मन की वासना राख मे दबी हुई अग्नि की भाँति सुलगती रहती हैं[1]।

उसी प्रकार पत्थर की मूर्ति की पूजा करने मे कोई लाभ नहीं दिखाई देता, जबकि मन मे द्वैत की भावना बनी हुई है। वह शरीर तीर्थ करने जाता है लेकिन मन विषय-वासनाओं से दूर नही हुआ।[2] वेद शास्त्रों के पढ़ने से भी कोई लाभ नही दिखाई देता, क्योंकि पुस्तक मे भी राम नही छिपा है[3]। जब मन का सम्बध विषय-विकारो के साथ ही है तब समस्त बाह्याचार, वेश तथा पूजा व्यर्थ ही है क्योंकि ये भौतिक पदार्थो मे उलझे हुए आध्यात्मिक जगत् की ओर नही ले जाते।

जब यह मन स्वतन्त्र है, इसका विवेक नष्ट हो चुका है पाप को पुण्य और पुण्य को पाप समझता है, कर्म-मर्म के बीच मे पडा है तब इसका शुद्धिकरण कैसे सभव है? अगर मनोमारण करना है तो पवन को साध करके षट् चक्रो का भेदन किया जाय और मन को त्रिकुटी तक चढाया जाय।[4] मन और माया का क्षेत्र त्रिकुटी तक चढाया जाय। मन और माया का क्षेत्र त्रिकुटी तक ही है। इसे माया देश कहा

---

१. नग्ना नाना कीन्हें भेष मिटी नहिं मन की आसा।
बहुरूपिया का स्वांग अंत को नर्क निवासा।
माया के दै ढोल सबन को नाच नचाया।
अरे हाँ पलटू लगी रहे वह डोरि बहुरि चौरासी आया।
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ९०, पद ५)

× × ×

२ ऊपर डाला धोय मैल दिल बीच समाना।
पाथर मे गयो भूल सत का मरम न जाना।

× × ×

(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ८१, पद २०८)

३. पलटू कागद में खोजत है
साहि। कहीं लुकान है जी ॥
[पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ५९, पद ५६]

४. पहिले हवै बैराग भक्ति तब कीजिये।
सतसगत के जोग ज्ञान तब लीजिये।
ऐसे उपजे ज्ञान भक्ति को पाइ कै।
अरे हां पलटू ले जा ऊपरै मारि ठीक ठहराइ कै ॥
(पलटू साहेब की बानी पृष्ठ ७९ पद ९२)

जाता है। शिथिल तथा शान्त मन सुरति या जीवात्मा का बंधन नहीं रह जाता। अत: सुरति भी ब्रह्म-प्राप्ति के लिये अबाध गति से उर्ध्व देश में बढ़ती जाती है। जब सुरति अनहद शब्द का श्रवण करती हुई शून्य के पथ से आगे बढ़ने लगे तो अन्त में दसमद्वार खुलता है और अन्त में सोहं शब्द सुनाई देने लगता है। यही ब्रह्म है जो स्वयं बोलता है। इसका साक्षात्कार ही साधक का ध्येय है।

सत्संग तथा ज्ञान की बातों के द्वारा इस मन को शुद्ध किया जाता है। सुरति की कमान चढ़ाकर भी इसे मारा जा सकता है। अतः सहज योग के अन्तर्गत मनो-मारण तथा आत्म-शुद्धि का पूर्ण रूपेण समावेश पाया जाता है। क्षमा, दया तथा संतोष इत्यादि सत्कार्यों से भी यह मन सहज ही में स्थिर हो जाता है और यही सहज योग का आदर्श है।

सांसारिक वस्तुओं से उदासीन यह मन जब ईश्वरोन्मुख होता है, तब वह अपने स्वरूप को देखने के लिये व्यग्र हो जाता है। इसी समय उसे एक ऐसे अलौकिक मानव की आवश्यकता पड़ती है, जो उसका पथ-प्रदर्शन कर सके। सत्संग तथा वैराग्य से प्रभावित यह मन फिर से संसार की ओर घूम सकता है। अतः साधक को एक ऐसे मनुष्य की आवश्यकता है, जो उसकी जिज्ञासा की अग्नि को सर्वदा प्रज्वलित रखे और आध्यात्मिक पथ में किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न होने पर तुरंत ही उसे दूर कर दे। साधना करते समय साधक मार्ग से विचलित हो सकता है और बिना सद्गुरु के उसकी पहिचान होना तथा साधक को सही रास्ते पर लाना अन्य के लिए कठिन है। इसलिये ऐसा गुरु चाहिये जो स्वयं उस मार्ग पर गमन ही नहीं कर चुका हो अपितु उसमें पड़ने वाले प्रत्येक स्थान से सुपरिचित हो। उसकी दशा उस मल्लाह की भाँति है, जो नदी के पानी की गति का ज्ञाता तथा प्रत्येक घाट से पूर्णरूप से भिज्ञ है[1]। इसलिए गुरु खोजने में सतर्कता की आवश्यकता है।

अगर मार्ग में पड़ने वाली समस्त बाधाओं का उसे स्वयं ज्ञान नहीं है तो वह दूसरों की कठिनाइयों को कैसे दूर कर सकता है? गुरु का काम है कि वह शिष्य को प्रत्येक स्थान तथा बाधाओं का ज्ञान पहले ही करा दे, ताकि वह सतर्क हो जाय।

---

१. भव सिंधु के पार जो चाहिए जानको, केवट भेदी तलास कीजै।
घाट औ बाट के भेद का महरमी, उसी को नाव पर पाँव दीजै॥
सबद की नाव पर चढ़ें जो ध्याय के जाय वहि पार नहिं पाँव भीजै।
दास पलटू कहै कौन मल्लाह है, पार भव सिन्धु तब उतरि लीजै॥
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ १, पद १)

इसीलिये पलटूदास ने खूब-सोच समझकर गुरु बनाने का उपदेश दिया[1] है। अगर गुरु मे क्षमता का अभाव है तो सफलता की बात क्या, क्षति भी हो सकती है और जीवन नष्ट हो सकता है।[2]

जिस प्रकार गुरु चुनने मे सतर्कता की आवश्यकता है, उसी प्रकार चेला बनाने मे भी। गुरु को यह जान लेना चाहिये कि यह मनुष्य जो वेश बनाकर आया है, वह भेद बताने योग्य है अथवा नही। ऐसा भी सम्भव है कि घरेलू झझटो के कारण वह साधु वेश धारण कर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता है या धन के लोभ में पड़कर और ससार मे पूजा कराने के लिये या अपनी प्रतिष्ठा बढाने के लिये यहाँ आया है या सचमुच ही इसमे वैराग्य उत्पन्न हो गया है।[3] अगर वह सत्पात्र नही है तो उसको ज्ञान देना व्यर्थ होगा और पत्थर पर तीर मारने की भाँति सारा प्रयत्न निष्फल होगा[4]। वह शिष्य मोम की बत्ती की भाँति है, जो निरन्तर जल मे पडी रहने

---

१. बूझि विचारि गुरु कीजिये, जो कर्म से न्यारा।
कर्म बंद इरि दूरिहैं, बूडै मंझधारा॥

× × ×

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ८६, पद २६३)

२. जोग करूँ जिन कोई हो, जो युक्ति न आवै।
देखी देखा योग करहुंगे, नाश देह के होई हो॥
योग करत बौराइ जाहुंगे, बात जायगी खोई हो।
पवन तहां तर्जविज होई जइहैं, दिन काटहुंगे रोई हो।
पलटूदास यह वचन हमारो, मान लेहु नर सोई हो॥

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ २८ पद ६६)

३ मसखरा ना हूवे सकौ मुड़ाया मूड तब।
सेतिमेति में खाय मिला औसान अब॥
तब नागा हूवै लिहिन रहे ना काम के।
अरे हाँ पलटू मारि पीटि के खाँहि सो बेटा राम के॥

(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ६८, पद ३२)

४. गासो छूटै शब्द की, मूरख करै न ज्ञान।
पलटू सद्गुरु क्या करै हृदय भया पषान॥

(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२० पद ४७)

पर भी जल से प्रभावित नहीं होती[1]। ऐसे मनुष्य से भेद की कोई बात नहीं करनी चाहिये और मौन धारण कर लेना चाहिये[2]। गुरु का कर्तव्य है कि वह उस चेले की परख कर ले। तत्पश्चात् उसकी प्रवृत्तियों के आधार पर यथोचित कार्य करे[3]।

शिष्य का भी यह पुनीत कर्तव्य है कि वह अपने गुरु की सेवा तन-मन-धन से करे। तथा उनकी कही हुई बातों पर विश्वास रखे। साथ-ही-साथ गुरु का भी यह कर्तव्य हो जाता है कि वह सरलता पूर्वक समस्त भेदों को बताकर शिष्य को साधन क्षेत्र में आगे बढ़ावे। समस्त बाधाओं से उसे परिचित करा दे तथा उनमें बचने का उपाय भी करे।

सेवा के अतिरिक्त गुरु भक्ति भी आवश्यक है। शिष्य का पुनीत कर्तव्य है कि वह प्रतिदिन की नित्य क्रियाओं में गुरु की सदा सहायता करे, उनकी पूजा तथा आरती भी करे। यह सेवा जीवन-पर्यन्त होनी चाहिये।[4] प्रायः ऐसा देखने में आता है कि सिद्धि मिल जाने के पश्चात् साधक अपने गुरु का साथ छोड़ देता है और फलस्वरूप वृद्धावस्था में गुरु की सेवा करने वाला कोई नहीं रहता, जिससे उसको दुःख होता है। वह सोचता है कि मरने के पश्चात् सुख मिलने से क्या लाभ है अगर इस जीवन में दुःख ही मिला[5]। अतः गुरु-भक्त का यही काम है कि वृद्धावस्था में भी अपने गुरु की

---

१. सद्गुरु बपुरा क्या करै, चेला करै ना होस।
   पलटू भीजै मोम ना, जल को दीजै दोस ॥
   (पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२०, पद ४६)

२. पलटू जो बूझै नहीं बोले से रहु बाज ।
   मूरख को समझाइये नाहक होय अकाज ॥
   [पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२०, पद १२७]

३. पलटू शिष्य जो कीजिये लीजो बूझि विचारि ।
   बिनु बूझे से करोगे परैगी तुझ पर मार ॥
   [पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२६, पद १५७]

४. गुरु जो दिया है सोइ तू लिये रहु, उसी में बहुत विश्वास करना।
   (पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ४४ पद ३८)

५. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ५४, पद ४६

६. मुवे मुक्ति केहि काम की जियते मरिये रोय ।
   कहै पलट सुनु केसव हंसी बृद्ध की होय ।
   [पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३३० पद १६२]

सेवा करता रहे[1]।

शिष्य को चाहिये कि वह प्रार्थनापूर्वक अपने गुरु के समक्ष अपनी उन समस्त कठिनाइयों को रखे जिनसे, वह सतप्त है। गुरु मे अपने हृदय की समस्त बातो को कह देने मे ही कल्याण है[1]। अतः गुरु तथा शिष्य दोनो को एक दूसरे से निष्कपट भावना रखनी चाहिये।

गुरु का भी यह पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने शिष्य से सहानुभूतिपूर्वक बर्ताव करे, उसकी बातो को ध्यान से सुने और उसे उत्साहित करता रहे। परन्तु उसे अपनी दृष्टि शिष्य के ऊपर भी रखनी पड़ती है। ऐसा सम्भव हो सकता है कि उसकी अभिज्ञता मे ही शिष्य मे कुछ ऐसे अवगुण आ जाए, जो साधना मे बाधक सिद्ध हो या क्रमशः अवाछनीय प्रकृति का जागरण हो रहा हो जो अन्त मे उसे साधना से विरक्त कर दे। ऐसे समय मे उसे कटु भाषी भी होना पड़ेगा ताकि शिष्य का कुछ अनिष्ट न हो। ऐसे वचन सुनने मे ही कटु होते है, परन्तु ये अमृत का काम करते हैं, क्योकि इनका फल अच्छा होता है। शिष्य को भी चाहिये कि ऐसे गुरु के ऐसे वचनो को सुनकर तथा उन्हे लाभप्रद समझकर प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करले।

किसी शिष्य के लिये उसका गुरु ही आदर्श है। इसलिये गुरु को अपनी कथनी तथा करनी को एक करना आवश्यक है। अगर कोई शिक्षा दे और उस शिक्षा के विरुद्ध स्वयं आचरण करे तो इस पर आस्था कैसे हो सकती है? उसको उन समस्त गुणो को कार्य रूप मे परिणित करना पड़ेगा, जो वह अपने शिष्य मे देखना चाहता है। शिष्य का पुनीत कर्तव्य है कि वह अपना सर्वस्व अपने गुरु के चरणों में अर्पित कर दे। गुरु को त्यागी होना चाहिये। अपने शिष्य से किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार दोनों को सग्रह-त्याग की भावना जाग्रत करनी पड़ेगी। यही कारण है कि सद्गुरु परोपकारी कहा जाता है। वह जीवो के

---

१. पलटू कहै सुनो केसव, बूढ़ की कीजै प्रतिपाल।
मुवे मुक्ति दुख जीवते होते सत बेहाल॥
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२९ पद १५४)

२. कटाच्छ के हमरी ओरि ताकौ, सतगुरु करो दाया है जी!
जड़ चेतन दोऊ लागि रहे, जबर तेरी माया है जी।
कुछ जोग जुगत बतलाय दीजै, जा से सौधो मैं काया है जी॥
पलटू तुम दीनदयाल बड़े, सतगुरु संतों सब पाया है जी॥
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३६, पद ३)

उद्धार के लिए ही इस पृथ्वी पर जन्म लेता है और बदले में दुख ही सहन करता है।[1]

परन्तु इस प्रकार की भावना जाग्रत होने पर धूर्तों की भी चाँदी हो सकती है और वे शिष्य की इस भावना का अनुचित लाभ उठा सकते हैं। इस पंथ में सद्गुरु की इतनी महत्ता से बुराई उत्पन्न होने की भी सम्भावना बनी रहती है। वेशधारी तथा पाखण्डी गुरु इसके द्वारा संसार को ठगकर अपना लाभ कर सकते हैं।[2] ऐसे लोगों को व्यवसायी कहा जा सकता है जो शिष्य बनाकर उनसे द्रव्य लेते हैं। साथ ही साथ वह गुरु मेहतर हैं जो बुला-बुलाकर लोगों को शिष्य बनाता है और इस प्रकार से बना हुआ शिष्य भी चमार ही कहा जा सकता है[3]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिना गुरु के आध्यात्मिक प्रेरणा निरंतर नहीं मिल सकती। अतः गुरु ही साधना का एक आवश्यक माध्यम है। अगर किसी ने सच्चा भेदी पा लिया तो यह निश्चित है कि उसने सफलता प्राप्त कर ली। यही

---

१. पर स्वारथ के कारने, संत लिया अवतार।
संत लिया अवतार जगत को राह चलावें।
भक्ति करें उपदेश ज्ञान दे नाम सुनावें॥
प्रीत बढ़ावे मक्त में धरनी पर डोले।
कितनो कहे कठोर वचन वे अमृत बोले॥

उनको क्या है चाह सहत हैं दुख घनेरा।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा॥
पलटू सतगुरु पाए के दास भया निरवार॥
पर स्वारथ के कारने संत लिया अवतार॥
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ २, पद ४)

२. पगरी धरा उतारि टका छः सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का।
गोड़ धरे कछु देह मुड़ाये मूड के।
अरे हां पलटू ऐसा है रुजगार कीजिए ढूंढ के॥
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ६८, पद ३१)

३. ज्ञान ध्यान जाने नहीं करते शिष्य बोलाय।
पलटू सभा चमार की गुरुआ मेहतर आय॥
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२८, पद १४०)

कारण है कि गुरु और ईश्वर मे कोई भेद नही है। ईश्वर मे यह शक्ति नही है कि वह अपना दर्शन करा दे, परन्तु गुरु मे इतना बल अवश्य है कि वह अलख को भी दिखा दे[1]।

इसलिए सत्गुरु के क्रोध का भाजन नही बनना चाहिए। चाहे ससार विरुद्ध हो जाय, परन्तु विवेकी साधक सत्गुरु की ही आशा रखता है। उसको तीनो लोक, समस्त देवता तथा मनुष्य के क्रोधित होने का लेश मात्रभी भय नही है। उसका सब काम बन जायेगा अगर सत्गुरु की कृपा बनी रहे। उसके प्राप्त हो जाने पर योग की कठिन साधना सरलतापूर्वक की जा सकती है[2]।

योग की साधना अत्यत कठिन है। इसके लिये साहस तथा धैर्य की आवश्यकता है। इन्द्रियो के स्वामी मन को जीतना एक साधारण काम नही है। बहुत साधक बीच ही में इस साधना को छोड सकते हैं और कुछ असफल हो सकते हैं। पलटूदास ने इस प्रकार के आभ्यान्तरिक युद्ध मे भाग लेने वाले को कबीर की भाँति "सूरमा" कहा है। इस प्रकार की भावना का प्रारम्भ कदाचित् सर्वप्रथम कबीरदास ने किया था। सासारिक सूरमा के पास अस्त्र-शस्त्र रहते हैं पर इस प्रकार के सूरमा के पास ऐसा कोई अस्त्र नही है। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र मानसिक है। उसके पास ज्ञान का तरकस, दम की गोली तथा विश्वास की बन्दूक है। वह अपने शरीर की रक्षा के लिए प्रेम का बख्तर पहनता है। सतोष के घोडे पर क्षमा का जीनब बाधकर आसमान मे दौडता है। इस प्रकार सुसज्जित होकर सुरति के कमान से वह नाम का निशाना मारता है[3]। उसका शत्रु भी स्थूल नही है। काया रूपी किले का राजा मन है। वह अपने समस्त अनुचरो के साथ इसी शरीर मे रहता है। मन मे न शरीर है न हड्डी है

---

१. गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाय।
बलिहारी गुरु आपने सतगुरु दिया बताय।। —कबीर

२. जग रीझे तो क्या भया, रीझे सतगुरु संत।
रीझे सतगुरु संत आस कुछ जग की नाहीं।
एक द्वार को छोड़ और न माँगन जाहीं।
जिव मेरो बरु जाय जन्म बरु जाय नसाई।
करौं न दूसर आस संत की करौं दुहाई।
तीन लोक रिसिआय सकल सुर नर और नारी।
मोर न बाके बार पलटू पाया भारी।
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ४, पद १०)

३. पलटू साहेब की बानी भाग १ पद १७३, पृष्ठ १०३

और न मास है। पूँछ, पाँव तथा मुख कुछ भी नहीं है[1]। मन को मारने से पहले उसके अनुचर काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अहंकार, तथा लालच से युद्ध कर सूरमा काया गढ़ पर अधिकार करता है। यह युद्ध निरन्तर शरीर के भीतर ही चलता रहता है।[2]

सूरमा को सतगुरु से भी युद्ध करना पड़ता है। ऊपर वर्णित युद्ध से भी यह युद्ध अधिक भयंकर है। सतगुरु के शब्दरूपी तीर से सूरमा घायल हो जाता है। उस तीर से बचने का कोई साधन नहीं है। इस युद्ध-भूमि से कायर डर कर भाग जाते हैं केवल सूरमा ही ठहरता[3] है। उसका शरीर प्रत्येक स्थान पर छिद जाता है तथा उसमें घाव हो जाते हैं। इस तीर का प्रभाव शरीर के भीतर पड़ता है और बाहर कुछ भी नहीं दिखाई देता। सूरमा का सिर कट जाता है, फिर भी वह इतना साहसी तथा बलवान है कि अन्त तक धड़ से ही युद्ध करता रहता है।[4] किसी से मांगकर पानी तक नहीं पीता और न किसी से बोलता है। वह साहसपूर्वक आगे ही बढ़ता जाता है, पीछे नहीं हटता। वह जीवित अवस्था में भी मृतक की भांति घूमता रहता है[5]। इस युद्ध में सूरमा की हार ही जीत है।

इस प्रकार की साधना में अपने गुरु के वचन पर विश्वास करना परम आवश्यक[6] है। ऐसा कहा भी जाता है कि गुरु में जिसका जितना विश्वास होगा वैसा ही फल मिलेगा। अगर गुरु पर विश्वास नहीं किया जाय तो सिद्धि नहीं मिल सकती, क्योंकि विश्वास से मन में दृढ़ता आती है और साहस भी बना रहता है। इसी प्रकार भगवान पर भी विश्वास आवश्यक है। भगवान के अस्तित्व, शक्ति तथा अनन्त महिमा पर विश्वास ही साधक को ब्रह्म-मय बनाता[7] है। इसलिए गुरु तथा परमेश्वर दोनों पर विश्वास करके साधना करने में ही साधक का परम कल्याण है।

---

१. उसी साव को मारना जी, न हाड़ न मांस न चाम ख्वासा।
पूंछ न पाँव न मुख वाके, उसी का लालन बने खासा ॥
मुर्दा के मारे वह मरे, जीवन अधिक की नाहिं आसा।
पलटू अति सयाना मारि खावे, तिसी का आवागमन नासा ?
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ४८, पद २६)

२. पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ३६ पद, १०० से १०२ तक

३. ,, ,, ,, भाग ३ पद ४ पृष्ठ २८४

४. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ४१ पद १०५

५. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ४२ पद १०६

६. गुरु जो दिया है सोइ तू लिये रह, उसी में बहुत विश्वास करना !
पलटू साहेब की बानी भाग २ पद ३६ पृष्ठ १४

७. पलटू साहेब की बानी भाग १ पद ७५—७७ पृष्ठ २०—३०

भक्ति-साधना

ज्ञान तथा योग साधना के साथ पलटूदास की साधना-पद्धति मे भक्ति का समावेश है। आजकल भक्ति की कई परिभाषाए उपलब्ध हैं। भक्ति योग के आचार्य तथा परम भक्त श्री नारद ने भक्ति को ईश्वर के प्रति परम प्रेम-रूपा कहा है।[1] भगवान् में निष्कपट भाव से प्रेम हो जाना ही भक्ति है। ज्ञान, कर्म आदि साधनो से रहित और सब ओर से स्पृहाशून्य होकर चित्तवृत्ति जब अनन्य भाव से केवल भगवान् में लग जाती है, जगत् के समस्त पदार्थों से तथा परलोक की सुख सामग्रियो मे यहाँ तक कि मोक्ष सुख से भी चित्त हटकर एक मात्र अपने परम प्रेमास्पद भगवान् मे लगा रहता है, तब उस स्थिति को अनन्य प्रेम कहते हैं।[2] योग तथा ज्ञान का कोई न कोई उद्देश्य है परन्तु भक्ति स्वयं साधन भी है और साध्य भी।[3]

श्री व्यास जी के अनुसार भगवान की पूजा आदि मे अनुराग होना भक्ति है[4]। अपने तन-मन-धन इत्यादि को भगवान की पूजा सामग्री समझना और परम श्रद्धापूर्वक तीनों के द्वारा भगवान की प्रतिमा की अथवा विश्वरूप भगवान को पूजा करना ही भक्ति है[5]। श्री गर्ग ने भगवान की कथा आदि मे अनुरोग होना ही भक्ति कहा है। भगवान की दिव्य लीला, महिमा, उनके गुण तथा नामो का कीर्तन तथा श्रवण में मन को लगाना ही भक्ति है। श्री शाडिल्य ऋषि के मत मे आत्म रति के अविरोधी विषय मे अनुराग होना ही भक्ति है[6]। परन्तु देवर्षि नारद के मत से अपने सब कर्मों को भगवान् को अर्पण करना और भगवान् का थोडा सा भी विस्मरण होने मे परम व्याकुल होना ही भक्ति[7] है। भक्त प्रहलाद ने भक्ति की इस प्रकार परिभाषा की है--जैसी तीव्रासक्ति अविवेकी पुरुषो की इन्द्रिय-विषयों मे होती है, उसी प्रकार की आसक्ति तुम्हारा स्मरण करते समय कहीं मेरे हृदय से चली जाय।[8] स्वामी विवेकानन्द ने भक्ति योग मे लिखा है कि आध्यात्मिक अनुभूति के लिए किये जानेवाले मानसिक प्रयत्नों की परम्परा ही भक्ति है, जिसका प्रारम्भ

१. सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा
(नारद भक्ति सूत्र-सूत्र २)
२. प्रेम दर्शन पृष्ठ ५०
३. स्वयं फलरूपमिति ब्रह्मकुमाराः (भक्ति सूत्र ३०)
४. पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः (सूत्र १६)
५. प्रेम दर्शनपृष्ठ ३९
६. नारद भक्ति सूत्र [सूत्र १८]
७. ,, ,, [सूत्र १९]
८. भक्ति योग-स्वामी विवेकानन्द पृष्ठ १२

साधारण पूजा-पाठ से होता है और अन्य ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ एवं अनन्य प्रेम से।

भक्ति दो प्रकार की कही गई है। एक परा तथा दूसरी गौणी। इन्हीं को क्रमशः निष्काम तथा सकाम भक्ति भी कहते हैं। अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष के लिए की गई भक्ति गौणी या सकाम और बिना किसी स्वार्थ के की गई भक्ति परा या निष्काम भक्ति कही जाती है। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत् में भक्ति के नौ प्रकार कहे गये हैं।[1]

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः, स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं, आत्मनिवेदनं॥

(श्रीमद्भागवत् पुराण ७।५।२३)

महर्षि नारद ने भक्ति को ग्यारह प्रकार का माना है। गुण माहात्म्यासक्ति, रूपासक्तिपूजा सक्ति, स्मरणासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति[2]।

पलटूदास की भक्ति प्रेम पर ही आधारित है। इनके ऊपर सूफी मत के प्रेम का भी कम प्रभाव नहीं है। वे भी प्रेम के प्याले तथा उसकी खुमार के मतवालेपन का वर्णन हृदय खोलकर[3] करते हैं। गुरु गोविन्द जैसा माशूक देखकर पलटूदास आशिक होकर उसके प्रेम में पागल हो जाते[4] हैं। उस माशूक का मिलना अत्यन्त ही कठिन है। पहले अपने मरने का निश्चय कर लीजिये, रात-दिन अनन्य भाव से उसका स्मरण कीजिए तब कहीं वह मिल सकता[5] है।

पलटूदास इसी प्रेम द्वारा भगवान का साक्षात्कार भी करते हैं। प्रेम में अनन्यता की अधिक आवश्यकता है। जिस प्रकार मछली बिना पानी के जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार भगवान् से प्रेम करना चाहिए। इस प्रकार के प्रेम में त्याग तथा तप की भी आवश्यकता है, परन्तु वह एक विकट मार्ग है। लेकिन भक्त इससे नहीं डरता। वह नाना प्रकार की कठिनाइयों को पार करने का संकल्प कर लेता है। पलटूदास कहते हैं कि अगर तुमको ईश्वर के घर में जाना है, तो यह मत समझो कि यह एक सरल कार्य है। सर्वप्रथम अपने अहंभाव को दूर करो। इसी त्याग के लिए उन्होंने सूरमा के समस्त अंगों के कट जाने पर भी उसके आगे बढ़ने का चित्र उपस्थित किया है। यद्यपि सूरमा जानता है कि वह बचकर नहीं आयेगा फिर भी वह आगे बढ़ता जाता है। उसी प्रकार भक्त को भी नाना प्रकार की

---

१. भक्ति स्वामी विवेकानन्द पृष्ठ १३
२. नारद भक्ति सूत्र-सूत्र ८२
३. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १६, पद ५८
४. ,, ,, ,, पृष्ठ २४१, पद ६७२
५. ,, ,, ,, पृष्ठ ११०, पद ३१७

कठिनाइयों को पार करते हुए अपनी भक्ति दृढ रखनी चाहिए[1]। इसमें त्याग की भी आवश्यकता है। विषय-वासनाओं से भरा हुआ साधक भक्ति की ओर जा भी कैसे सकता है? वह अपने मन को भगवान में कैसे एकाग्र कर सकता है? इस ससार मे कोई वस्तु स्थिर नहीं है। अत मुट्ठी बाध आना है और हाथ पसारे जाना है। इस ससार मे भगवान का नाम स्मरण ही सत्य है। उसके अतिरिक्त कोई अपना नहीं है। अत. उसे ही भजना श्रेयस्कर है।[2]

प्रेमस्वरूपा भक्ति के प्राप्त हो जाने पर मनुष्य न तो किसी वस्तु की इच्छा करता है और न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न ही विषय-प्राप्ति मे उसका उत्साह ही रहता[3] है। भगवान के प्रेम के सामने ये सब हेय हैं। प्रेम साधक को उन्मत्त कर देता है और उसका ध्यान इस संसार को त्याग कर सदैव ब्रह्म मे लगा रहता है। वह न किसी से प्रेम करता है और न शत्रुता। कचन तथा कामिनी उसे नहीं सताते। सुख-दुख, हानि-लाभ इत्यादि द्वैत भावना नष्ट हो जाती है[4]।

नारद भक्ति-सूत्र के अनुसार इस प्रकार की भक्ति मे बाधा उत्पन्न करने वाली प्रधान वस्तु कुसगति है[5]। जहाँ सत्संग भक्ति का पोषक है वहाँ कुसंग बाधक है। कारण यह है कि वह आसुरी प्रवृत्तियो को जाग्रत करके दुराचार को प्रश्रय देता है। काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि ही सर्वनाश एवं बुद्धिनाश के कारण हैं[6]। विषय त्याग, कुसग, त्याग, अखण्ड भजन एव भगवन् गुणश्रवण से ही भक्ति आती है। परन्तु भगवान की कृपा एव प्रेमी महापुरुषो की दया से यह क्षण मात्र में आ जाती है[7]। पलटूदास ने अपनी भक्ति-साधना मे ऊपर निर्दिष्ट समस्त बाधाओं को त्याग देने का उपदेश दिया है।

१-कुसंग त्याग

घरो फूकि, के पाँव कुसंग ना कीजिये।
भजन महै भंग होय सोच ना लीजिये॥

---

१. पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ २८ पद ६५
२. ,, ,, भाग २ पृष्ठ ७१ पद ४५
३ यत्प्राप्य न किंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साहीभवति।
नारद भक्ति सूत्र-५
४. पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ १४ पद ३५,
५. दुःसग सर्वथैव त्याज्या — नारद भक्ति सूत्र-सूत्र ४३
६. कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाशकारणत्वात्-सूत्र ४४
७. मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा-सूत्र ३८

कोउ ना पकरै फेट करै जो त्याग है !
अरे हाँ पलटू माया सग्रह करै भक्ति मे दाग[1] है !!

तथा

हरि चरचा से वैर मग वह त्यागिये !
अपनी बुद्धि नसाय सवेरे भागिये !
सरबस वह जो देइ तो नाही काम का !
अरे हाँ पलटू मित्र नही वह दुष्ट जो द्रोही राम[2] का !!

२-विषय-त्याग

कोई नही आपना भाई सब सपना यह संसार !
मैया हितकारी नारी बडी वह सूर्त अग लगाय !!
प्राण पुरुष जब कूच किया वह तुरत कई बिलखाय !
मैया उपटन तेल लगाय के जेहि पुत्र को किया है सयान !!
एक घडी राखे नही जब निकरि गया यह प्रान !
मैया मातु पिता सुत बन्धुवा सब माया के हैं यार !
स्वारथ के सब रोवते कोई सगी नही हमार !!
मैया दौलत दुनियाँ कौन की यह तन भी नाही सग !
पलटूदास एक नाव बिना यह सब है फीका रग[3] !!

३-स्मरण

जेहि सुमिरे गनिका तरी ता को सुमिरु गँवार !
ता को सुमिरु गँवार भला अपना जो चाहो !
झूठा है ससार रैन सुपने सा जानो !
मात-पिता सुत बन्धु झूठ इनको सब जानो !
सतसंगति हरि भजन सत्त दुइ इनको मानो !
और देव सब वृथा आस इनकी ना कीजै !!
सब देवन के देव हरी अन्तर भजु लीजै !
पलटू हरि के भजन बिन कोउ न उतरै पार !
जेहि सुमरे गनिका तरी ता को सुमिरु गँवार[4] !!

---

१. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ७२ पद ६८
२. वही पृष्ठ ७२ पद ७०
३. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ५७ पद १८१
४. पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ५६ पद १३४

४-अखण्ड भजन

भजि लीजे हरि नाम, काम सकल तजि दीजै !
मातु पिता सुत नारि बाधजा आवैं ना कोउ कामा !!
हाथी घोडा मुलुक खजाना, छूटि जैहै धन धामा !!

× × × × ×

नर तन सुभग भजन के लायक कौडी हाट बिकाना !
हरिगा ज्ञान परा भ्रमगति अमृत मे बिष साना[१] !!

५-भगवत् गुण, श्रवण तथा कीर्तन

इक पहर सुन सवन हरिजस अर्थ सहित मिलावन[२]।

भक्ति-साधना में विरह का विशिष्ट स्थान है। जब भक्त अपने आराध्य देव का चिन्तन करता है और भक्ति के विविध सोपानों द्वारा आगे बढ़ता है तो उसी मात्रा के अनुसार भगवत् प्राप्ति की व्याकुलता तथा आतुरता उसके हृदय में उठती जाती है। उसको प्राप्त करने के लिए वह रोता है, प्रार्थना करता है, पागल हो जाता है, यहाँ तक कि उसकी मृत्यु हो जाती है। विरहानुभूति बिना भक्ति के निष्प्राण है। सूफी मत की प्रेम की पीर भी यही है। सूफी साधक अपने माशूक की प्राप्ति के लिये कोई कसर उठा नहीं रखता। इस प्रकार की भक्ति का दाता भी सत्गुरु ही है[३]।

पलटूदास सकाम भक्ति नहीं चाहते। वे अपने भगवान से किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखते। रामानन्द, सनकादिक ऋषिगण तथा भरत का उदाहरण देकर उन्होंने अपने इस कथन की पुष्टि की है कि वे भी निष्काम भक्त हैं[४]। वे एक स्थान पर महात्मा तुलसीदास की भांति "अनपायनी भक्ति" का भी नाम लेते हैं[५]। परन्तु भक्ति कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। ज्यों-ज्यों मन भक्ति पथ पर अग्रसर होता जाता है, त्यों-त्यों निष्कामता आती जाती है। जब वह अपने प्रियतम के रंग में रंग जाती है तब साधक जाति-पाँति के बंधन से ऊपर उठ जाता है, भगवान के दरबार में जाति-पाँति की कोई सीमा नहीं है। निष्कामिता भक्ति का चरम उत्कर्ष

---

१. पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ११ पद २५
२. पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ५१ पद १०
३. वही पृष्ठ ८४ पद ३
४. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ४६ पद १५४
५. पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ५३ पद ४६
६. वही भाग ३ पृष्ठ ५० पद १०२

है। इस प्रकार के भक्त को भव बंधन से मोक्ष मिल जाता है[1]।

यह संसार ही दुःख का आगार है। काम, क्रोध, मद, लोभ तथा अहंकार इत्यादि मनोविकार बंधन स्वरूप हैं। मनुष्य का शरीर जिसे वह अपना कहता है सचमुच वह उसका नहीं है। धन, ऐश्वर्य, माल तथा प्रतिष्ठा आदि कुछ भी स्थायी नहीं है। विषय-वासनाओं में लीन होकर मनुष्य इन्द्रियों द्वारा आनन्द लेना चाहता है, परन्तु दुःख तो इस बात का है कि आशा तथा तृष्णा का अन्त है ही नहीं। यह सारा का सारा संसार बालू की भीति पर निर्मित है। जीवन बताशा तुल्य है जो पानी में तुरन्त गल जाता है। ये सांसारिक सुख डाल में लगे हुए पके फलों की भाँति हैं जो कभी भी गिर सकते हैं।

यह समस्त संसार क्षणभंगुर है, नश्वर है तथा दुःख स्वरूप है। यह माया तथा मोह का जाल स्वप्नवत् है। लोग बड़े-बड़े महल उठाते हैं, ऐश्वर्य की सामग्री जुटाते, परन्तु काल सबको उठा ले जाता है और इस संग्रह का फल यह मिलता है कि यमराज उनके कुकर्मों का लेखा जोड़कर फिर गर्भाशय में ढकेल देता है[2]।

सांसारिक दुःख का मुख्य कारण माया है। स्वामी विवेकानन्द ने ज्ञान योग नामक पुस्तक में इसका विशद् विवेचन किया है। यह समस्त दिशाओं में व्याप्त है तथा नाना प्रकार से मूर्ख संसार को ठगती है। इसी के कारण मनुष्य कर्म बंधन में फँसता है और आवागमन के फेर में पड़कर जरा-मरण के दुःख को भोगता है। सच पूछा जाय तो इस असार संसार में केवल राम-नाम ही सत्य है और भगवान की कृपा से ही उद्धार हो सकता है।

मन, वचन तथा कर्म से उपास्य के प्रति समर्पण की भावना ही उपासना है। यह व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों के प्रति हो सकती है; व्यक्त की उपासना सरल है और अव्यक्त की कठिन है। सूरदास ने सब विधि अगम विचारहिं ताते, सूर सगुन लीलापद

१. संत न चाहैं मुक्ति को, नहीं पदारथ चार।
नहीं पदारथ चार मुक्ति संतन की चेरी।।
ऋद्धि सिद्धि पर थूकें स्वर्ग की आस न हेरी।।
तीरथ करहिं न व्रत नहीं कुछ मन में इच्छा।
पुन्य तेज परताप संत को लगे अनिच्छा।।
ना चाहै बैकुण्ठ न आवागमन निवारा।
सात स्वर्ग अपवर्ग तुच्छ सम ताहि विचारा।।
पलटू चाहें हरि भगति ऐसा मता हमार।
संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार।।
(पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ २४ पद ५७)

२. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ १२ पद २६ (१-२)

गार्य कहकर निर्गुण उपासना को अगम ठहराया है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने निर्गुण उपासना को कठिन माना है। यद्यपि पलटूदास भी निर्गुण भक्ति को प्रधानता देते हैं परन्तु व्यक्त ब्रह्म की उपासना की भांति निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते[1] हैं।

इन्होंने भगवान के दसों अवतारों को भी मान्यता दी है तथा व्यक्त पुरुषावतार भगवान के प्रति अपार आदर प्रदर्शित किया है।

सब मे बड़े हैं संत दूसरा नाम है।
तिसरे दस अवतार तिन्हें परनाम है !!
ब्रह्मा बिसुन महेस सकल गवार है।
अरे हाँ पलटू सबके ऊपर संत मुकुट सरदार है !!
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ६१ पद ७)

इनका आराध्य प्रकाश स्वरूप ब्रह्म है —

साजन को हमने देखा है, नयनन भरि-भरि पेखा है।
सेत वरन वाको रूप है सजनी, रंग रूप नहि रेखा है !![2]

\+ \+ \+

तथा—

सेत वरन सरुप वाको, सिथिल सरल सुहावन[3]।

और—

झिलिमिलि झलके नूर तिरकुटी के महल में[4] !!

कबीर की भांति पलटूदास की भक्ति प्रपत्ति पर आधारित है। प्रपत्ति का अर्थ आत्मनिवेदन है। भक्ति क्षेत्र मे इसी को शरणागति कहते हैं। इसके छः अंग कहे जाते हैं—

आनुकूलस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् !
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा।
आत्म निक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागति !!

पलटूदास की भक्ति साधना में ऊपर वर्णित प्रपत्ति के समस्त अंग उपलब्ध हैं। उदाहरण आगे दिए जा रहे हैं :—

---

१. पलटू साहेब की शब्दावली पद संख्या १४२, ३४१, ३६६
२. वही ,, पृष्ठ ५ पद १८
३. वही ,, पृष्ठ ३११ अन्तिम पद
४. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ७६ पद ९३

१. भगवान को अच्छी लगने वाली या अनुकूल बातें :—

इसके अन्तर्गत हृदय की शुद्धता, मन की निष्कपटता इत्यादि आते हैं :—

साहिब को घर गो धनै, दिल में चावै सांच।
पलटू झूठा जरि मर, सांच को नहिं आंच[1] ।।

२. भगवान को अप्रसन्न करने वाली वस्तुओं या कार्यों को न करना :—इसके अन्तर्गत कुसंग माया के बंधन तथा असत्य इत्यादि रखे जा सकते हैं :—

हृदय महं कुटिलता, बोलत बचन रसाल।
पलटू है वेहि काम का, इन्दोरन फल लाल।।[2]

३. भगवान के रक्षा करने में विश्वास :—

ज्यों-ज्यों रूठें जगत सब, मोर होय कल्यान।
पलटू बार न बांकिहै, जो सिर पर भगवान[3] ।।

४. एकान्त में भगवान का स्मरण :—

पलटू सीता राम से लगी रहै यह रट।
तनिक न पलक बिसारिहौं, चित्त परै की पट[4] ।।

५. अपने आप को पूर्णतया भगवान के अधीन कर देना :—

साहिब मोर कुछ एक नाहीं, जो है सो सब कुछ तोर है जी।
मुझको इस बात की नाही खबर, आगे परा मुझे मोर है जी ।।
इस हमरा ममता के कारन, तुम से भये हम चोर हैं जी।
पलटू अब मुझ को चेत परा, तेरा नहीं कहै मन मोर है जी ।।[5]

६. दीनता :—

अब राम कृपा करि कब तकिहैं।
सब विधि चूक परी है हमसे, आपनि जानि सरन रखिहैं ।।
रखिहैं लाज सरन अपने की, गुन अवगुन कछु ना लखिहैं ।।

---

१. पलटू साहब की शब्दावली पृष्ठ ३२४ पद ६५
२. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२५ पद १०५
३. पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ८६ पद ३३
४. पलटू साहब की शब्दावली पृष्ठ ३२५ पद १११
५. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ५२ पद ४६

दीनदयाल नाम है उनके, दीन भये मे नाहिं मक्हिं।
पलट्ट राम विमुख सुख नाही, नर तन चूकि बहुरि भकिहै[1] ॥

भक्ति मे सदाचरण की विशेष महत्ता है । काम, क्रोध, मद तथा लोभ इत्यादि दुराचरण का प्रजनन करते हैं। असगति समस्त दुराचार की जड है। इसीलिए बार-बार उन्होंने सत्सगति की महिमा गाई है तथा कुसगति के त्यागने की चेतावनी दी[2] है। सत्सग मे ही अभय पद की प्राप्ति हो सकती है। इसी के प्रभाव से वैराग्य उत्पन्न होता है। इसी सत्सग के कारण सांप शीतल हो जाता है, मूर्ख भी ज्ञानी बन जाता है तथा फूल के प्रभाव से तिल भी सुवासित हो जाती है और लोहा भी कचन हो जाता है। सत्सग मे तीनों प्रकार के ताप मिट जाते हैं। बिना नाम-स्मरण के मोह दूर नही होता। मोह के बिना गये ससार की वासनाओ से मुक्ति नही मिल सकती। बिना मुक्ति के भगवान के चरणों मे अनुराग नही उत्पन्न हो सकता और बिना अनुराग के मुक्ति का मिलना दुष्कर है। इसीलिए सत्सग की महत्ता अत्यधिक है। इसमे ज्ञान उत्पन्न होता है तथा मन की शुद्धि होती है[3]।

पलटूदास को अपने आराध्यदेव पर पूर्ण विश्वास था। ईश्वर की भक्त वत्सलता तथा उसकी शक्ति में अविश्वास से भक्ति हो ही नहीं सकती। भगवान में इतनी शक्ति है कि वह तृण को ताड़ और ताड को तृण कर सकता है[4]। उसकी छाया मे भक्त निश्चिन्त रहता है। भगवान की शरण मे गये हुए तथा उसकी शक्ति में विश्वास करने वाले का कोई कुछ बिगाड नही सकता। इसीलिए भक्त को भगवान का गुणगान करना चाहिये। नाम-स्मरण से समस्त व्याधिया मिट जाती हैं और अनायास ही चारो फलो की प्राप्ति हो जाती है[5]।

---

१. पलटू साहब की शब्दावली पृष्ठ २५४ पद ७१४

२. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ७५ पद ६८

३. बिना सतसंग ना कथा हरि नाम की, बिना हरि नाम ना मोह भागे।
मोह भागे बिना मुक्ति ना मिलेगी, मुक्ति बिनु नाहिं अनुराग लागे ॥
बिना अनुराग से भक्ति ना मिलेगी, भक्ति बिनु प्रेम उर नाहिं जागे।
प्रेम बिनु नाम ना, नाम बिनु संत ना, पलटू सतसग वरदान मांगे ॥
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ८ पद २१)

४ जिन्हें भरोसा एक बार नहिं बोलता।
जल थल सर्गे न बाव रच्छा के रासता ॥
हरि को सरन की लाज, उबारें कष्ट से।
अरे हां पलटू भारत में मरदून बचा गज घंट से ॥
(पलटू साहेब की बानी भाग दो पृष्ठ ७१ पद ६२)

५. पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ७ पद १७

नाम-स्मरण की बहुत बड़ी महत्ता है। नाम ही लेने से सेतु बांध रामेश्वर का निर्माण हुआ। वानरी सेना पार उतर गई तथा बन्दरों ने ही लंका को जला दिया। मीरा ने जहर का प्याला तक पी लिया और प्रह्लाद भी बच गये। नाम स्मरण के प्रताप से छोटा मनुष्य भी बड़ा हो सकता है। पलटूदास स्वयं इसके उदाहरण हैं। सांसारिक ऐश्वर्य की समस्त सामग्री मिथ्या है। केवल भगवान का नाम ही पवित्र है[1]।

जो मनुष्य नाम रूपी अमृत का पान करता है वह अमर हो जाता है। अज्ञानी पुरुष ही इस अमृत को छोड़कर छाछ पीते हैं। नाम स्मरण के कारण जल के ऊपर पत्थर तैरने लगा। पलटूदास ने स्वयं इसका उदाहरण दिया है। उनका कहना है कि नाम ही के कारण मेरी इतनी प्रतिष्ठा हुई है। मैं नीच जाति में उत्पन्न हूँ तथा मेरे भीतर अमित अवगुण तथा विकार भरे पड़े हैं फिर भी नाम-स्मरण के कारण अपार भेंट लेकर मेरे सम्मुख खड़े रहते हैं। चाहे प्रजा हो या राजा, सब मेरे यहाँ नाक रगड़ते हैं ? चारों वर्णों के लोग मेरा चरणामृत लेते हैं और इस प्रकार बिना सेना के ही चारों ओर मेरा राज्य फैला हुआ है[2]।

इस संसार में भगवान ही का नाम पवित्र है। उसके सामने अन्य वस्तुएं नगण्य हैं। इस संसार की सारी वस्तुएँ यहीं रह जाएगी केवल भगवान का नाम ही साथ जाने वाला है। नाम स्मरण में न तो धन ही व्यय करना पड़ता है और न इसके करने में कोई कठिनाई ही है[3]।

१.　पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ७ पद १८

२.　हाथ जोरि आगे मिलैं लै लै भेंट अमीर।
लै लै भेंट अमीर नाम का तेज बिराजा॥
सब कोउ रगरैं नाक आइ कै परजा राजा॥
सकलदार मैं नहीं नीच फिर जाति हमारी।
गोड़ धोय षट करम बरन पीवैं लै चारी॥
बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरी दुहाई।
जन महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई॥
सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गंभीर।
हाथ जोरि आगे मिलैं लै लै भेंट अमी॥
(पलटूदास की बानी भाग १ पृष्ठ ८ पद १६)

३.　पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ३ पद ७

पलटूदास का मत है कि जप, तप, तीर्थ तथा व्रत करने वाले लोग अज्ञान में हैं क्योंकि बिना नाम-स्मरण किये कोई भी किसी प्रकार इस भवसागर से पार नहीं जा सकता[1]। ऐसा करने के लिए भगवान के नाम का जहाज बनाना पड़ेगा[2]। उन्होंने नाम स्मरण करने वाले मतो को भी बड़ा माना है और वे हर प्रकार से उनकी सेवा करने के लिए तैयार हैं। इस भव रोग से त्राण पाने के लिए अन्य क्रियाएँ जड़ी बूटी सदृश व्यर्थ हैं। अपितु नाम स्मरण ही एक ऐसा स्वर्ण रसायन है जो समस्त सांसारिक व्याधियों को दूर कर देता है[3]।

पलटूदास ने जिस नाम की इतनी महत्ता बताई है वह जिह्वा द्वारा उच्चरित नाम से सर्वथा भिन्न है। वे किसी मंत्र की भाँति बार-बार उसके दुहराने की क्रिया को निरर्थक मानते हैं। उनका कहना है कि राम-नाम का उच्चारण करने से कोई लाभ नहीं है। वेश्या, व्यसनी, चोर तथा साहु सब राम-राम कहते हैं, परन्तु किसी ने इन्हें भवसागर में तैरते हुए नहीं देखा। नाचने, गाने, सध्या-तर्पण करने तथा राम का नाम लेने से कोई लाभ नहीं है केवल मुख से राम कहने से जीव नरक में जाकर पश्चात्ताप करता है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि घर-घर में भगवान् नाम की चर्चा होती है पर किसी को मोक्ष नहीं मिला। मन को बिना एकाग्र किए हुए केवल जीभ से नामोच्चारण करने से कुछ नहीं होता। यह सब पाखण्ड है। बात करने से पेट नहीं भरता। अगर बात करने से सब लोग मोक्ष पा लेते तो कोई भी इस पृथ्वी पर बिना तरे नहीं रहता।

इन्होंने बाह्य साधनों द्वारा भगवान के नाम-स्मरण के स्थान पर अपने शरीर के भीतर ही उसे जपने का आदेश दिया है। यह नाम बिना नाम का है। यह अरूप होने के कारण न तो लिखा जा सकता है और न पढ़ा जा सकता है। इसको संत अपने दिव्य चक्षुओं से ही देखते हैं। निःअक्षर तथा अरूप होने के कारण

---

१. जप तप तीरथ बर्त है जोगौ जोग अचार।
पलटू नाम भजे बिना, कोउ न उतरै पार ॥
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ८४ पद ७)

२. पलटू जप तप के किहे, सरै न एकौ काम।
भव सागर के तरन को सतगुरु नाम जहाज ॥
(पलटू साहेब की भाग ३ पृष्ठ ८४ पद ८)

३. जड़ि बूटी के खोजते गई मुर्खाई खोय।
पलटू पारस नाम का मनै रसायन होय ॥
(पलटू साहेब की बानी भाग ३ पृष्ठ ८४ पद ६)

यह दृष्टिगोचर नहीं होता। वह एक गुप्त डोरी है जिसको साधारण व्यक्ति नहीं जानता। उसका असल रूप निरकार के ऊपर वाला पवन ही है जिसे संत ही देखा करते हैं।[१] जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है। श्वास के साथ निरंतर ब्रह्म का स्मरण ही अजपा जाप है। यह बोलकर नहीं होता। इसमें जीभ की आवश्यकता नहीं पड़ती।[१]

पलटूदास न तो किसी दूसरे की पूजा करते हैं और न उनकी श्रद्धा ही अन्य देवताओं पर है। उन्होंने पूर्णरूप से अपने को भगवान के चरणों में अर्पित कर दिया है। अगर वे हारते हैं तो भगवान की हार है, अगर वे जीतते हैं तो भगवान की जीत। इनकी दीनता की पराकाष्ठा यही है जहाँ वे भूल से भी राम नाम उच्चारण करने वाले के भृत्य की पनही बनने को तैयार हैं:—

राम नाम जेहि उच्चरै तेहि मुख देहुँ कपूर।
पलटू तिन के नफर की, पनहीं का मैं धूर[३]॥

कबीर का कथन है कि—

सपनेहु में बर्राहि के मुख से निकसे राम।
वाके पग की पावरी, मेरे तन को चाम[४]॥

पलटूदास को अपने कर्त्तव्यों द्वारा मोक्ष पाने पर विश्वास नहीं है। अपनी बुराइयों को देखकर उनको विश्वास है कि बिना भगवान की कृपा के इस भव सागर के पार उतरना असम्भव है। एक दीन, अकिंचन तथा परवश की भाँति वे भी भगवान की करुणा का सहारा लेकर आत्म-निवेदन करते हैं:—

१- जो कोइ चाहै नाम तो नाम अनाम है।
लिखन पढ़न में नाहिं निअच्छर काम है॥
रूप कहौं अनरूप पवन अनरेख ते।
अरे हाँ पलटू, गैब दृष्टि से सन्त नाम वह देखते॥
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ६० पद २)

२- नाम डोरि है गुप्त कोऊ नहिं जानता।
निअच्छर निरूप दृष्टि नहिं आवता॥
ररंकार आकार पवन को देखना।
अरे हाँ पलटू, देखत हैं इक सन्त और सब पेखना॥
(पलटू साहेब की बानी भाग २ पृष्ठ ६१ पद ३)

३. पलटूदास की बानी भाग ३ पृष्ठ ८५ पद २३

४. कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १२८

तुमरो पतित पावना जाना, मैं तो पतित आप सो जाना।
नाम तुम्हारो अधम उधारा, सब अधमन को मैं सरदारा।।
नाम तुम्हारो दीन दयाला, इहि जानि मैं लीन्हो माला।[1]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पलटूदास ने कहीं-कहीं भक्ति और हठयोग का कई स्थानों पर मिश्रण कर दिया है। कदाचित् निर्गुण भक्ति में ही ऐसा हुआ है। गगन गुफा में बैठने वाले की भक्ति निर्गुण ब्रह्म के प्रति ही कही जाएगी।

भक्ति में मानव शरीर की आवश्यकता है। उसका मिलना कठिन है। अतः इसको पाकर व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। बिना शरीर के भक्ति नहीं हो सकती इसलिए इसका पूरा सदुपयोग करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है। मानव शरीर प्राप्त कर लेने के पश्चात् बिना गुरु की कृपा के पथ-प्रदर्शन के अभाव में मनुष्य भटका ही करता है। अतः गुरु आवश्यक है। वही भृंगी कीट है जो पापी को भी अपने जैसा बना लेता है[2], वह सिकलीगर है जो पुराने कर्म के दागों को छुड़ाकर चमका देत है[3]। पलटूदास को भगवत्प्राप्ति इसी सद्गुरु की कृपा से हुई थी। इसीलिये वे प्रत्येक स्थान पर गुरु का आभार प्रदर्शन करते हैं।

तुलसीदास की भक्ति आदर्श चातक है। उसी प्रकार पलटूदास ने भी मीन को आदर्श माना है। मछली पानी से निकलने पर व्याकुल हो जाती है और मर जाती है। यहाँ तक कि वह पानी के बिना दूध में रखने पर भी किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकती[4]। जिस प्रकार चकोर, चन्द्रमा तथा चोर दूसरे के धन को अहर्निश ध्यान में रखते हैं उसी प्रकार भक्त को एक क्षण भी अपने आराध्य को नहीं भूलना चाहिये। सर्प मणि बिना जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार भगवान के ध्यान बिना भक्त नहीं रह सकता[5]।

यद्यपि यह जीव माया तथा कर्म बंधनों से युक्त होकर अपने स्वरूप को भूल गया है, परन्तु कभी-कभी वह अपने सत्यस्वरूप की झलक पा लेता है। अत्यधिक दुख तथा सुख में अथवा संसार की नश्वरता देखकर क्षण मात्र के लिए उद्बुद्ध हो जाता है। उसे ज्ञान की झलक मिल जाती है, परन्तु यह मत ज्ञान चिरस्थायी नहीं होता। इसे जागृत अवस्था में बनाए रखने के लिए सत्संग की आवश्यकता है।

१- पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ११६ पद ३३६
२- पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ७ पद १६
३- वही ,, ,, ,, १ पद २
४- पलटू साहेब शब्दावली पृष्ठ ३६ पद १३२
५- वही ,, ,, ४६ पद १६१

संतो ने इस संसार मे इसीलिए शरीर धारण किया है कि सांसारिक जीवों का उद्धार कर दिया जाए। इनको अपने सत्य स्वरूप का ज्ञान करा दिया जाए। माया मे फंसा हुआ यह जीव भगवान का भजन नही कर पाता। अतः इस भवसागर से मोक्ष दिलाने के लिये उनका पथ-प्रदर्शन किया जाय, परन्तु ऐसा करने में संतों का कोई लाभ नही है, परन्तु वे सचमुच धन्यवाद के पात्र हैं जो दूसरे के लिए संसार मे जीते हैं[1]।

साधु मे अपार शक्ति होती है। उसके साथ रहने से एक आध्यात्मिक शक्ति मिलती है जिससे समस्त कलेष दूर हो जाते हैं। जिस प्रकार चन्दन के सम्पर्क मे रहने से सर्प शीतल हो जाता है और उसके समस्त ताप नष्ट हो जाते हैं, पारस के सम्पर्क मात्र से ही लोहा जैसा निकृष्ट धातु भी सोना हो जाता है। फूल के साथ रहने पर तिल मे सुगन्धी आ जाती है और सरदी पाकर सूखा हुआ वृक्ष भी पनप जाता है उसी प्रकार साधु के साथ रहने पर मूर्ख भी ज्ञानी हो जाता है और उसके तीनो ताप मिट जाते हैं।[2]

पलटूदास का कहना है कि जीवन मे एक ही शुभ समय आता है जब साधु से भेंट हो जाती है। जिस संत की कृपा से तीनों ताप मिट जाते हैं तथा मुक्ति मिल जाती है उसका दर्शन होना आनन्द का विषय है इसलिए जब संत द्वार पर आ जाय तो अपना भाग्योदय समझकर उसकी सेवा करके अपना जीवन सफल बनाना चाहिए[3]। सांसारिक जीव के लिए संतो की महिमा अनन्त है। एक प्रकार से वे हरि के अवतार हैं। इनका शत्रु भगवान का शत्रु है।[4] भगवान का मिलना सरल है, परन्तु सच्चे साधु का मिलना कठिन है। बिना संत की सहायता से भगवान नही

१- पलटू साहिब की बानी भाग १ पृष्ठ २ पद ४

२- मलया के परसंग से सीतल होवत साँप।
सीतल होवत साँप ताप को सुरत बुझाई।
संगत के परभाव सीतलता वा में आई।
मूरख ज्ञानी होय जाय ज्ञानी में बैठे।
फूल अलग का अलग बासना तिल मे पैठे।
कंचन लोहा होय जहाँ पारस छुइ जाई।
पनपे उकठा काठ जहाँ उन सरदी पाई।
पलटू संगत किये से मिटते तीनिउ ताप।
मलया के परसंग से सीतल होवत साँप।
(पलटू साहिब की बानी भाग १ पृष्ठ ३३ पद ८०)

३- पलटू साहिब की शब्दावली पृष्ठ १६७ पद ५४४

४- पलटू साहिब की बानी भाग १ पृष्ठ १३ पद ३३

मिल सकता[1]।

सत्संग से ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान का सम्बन्ध संसार की क्षणभंगुरता तथा नश्वरता इत्यादि से है। अज्ञानी पुरुष इसी संसार को सब कुछ मानता है। और सांसारिक विषय वासनाओं द्वारा प्राप्त आनन्द में ही लिपटा रहता है और अपने सिद्ध स्वरूप को विस्मृत कर देता है। बार-बार इस संसार में जन्म लेकर वह नाना प्रकार के दुःखों को झेलता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है। सत्संग में इन्हीं तथ्यों का ज्ञान होता है कि हमें शरीर इसलिए नहीं मिला कि माया के फेर में पड़कर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण किया जाय, अपितु इसका मुख्य उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार करना है। इस प्रकार अपने स्वरूप को पहचानने की जिज्ञासा सांसारिक वस्तुओं तथा प्रलोभनों से विरल कर देती है और फिर तो लौकिक आकर्षण व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

सत्संग के द्वारा ही मन में दृढ़ता आती है तथा आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रबल उत्कंठा उत्पन्न होती है। ऐसी मनोदशा की पहिचान यह है कि जिज्ञासु की आभ्यान्तरिक शक्ति उसे सर्वदा आत्म-दर्शन के लिए उद्विग्न बनाए रहती है और उसकी दशा उस आदमी की भाँति हो जाती है जो आग लगे हुए घर से निकलने के लिए द्वार खोजता फिरता है।

महर्षि नारद प्रणीत भक्ति सूत्र में वर्णित भक्ति के ग्यारह विधानों में अधिकांश पलटूदास की भक्ति साधना में पाई जाती हैं। इसके उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :—

(१) गुण माहत्म्यासक्ति :—

बिनु हरि भजन मुक्ति नहिं होय, करे कोटि उपाय।
गंगा कोटि महर्षि हो कचन देय दान ॥
निशि दस बरना पूजे नही नाम समाज।
चारि धाम फिरि आये हो परसं पुरी सात।
राम नाम बिनु नरके होय कौनिउ जात ॥
गनिका रही पतुरिया हो रैदास चमार ॥
राम नाम सुमि गायनि हो गये निस्तार।
कोटि पाप होय कीन्हे हो सुमिरे हरि नाम ॥

१- राम का मिलना सहज है सत का मिलना दूरि।
पलटू सत के मिले बिनु राम से परै न पूरि ॥
(पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृष्ठ ६० पद ७३)

पलटूदास तरे सहजे बिनु कौड़ी दाम ॥
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १६१ पद ५३१)

(२) रूपासक्ति

सजन रंग राती री माई भाई सजन रंग राती ।
देखत के बाला भोला बोलत मधुरी बैना ॥
मन हरि लेत करि हेत सुदेखत श्याम सलोना लोना ।
करत नेम टोना विपिन बिहारी बनवारी गिरधारी ॥
रंग न रूप रेखा नैन बिनु देखा, कठिन कठोर पिया मोर बड़ चोर ।
गगन गुंफा सोहै सुर नर भुवन मोहै, गुन गावैं पलटूदासा सहि उपहाँसा प्रभु पासा[1]॥

(३) पूजासक्ति

हिन्दू पूजें देवहरा मुसलमान महजीह ।
पलटू पूजें बोलता, जो खावे दीद वरदीद[2] ॥

(४) स्मरणसक्ति

जेहि सुमिरे गनिका तरी ता को सुमिरु गंवार !
ता को सुमिरु, गवार भला अपना जो चाहो !!
झूठा है संसार रैन सुपने सा जानो !
मात पिता सुत बन्धु झूठ इनको सब जानो !
सत्संगति हरि भजन सत्त दुइ इनको मानो !
और देव सब वृथा आस इन की ना कीजै !!
सब देवन के देव हरी अन्तर भजि लीजै ।
पलटू हरि के भजन बिनु कोउ न उतरै पार !
जेहि सुमिरै गनिका तरी ता को सुमिरु गवार[3] !!

(५) दास्यासक्ति

राम गरीब नेवाज ध्यान हासन पर कीजै !
अबकी बार बकसो मेरो सब दुरमति ही लीजै ?
मैं हो पतित पतित तुम पावन भजन बिना तन कीजै ॥
पलटूदास सबन की लज्जा भुज से भुजा गहीजे ।
(पलटू साहब की शब्दावली पृष्ठ ६६ पद २१२)

१- पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ २४६ पद ६६६ ।
२- ,, ,, ,, ३२६ पद १२० ।
३- पलटू साहेब की बानी भाग १ पृष्ठ ५६ पद १३४

(६) सख्यासक्ति

इसका उदाहरण नहीं मिलता।

(७) कान्तासक्ति

साहेब से भई यारी सजनी, ब्याह भयो बिनु मगनी।।
लागि गई तब लाज कहाँ की, कल न परै दिन रजनी।
ना नैहर ना सासुर की मैं, सहज लगी कुछ लगनी।।
जब हम रहे पीया तब नाही, बुझहुँ बात बैरगनी।
ज्ञान मे सोवों, मोह मे जागो, नहि सावो नहि जगनी।।
नाहि भूख नहि, खाय बिनु नहि संग्रह नहि त्यगनी।
पलटूदास चलौ ना बैठो, नही भजन नही भजनी।।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ५ पद १५)

(८) तन्मयतासक्ति

साहब मेरो सब कुछ तेरा है, अब नाही क्छु मेरा है।
यहि हमता ममता के कारन चौरासी किया फेरा है?
मृग जल निरखि बुझै नहिं तृषा मूर्ख भ्रटका बेरा है!
यह ससार रैन का स्वपना रूपामर्म सिपि केरा है?
पलटूदास समरपन किन्हा तन मन धन ग्रो डेरा है।।
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १ पद ३)

(९) परमविरहासक्ति

लागी गासी प्रेम की छाती कर कानी हो!
बिन देखे चित चैन नही रहती ग्रकुलानी हो?
बिछुरत प्राण गमाइया जैसे मीन जौ पानी हो?
घर घर लोग जवाब करैं कुछ लाभ न हानी हो!
पलटूदास कोउ कुछहुँ कहै अपने मनमानी हो!
(पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ११६ पद ३४७)

(१०) वात्सल्यासक्ति

माता बालक कहै राखती प्रान है,
फनि मनि धरे उतारि ग्रोही पर ध्यान है।
माली रच्छा करै सीचता पेड़ ज्यो।
अरे हाँ पलटू भक्त संग भगवान गऊ ग्रो बच्छ त्यौं।।
(पलटू साहिब की बानी भाग २ पृष्ठ ७८ पद १०८)

(११) आत्मनिवेदनासक्ति

> साम्ती राम गरीब नेवाजा, तीनि लोक सबके सिरताजा।
> तुम्हरो पतित पावना बाना, मैं तो पतित आप सो जाना।
> नाम तुम्हारो अधम उधारा, सब अधमन को मैं सरदारा॥
> नाम तुम्हारो दीनदयाला, इहै जानि मैं लिन्हों माला।
> सुनेउ अनाथन के तुम नाथा, यह सब आय पसारेउ हाथा॥
> नाम तुम्हारो अन्तरजामी, पलटूदास कया कहै अपानी।
>
> (पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ११६ पद ३३६)

पलटूदास की भक्ति साधना नारदी भक्ति से अधिक प्रभावित है। उस पर हृदय की प्रेमात्मिका वृत्ति की गहरी छाप है। गुरु गोविन्द साहब की कृपा से उन्होंने चारो वर्णों के झमेले को मेटकर यह भक्ति चलाई थी[१]। उनकी भक्ति साधना सूफी के कारण और भी मधुर हो गई है। उनका रामायनवाद भी मान्य[२] है। नवधा भक्ति तथा प्रपत्ति का भी समावेश है। योग साधना का प्रभाव भी निर्गुण भक्ति पर पड़ा है। श्रीमद्भागवत की निर्गुण भक्ति से कम अन्तर है।

पलटूदास का ब्रह्म, जो दसवें द्वारा का निवासी है, उपासना के क्षेत्र में साकार एवं रूपधारण कर लिया है। पलटूदास भगवान के सहस्र नाम भजने का उपदेश देते हैं जो विष्णु सहस्रनाम से अधिक भिन्न नहीं हैं[३]। ये जाति-पाँति से उठकर भक्ति को ही प्राथमिकता देते हैं। इसमें सदाचरण, संग्रह त्याग तथा मनोमारण इत्यादि को प्रधानता दी गई है। कनक और कामिनी से अलग रखकर गुरु की सेवा करते हुए भक्ति करने का उपदेश इन्होंने सर्वत्र दिया है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पलटूदास की भक्ति का प्राण प्रपत्ति है। अपने पापों की गुरुता तथा भगवान के नेवाज होने पर इन्हें पूर्ण विश्वास है क्योंकि गरीब, गणिका तथा अजामिल के उदाहरण इनके सामने मौजूद हैं।

---

१. चारि वरन को मेटि के भक्ति चलाया मूल।
   गुरु गोविन्द के बाग में पलटू फूला फूल॥
   (पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ ३२६ पद ११३)

२. पलटू साहेब की शब्दावली पृष्ठ १८६ पद ५२०

३. वही ,, ,, ,, १४६ पद ४२३

चतुर्थ अध्याय

सन्त पलटूदास की शिष्य-परम्परा तथा पलटू पन्थ

(अ) शिष्य-परम्परा ।
(आ) पलटू पन्थ ।

अनुसार यह कन्या परसाद साहब को दे दी गई। उन्होंने इस कन्या का विवाह भगवानदास से करा दिया। इस कन्या का नाम डालादासी था और इसी के गर्भ से किसुनदास, बिसुनदास और गोपालदास पैदा हुए।

लछमणदास एक योग्य व्यक्ति तथा सिद्ध संत थे। अतः डालादासी को यह शंका हुई कि परसाद साहब के पश्चात् लछमणदास को ही गद्दी मिलेगी और उसके तीनों पुत्र असहाय होकर ही रहेंगे या सम्भवतः निष्कासित कर दिये जाएँगे। वह रात-दिन चिन्तित रहा करती थी और अपने ही पुत्रों में से किसी एक को मठाधीश बनाने का उपाय सोचा करती थी। प्रयत्न में विफल होने के कारण शोकाकुल होकर वह एक दिन प्राण देने के लिए कुएं में कूद गई। परसाद साहब को जब इस बात का पता चला तब उन्होंने इसके ही पुत्र किसुनदास को अयोध्या मठ की गद्दी देने की घोषणा कर दी। फलस्वरूप लक्ष्मणदास कुपित होकर वहाँ से चले गए और पट्टल घाट जिला बस्ती में अपना मठ स्थापित करके वहीं रहने लगे। इस प्रकार अयोध्या से उनका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया।

ऐसा कहा जाता है कि एक बार गोविन्द साहब ने डालादासी से उसके तीनों पुत्रों में से एक को अपने लिए मांगा। वह अपने पुत्रों में से किसी को अपने से दूर रखना या किसी दूसरे को देना नहीं चाहती थी। इसलिए वह अपने पुत्रों के साथ अयोध्या से मोकलपुर चली गई और उन्हें वहीं छिपा दिया। गोविन्द साहब को पलटू परसाद के द्वारा समस्त वस्तुस्थिति का ज्ञान हो गया। उन्होंने कहा कि डालादासी के पुत्रों में से जो मेरा होगा वह स्वयं मेरे पास चला आएगा। उनकी बात सत्य निकली। किसुनदास की मृत्यु गोविन्द साहब के निकट लखेसर में हुई। गोपालदास जगन्नाथपुरी चले गए और लापता हो गए। किसुनदास अयोध्या में ही रहे। ये प्रतिष्ठित तथा सिद्ध संत नहीं थे।

रामसेवकदास

किसुनदास के सात लड़के और तीन पुत्रियाँ थीं। पुत्रों के नाम जानकी, प्रागदास, रामस्वरूप, राम सकल, रामसेवक, राम दौहल तथा रामरूप थे। हरिबाई, हरदेई तथा महादेई तीन लड़कियाँ थी। किसुनदास की मृत्यु के पश्चात् किसुनदास के प्रथम पुत्र रामसेवकदास गद्दी पर बैठे। इनके विषय में विशेष ज्ञात नहीं है। कहा जाता है कि इनकी जमात बड़ी लम्बी थी और ये स्वयं सोलह कहारों की पालकी पर चढ़कर बड़े ठाट-बाट से अपने सेवकों के घर जाया करते थे। अपने भाइयों तथा बहनों का पूरा व्यय यही वहन करते थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि अपनी बहनों के विवाह में इन्होंने बहुत अधिक धन व्यय किया था।

ऐसा कहा जाता है कि रामसेवकदास एक बार भ्रमण करने के लिए

गोरखपुर गए। इनकी सुन्दरता देखकर एक सुनार की स्त्री इन पर मुग्ध हो गई। वह धनी थी, इसलिए धन देकर ही वह इनको अपने वश मे करना चाहती थी। इसने बाबा को एक गाय दी जो मोकलपुर भिजवा दी गई। थोड़े दिनों पश्चात् सुनारिन ने रामसेवकदास से प्रणय निवेदन किया, परन्तु झिड़की तथा नकारात्मक उत्तर पाने के पश्चात् वह अत्यन्त क्रोधित हुई। उसने थाने मे यह रिपोर्ट लिखवा दी कि उसकी गाय चोरी चली गई है और मोकलपुर से उसे बरामद कराकर उसने रामसेवकदास पर मुकदमा चलाया, परन्तु दैवयोग से वह बच गए। इनकी मृत्यु अयोध्या मे ही हुई और वही पर इनकी समाधि बनी हुई है। अनुमानत: ये चालीस वर्षों तक मठाधीश बने रहे।

रामप्रागदास

रामसेवकदास की मृत्यु के उपरान्त इनके अनुज रामप्रागदास गद्दी पर बैठे। ये एक सिद्ध योगी थे और इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। ऐसा कहा जाता है कि इन्होने अपने विवाह की बात को सुनकर ही घर त्याग दिया था और संन्यास ग्रहण कर लिया था। साधारण जनता इन्हे परमहस कहा करती थी और ये नगे घूमा करते थे। बाल्यकाल से ही यौगिक क्रियाओं में इनकी विशेष रुचि थी। एक बार रात के समय, जब ये समाधि मे थे, मजदूरो ने पुआल का ढेर अनजान मे इनके ऊपर लगा दिया। कहा जाता है कि वे ६ महीने तक उसी पुआल के नीचे उसी दशा मे पड़े रहे। पुआल समाप्त होने पर लोगों ने उन्हें देखा और उनके जीवित रहने पर आश्चर्य किया। पूछने पर उन्होने उत्तर दिया कि इसी पुआल के नीचे उन्हें भोजन तथा दूध मिल जाया करता था।

इनके चमत्कार की अन्य कथाएँ भी प्रसिद्ध हैं। एक बार ये रामसेवकदास के साथ नौका मे बैठकर प्रयाग स्नान हेतु जा रहे थे। रामप्रागदास अकस्मात् नदी मे कूद गए। बहुत खोजा गया, परन्तु इनका पता नही लगा। जब रामसेवकदास सगम पर पहुँचे तो वही पर उनसे भेंट हो गई। एक बार रामप्रागदास अयोध्या के मेले मे जाने के लिए उत्सुक थे, परन्तु भाइयो ने किसी कारणवश इन्हे नहीं जाने दिया और एक कोठरी मे बन्द कर दिया, परन्तु ये अपने भाइयो के मेले मे पहुँचने से पहले वहाँ उपस्थित थे। महंथ श्री जगन्नाथदास ने बाल्यावस्था मे एक तुलसी का पौदा लगाया था, परन्तु परमहस जी ने किसी कारणवश इसे उखाड़ दिया। उनके रोने पर तुलसी का सूखा पौदा हरा-भरा हो गया। इनको भोजन से विशेष रुचि नही थी। अगर कोई अपने हाथ से खिला देता था तब खा लेते थे अन्यथा थाली पटक देते थे। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। इनकी समाधि मोकलपुर में बनी हुई है।

त्रिवेणीदास

रामप्रपादास परमहंस के दो शिष्य थे–त्रिवेणीदास तथा जगन्नाथदास। आज से लगभग ४६ वर्ष पूर्व ५५ वर्ष की उम्र में इनकी मृत्यु हुई थी। इस प्रकार इनका जन्म लगभग सम्वत् १९१६ और मृत्यु सम्वत् १९७१ में आँकी जा सकती है। ये जाति के ब्राह्मण थे और गोंडा जिला के महादेवा ग्राम के निवासी थे। लड़कपन मे ही वैराग्य लेकर मोकलपुर चले आए और परमहंस जी की सेवा करने लगे। इनकी वाणी सिद्ध थी और जिसको जो कुछ कह देते थे होकर रहता था। इन्होंने अयोध्या के मठ को बनवाया था।

त्रिवेणीदास की मृत्यु के पश्चात् श्री जगन्नाथदास गद्दी पर विराजमान हुए। इनका जन्म एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुल में सम्वत् १९५५ के माघ शुक्ल पक्ष मे मोकलपुर जिला फैजाबाद मे हुआ था। इनके पिता का नाम स्वामी रामशरणदास तथा माता का नाम दरिआई था। यह विष्णुदास की पुत्री थीं। कहा जाता है कि रामशरणदास की छः सन्तानें मर चुकी थी। अन्त में सातवाँ पुत्र हुआ। मृत्यु के डर से पिता ने नवजात शिशु को परमहंस जी के चरणों पर चढ़ा दिया। श्री जगन्नाथदास ने विवाह नही किया, बाल्यकाल से ही इनमें सन्त के लक्षण प्रकट हो रहे थे। त्रिवेणीदास को मृत्यु के पश्चात् सम्वत् १९७१ मे इनको गद्दी मिली और बीस वर्ष की आयु मे ही ये साधना रत हो गए। इनके चमत्कार की कई घटनाएँ प्रसिद्ध हैं जो स्थानाभाव के कारण नही दी जा सकती हैं।

वर्तमान महंथ के पहले मोकलपुर की खेती का कार्य अस्त-व्यस्त रूप में ही चलता था। उससे कोई विशेष आय नही थी। इन्होंने अपनी देख-रेख में उसे आमदनी का साधन बना लिया। इन्होंने अगणित मनुष्यों से सम्पर्क स्थापित किया तथा अपने प्रभाव मे लाकर उन्हें शिष्य बनाया, जिसके कारण मठ की आय बढ़ गई। बाबाजी एक साहित्यिक व्यक्ति थे। इन्हीं के समय पलटूदास की रचनाओं का एक सग्रह (पलटू साहब को शब्दावली) के नाम से सम्वत् २००७ वि० मे प्रकाशित कराया गया।

जगन्नाथदास की मृत्यु के पश्चात् सम्वत् १९२२ मे उनके शिष्य राम सुमेरदास गद्दी पर बैठे और आज वर्तमान हैं।

रचनाएँ

अयोध्या मठ की शिष्य-परम्परा से पलटू परसाद के अतिरिक्त कोई कवि नहीं हुआ और न किसी की बानी ही उपलब्ध है। पलटू परसाद की रचनाएँ इधर-उधर अन्य ग्रंथों में संगृहीत हैं। न तो वे एक स्थान पर हैं और न अब तक प्रकाशित ही हैं। इनकी रचनाएँ कुण्डलिया, अरिल्ल, रेखता, कवित्त तथा साखियों में हैं।

इनकी रचनाओं मे कोई नवीनता नही है। इन्होंने पलटूदास के भावों को ही ग्रहण किया है तथा उन्ही से प्रभावित जान पडते हैं। साधना की प्रथम अवस्था में इन्होने पाँच तथा पच्चीस, लोभ तथा मोह इत्यादि की फौज को नष्ट करने तथा वेद से अलग होने की चर्चा की है। आत्म-दर्शन के लिए इनका त्याग करना इनके अनुसार आवश्यक है।[1] इस साधना मे मन को एकाग्र करना है, क्योंकि अगर यह लेशमात्र भी विचलित हुआ तो साधना सफल नही होगी और साधक नरक का भागी होगा—

आदि औ अन्त मन एक रस रहै। डगै जो तनिक तो नरक जाही ॥
(पलटू परसाद की अप्रकाशित रचना से)

इन्होने पाच तत्वों मे से पवन को मुख्य माना है, परन्तु वह ब्रह्म से भिन्न है। प्राण तथा अपान वायु का एकीकरण करके दसवें द्वार पर पहुँचा देने के पश्चात् शून्य भवन में सत्य स्वरूप का दर्शन होता है। वही पर अनहद शब्द श्रवण करके मन स्थिर हो जाता है और सोहं शब्द सुनाई देने लगता है।[2] वह शब्द रूप ब्रह्म श्वेत वर्ण का है तथा स्वयं प्रकाशित है। वह आठवें महल पर रहता है[3], जहाँ पर बिना यन्त्र के ही बाजा बजता है तथा बिना मुरली के ही ध्वनि होती है। यह ब्रह्म स्थूल नेत्रों की सहायता के बिना ही देखा जाता है। उस ब्रह्म के सिर पर प्रकाश

---

१. पाच पच्चीस को घेरिए जेर मे, तीन मवास को ठौर मारा।
लोभ और मोह की फौज को मारिकै, द्वादस इन्द्रिय तुरत जारा।
अरध और उरध के बीच में कला के, लोक और बेद से भए न्यारा।
दास प्रसाद यह खेल को खेलि कै, आपु मे आप मिल गया सारा ॥
(पलटू परसाद की अप्रकाशित रचना से)

२. पांच तत्व में एक पवन है तीसहुँ से यह न्यारा है।
वायु अपान सिमटि भए पवना, पहुँचा दसवें द्वारा है।
सत्य स्वरूप जहँ शून्य भवन है, शून्य अनहद मनहारा है।
कहै परसाद सुनो भाई पलटू, सोहं शब्द बिचारा है ॥
(पलटू परसाद की अप्रकाशित रचना से)

३. सात जो महल है बाद अठयें पर सेत है बरन तहँ जोति छाजे।
सत्य स्वरूप जहँ रूप को देखि के दास परसाद एहि भाँति गाजे ॥
(पलटू परसाद की अप्रकाशित रचना से)

का छत्र शोभित है। इस रूप को देखकर साधक मुग्ध हो जाता[1] है। यह ब्रह्म चक्रों का भेदन करके पवन को उल्टा चढाकर तथा इडा और पिंगला को त्यागकर बंक नाल से प्रवाहित कर सुरति को शून्य में चढाने से प्राप्त होता है। चन्द्रमा तथा सूर्य को छोड़कर आगे बढ़ने से उस जगमग ज्योतिस्वरूप ब्रह्म के दर्शन होते हैं, जो निरंतर निर्मल है और सोहं रूप में वर्तमान[2] है।

"मूल को बांधि के चक्र को फोरि के, योग विहंगम राह पाई।"
कहकर पलटू परसाद ने विहंगम योग को प्रधान मार्ग माना है। इनके अनुसार राम नाम के समान नाम नहीं है। रूप के ध्यान से बढ़कर कोई ध्यान नहीं है। विष्णु धाम से बढ़कर कोई धाम नहीं है और कृष्ण से बड़ा कोई नाम नहीं[3] है। इससे ज्ञात होता है कि इन पर वैष्णव-धर्म का प्रभाव पड़ा है।

पलटू परसाद ने भी पलटूदास की भांति विविध वेषधारी पाखण्डियों की निन्दा की है। पूजा, नेम, आचार इत्यादि वाह्याडम्बरों को अनर्गल माना है, क्योंकि इनके द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव नहीं है। काम, क्रोध पर विजय तथा दीनता

---

१. जंत्र बिना जत्रो जहँ बाजै, बिन मुरली तहँ टेर दिया है।
सत्य स्वरूप वहाँ जे बिराजै, नयन बिना तब देख लियो है।
जगमग जोति छत्र सिर सोभित, कहे परसाद सो मोहि लिया है।
सतगुरु कोर जेहि ओर निहारत, आपु समान तुरंत कियो है ॥
(पलटू परसाद की अप्रकाशित रचना से)

२. उलटि पवन को फोरि चक्र को अनहद तूर बजाएगा।
इडा पींगला सुखमना नाड़ी, बंक के नाल चढ़ाएगा।
अष्ट कमल दल उलटि कमल दल, शुन्य में सुरति चलाएगा।
छोड़े चांद सूर्य को छाड़ै आगे को मन लाएगा।
जगमग जोति निरंतर निरमल सोहं शब्द सुनाएगा।
दास परसाद यह खेल खेलि के, बहुरि न एहि जग आएगा ॥
(पलटू परसाद की अप्रकाशित रचना)

३. जीवन मुक्ति सम मुक्ति नहीं विष्णु धाम अस धाम।
सत इष्ट सम इष्ट नहीं कृष्ण नाम अस नाम।
तीरथ सतगुरु चरन, बिस्वास व्रत नेम समान।
विवेक समान धरम नहिं, साधन प्रान अपान ॥
कहै पलटू परसाद हो, शब्द समान नहिं बान ॥
(पलटू प्रसाद की अप्रकाशित रचना से)

स्वीकार किए बिना मौनी या ऊर्ध्वमुखी होने से कोई लाभ नहीं है। भगवान का नाम स्मरण करना ही सब कुछ[1] है।

पलटू परसाद की रचनाओं में गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में भी कुछ पद मिलते हैं। ऐसा कहा जाता है कि पलटू परसाद ने अपने भाई पलटूदास की मृत्यु के समय अपनी कुछ कठिनाइयों को उनके सामने रखा था और उनसे त्राण पाने का उपाय पूछा था। उन्होंने कहा कि "ऐ गुरू ! मैं आपकी कहाँ तक स्तुति करूँ। आप स्वय अन्तर्यामी हैं। आपकी प्रशंसा चौदहों भुवन मे व्याप्त है। आपकी माया बलवती है। कृपया ऐसी राय दीजिए कि मैं उसके पाश मे न बंध सकूँ"।[2] यह सुनकर पलटूदास प्रसन्न हुए और प्रेमपूर्वक परसाद साहब को देखने लगे। फलस्वरूप उनकी आन्तरिक व्यथा दूर हो गई। पलटूदास ने यह वरदान दिया कि आज से तुम्हें माया नहीं सताएगी।[3] माया से त्राण पाने का वरदान पाकर इन्होंने अपनी साधना

---

१. पूजा नेम अचार किए बहु स्वांग यह भांड को वेष बनाए।
बीन अधीन भए हैं काहू से, काम क्रोध की छाल लगाए।
उरधमुखी मौन है साधे, पेट के कारन मूँड़ मुड़ाए।
कहे परसाद राम जे भूले, मांगन को चहुँ फेर है धाए॥
(पलटू परसाद की अप्रकाशित रचना से)

२. सुनिए सतगुरु नाथ जो कहे पलटू परसाद।
कहे पलटू परसाद स्तुति कहवा, लगि कहिए।
चौदह भुवन भरपूर, सुयश कहवां लगि भरिए।
घट घट बसों निरंतर हो तुम अन्तरयामी।
चारि खानि में रमा सदा अब रहते स्वामी।
तुम्हरी माया बलवानि सदा परपच मचावें।
यही देव वरदान कभी यह निकट न आवें।
शिशु बुधि प्रबल अविद्या तुम गति अगम अगाध॥
(पलटू परसाद की अप्रकाशित रचना से)

३. हँसि बोले मुसुकाय प्रभु, हमरी ओर निहार।
हमरी ओर निहारि घोरि नख सिख लगि ताका।
व्यथा भये सब दूर फूटकर वह ज्यों पाका।
परदछिना तब किया रूप भीतर पहिचाने।
बोले बचन रसाल कहा अब सुनिए ताका।
हमहिं लियो पहिचान बनी अब हमरी बाता।
माया भूलि न ताकिहैं पलटू बचन अपार।
हँसि बोल मुसकाय प्रभु हमरि ओरि निहार।
(पलटू परसाद की अप्रकाशित रचना से)

हुलासदास द्वारा रचित दोहे, चौपाई, अरिल्ल, कहरा, साखी तथा पहाड़ा संग्रहीत हैं।

हुलासदास ने भी पलटूदास का अनुकरण किया है। इन्होंने सत्गुरु की प्रशंसा अत्यधिक की है।[१] वह सर्वशक्तिमान है। वह अखण्ड[२] तथा अविनाशी[३] है। यहाँ तक कि वही सृजनहार है।[४] वह घट-घट में विद्यमान है तथा तीनों लोकों का स्वामी है।[५]

इन्होंने इस मानव शरीर के सम्बन्ध में भी लिखा है और इस नरदेही के साथ-साथ संसार को भी क्षणभंगुर तथा नश्वर कहा है। इनके अनुसार इस शरीर को पोसने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि इसमें मलमूत्र तथा नाना प्रकार के विकार[६] भरे हैं। अतः अगर इस मानव-शरीर से कोई लाभ है तो केवल हरि-स्मरण का ही[७] है।

यही एक साधन है जिसके द्वारा अलख मुरारी का दर्शन किया जा सकता है[८]। यह अविनाशी है तथा इसी शरीर के भीतर ही तीनों लोक, नवो खण्ड,

---

१. फिर नमस्कार मैं करत हूँ, तुम तीन लोक के नाथ।
जो चाहो सोई करो, सब है तुम्हरे हाथ।।
(ब्रह्म विलास पृष्ठ २, पद १३)

२. फिर नमस्कार मैं करत हूँ, सत्गुरु तुम हो अखण्ड।
तीन लोक चौदह भुवन, पूरि रहेव ब्रह्मण्ड।
(ब्रह्म विलास पृष्ठ ३, पद १८)

३. फिर नमस्कार मैं करत हूँ, सत्गुरु तुम अविनास।
दीन जानि अब तारिये, नहिं होय तुम्हारी हास।।
(ब्रह्म विलास पृष्ठ ३, पद १७)

४. गुरु तेरी गति अगम है, कोऊ न पावे पार।
चरन हुलास की राखिये, तुम हो सिरजनहार।।
(ब्रह्म विलास पृष्ठ ३, पद ३०)

५. फिर नमस्कार मैं करत हों, तुम तीनि लोक के नाथ।

६. ब्रह्म विलास पृष्ठ १०

७. ब्रह्म विलास पृष्ठ ११

८. काया में गुरु ज्ञान सम्हारी।
सब में भेंटब अलख मुरारी।।
(ब्रह्म विलास पृष्ठ १०)

इक्कीस ब्रह्माण्ड, सातों समुद्र, अगणित नदियाँ, चाँद, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश सब[1] हैं। इस शरीर में अमृत है जो सांपिन को मारकर प्राप्त किया जा सकता है[2]। संक्षेप में इन्होंने पलटूदास की भाँति ही इस शरीर में सबका अस्तित्व माना है और 'जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है' का प्रतिपादन किया है।

पलटू परसाद की भाँति हुलासदास ने भी विहंगम योग को अपना मार्ग माना है। उनके अनुसार इसी मार्ग से उस शब्द-ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है, जो इस शरीर के बाहर भी है और भीतर भी। इसके लिए काम-क्रोध इत्यादि को मारकर कायाशोधन आवश्यक है। यही साधना का प्रथम सोपान है।[3] यह साधना हठयोग के सरल ढंग से आरम्भ होती है, पद्मासन पर बैठकर सुरति की डोरी लगाकर, आकाश में सोहं शब्द श्रवण किया जा सकता है।

पलटूदास ने ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य को प्रधान माना है, परन्तु हुलासदास ने प्रेम, ज्ञान, भक्ति तथा विवेक को साधना का सहायक माना है[4]। आराध्य के प्रति प्रेम तो आवश्यक है, परन्तु साथ ही साथ सत तथा असत का विवेक भी कम आवश्यक नहीं है। विवेक के आ जाने पर साधक कुकर्मों को त्याग देता है। उसके विचार निर्मल हो जाते हैं, और पंच विकार स्वतः समूल नष्ट हो जाते हैं।[5]

---

१. ब्रह्म विलास पृष्ठ १०-११

२ सांपिनि मारि बूंद जो पीवै।
जीअत मरैजो सिर को देवै॥
(ब्रह्म विलास पृष्ठ ११)

३. काम क्रोध को मारि के, लालच दीजै जारि।
हुलास काया अमल करे, तब पावेगा पारि॥
(ब्रह्म विलास पृष्ठ ६१)

४. तरकस बांधे तीन ठो, पलटू हरि के लाग।
इन तीनहुँ को नाम है, भक्ति ज्ञान, वैराग॥
(पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृष्ठ ६१, पद ८६)

५. जेहि के नहीं ये चारि सोई कंगाल है।
माया मोह में अर्क बजावते गाल हैं।
भक्ति प्रेम ज्ञान विवेक यही हमारे लाम है।
हरि हाँ हुलास ये हमारे संग जिन मारा काल है।
(ब्रह्म विलास पृष्ठ ४८)

३. जवगढ़ मठ (बहराइच)

सामान्य परिचय

पलटू परसाद के एक शिष्य बहोरादास ने जवगढ़ जिला बहराइच में एक मठ स्थापित किया। इनका जन्म-स्थान भी वहीं था और वे जाति के ब्राह्मण थे। लगभग २५ वर्ष महंथ रहने के पश्चात् उनके शिष्य मुन्नूदास, जो इसी जिले और इसी जाति के थे, गद्दी पर बैठे और अनुमानतः २० वर्ष तक रहे। उनके शिष्य रामसुन्दर दास का जन्म-स्थान भी जवगढ था और वे जाति के ब्राह्मण थे। उनकी मृत्यु के उपरान्त ज्वालाप्रसाद महंथ बने जो आज तक वर्तमान हैं।

बहोरादास ने एक मेला बैसाख सुदी १५ को लगाया था, परन्तु अज्ञात कारण से आजकल यह बन्द हो गया है।

इस परम्परा में न तो किसी की बानियाँ उपलब्ध हैं और न किसी के सिद्ध संत होने का पता ही लगता है।

४. जलालपुर मठ (फैज़ाबाद)

सामान्य परिचय

पलटू परसाद के शिष्य रामरूपदास ने जलालपुर में अपनी गद्दी स्थापित की और पलटू दास के जन्म-स्थान पर ही एक मठ बनवाया। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनके शिष्य तथा उत्तराधिकारी लक्ष्मीदास सरनामगंज जिला बस्ती के एक ब्राह्मण थे और राम प्रागदास के शिष्य थे। ये लगभग १५ वर्ष तक महंथ बने रहे। इनके विषय में विशेष ज्ञात नहीं है।

लक्ष्मीदास की मृत्यु के उपरान्त महादेव दास महंथ बने। ये नानपारा जिला बहराइच के ब्राह्मण थे और जगन्नाथदास के शिष्य थे। गद्दी पाने के सात वर्ष उपरान्त इनकी मृत्यु हुई।

वर्तमान महंथ संतोषदास अयोध्या के महंथ जगन्नाथदास के शिष्य हैं। ये बैरमपुर जिला फैज़ाबाद के रहने वाले एक ब्राह्मण हैं।

यहाँ पर भी कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है।

५. पंडूलघाट मठ (वस्ती)

सामान्य-परिचय

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है लक्ष्मणदास पंडूलघाट चले गए और वहीं रहने लगे। यह स्थान मनोरमा नदी के तट पर बसा हुआ है। लक्ष्मणदास जाति के क्षत्री थे और एक सिद्ध महात्मा थे। इनका जन्म-स्थान पडूलघाट ही कहा जाता है। क्रोध मे आकर इन्होने अपना सम्बन्ध अयोध्या से विच्छिन्न कर लिया। परन्तु राम किसुनदास के समय उसमे सुधार हो गया। ये लगभग ५० वर्ष तक गद्दी पर रहे और सम्वत् १९४० मे इनकी मृत्यु हुई जैसा कि इस पद से स्पष्ट है—

> सम्वत् उन्नीस से चालीस, नदि मनवर के तीर।
> माघ कृष्ण, भृगु सप्तमी, लछुमन तजल सरीर।
>
> [लक्ष्मणदास की शब्दावली पृष्ठ २७१ पद ६ (अप्रकाशित)]

लक्ष्मण दास की मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य दुःखहरनदास गद्दी पर बैठे। वे जाति के कुर्मी थे और लक्ष्मणदास के एकलौते शिष्य थे। लगभग बीस वर्ष गद्दी पर रहने के बाद इनकी मृत्यु हुई और उनके शिष्य गोवर्धनदास इस गद्दी के उत्तराधिकारी बने। वे भरसाई जिला वस्ती के एक ब्राह्मण थे और लगभग १५ वर्ष गद्दी पर रहने के पश्चात् इनकी मृत्यु हुई। इनके शिष्य विश्वनाथ प्रसाद महंथ हुए। ये फैजाबाद के रहने वाले कान्दू वैश्य थे। आजकल यहाँ पर कोई महंथ नहीं है।

रचनाएँ

पडूलघाट मठ की परम्परा मे लक्ष्मणदास की रचनाएँ उपलब्ध हैं, जो अयोध्या मठ के प्रयत्न से एकत्रित करके एक पुस्तक के रूप मे लिपिबद्ध हैं। यद्यपि इस पुस्तक में लिपि-काल नहीं दिया गया है, परन्तु देखने से पता चलता है कि यह पच्चीस वर्ष पुरानी है। इसमे लक्ष्मणदास कृत श्लोक, राम कवित्त, राम शब्द, राम नाम शब्द, बारहमासा, अरिल्ल, ककहरा, पहाड़ा, चौपाई तथा साखियाँ संगृहीत हैं।

इनकी रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि इन पर वैष्णव धर्म का अधिक प्रभाव है। पुस्तक के आरम्भ मे सर्वप्रथम इन्होंने सूर्य की वन्दना की है

तथा कहा है कि सूर्य दर्शन से सब प्रकार के पाप विनष्ट हो जाते हैं। श्लोकों की भाषा अशुद्ध[1] है।

इन्होंने कहीं भी स्पष्टतया ब्रह्म का निरूपण नहीं किया है, परन्तु इनका ब्रह्म भी शब्द ब्रह्म ही है जो गगन में रहता है और यही ब्रह्म संसार की प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। वह अपनी इच्छा से सृष्टि करता है।[2]

इस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए इन्होंने सुरति शब्द योग का समर्थन किया है। मोह को मारकर तथा ज्ञान, ध्यान तथा विवेकपूर्वक जीवन से आत्मस्वरूप का दर्शन हो सकता है। मन की चंचलता योग द्वारा ही नष्ट हो सकती है। अतः उसी के माध्यम से मन को जीतकर सुरति को निरति तक पहुँचाया जा सकता है और तब आत्मस्वरूप का दर्शन सम्भव[3] है।

इनकी रचनाओं में उपदेशात्मक पदों का बाहुल्य है। इस संसार की नश्वरता, सत्संग तथा भगवत भजन सम्बन्धी उपदेश नाना प्रकार से दिए गए हैं। भगवान के सगुण स्वरूप का वर्णन तथा भक्तों की नामावली से ज्ञात होता है कि इन पर सगुण उपासना-पद्धति का अधिक प्रभाव था। इनकी रचनाएँ उच्च-कोटि में नहीं आ सकतीं।

---

१. यो न पूजतेष्ट देवा निर्थि च दिने दिने।
 सकल पाप क्षयं जाते प्रभाते सूर्य दर्शने।
 जोतिरूपे तेज ब्रह्मं प्रकाश रूपे प्रनमामि ते।
 गंध धूपे नैवेद्य च सूर्य देवो समर्पहूं।

[लछमणदास की शब्दावली पृष्ठ १ पद १ (अप्रकाशित)]

२. जग में धरि बहु रूप जो, सो इच्छा अनुमानि।
 लछुमन हरि की मौज है, सब ब्योहार नहि ठानि।

[लछमणदास की शब्दावली पृष्ठ १५ दोहा २ (अप्रकाशित)]

३. मोह मैदान विवेक को जीतिए ज्ञान औ ध्यान की फौज साजिए।
 योग और युक्ति से चित्त को जीतिए सुरति सों निरति में जाय बाजो।
 आतमा रूप अनूप जब झलि परे काया गढ़ अमल नित रहो गाजी।
 लछुमनदास जिन अमल औ तोल ही, गगन गलतान नित भयो राजी।

[लछमणदास की शब्दावली पृष्ठ २ पद १ (अप्रकाशित)]

पलटू पंथ

प्राय: ऐसा देखने मे आता है कि किसी पथ या सम्प्रदाय का सगठनकर्ता वह व्यक्ति नहीं होता जिसके नाम से कोई पंथ चलता है। साथ ही साथ साधारण व्यक्तित्व वाले संत के नाम पर ही कोई पंथ नही चलता, क्योंकि उसमे ख्याति, प्रचार या आकर्षण की सम्भावना कम रहती है और इस प्रकार कालान्तर मे उसके लुप्त हो जाने की आशंका बनी रहती है। अत: पंथ उसी के नाम पर चलता है जो असाधारण व्यक्तित्व, प्रतिभा तथा आकर्षण का सत हो।

प्राचीनकाल से संतों के मठ जो बस्ती से दूर बने रहते थे, साधना के स्थान थे और आगे चलकर उन्हीं मठों में शिष्य तथा प्रशिष्य भी रहने लगे। इस प्रकार के कई मठ थे और एक दूसरे से अपना भिन्न अस्तित्व भी रखते थे। उनके लिए वैसा करना अनिवार्य भी हो गया। साथ ही साथ उनमे स्पर्धा की भावना भी जाग्रत हुई और जन-साधारण मे अपने पंथ या सम्प्रदाय की विशिष्टता रखने के लिए कुछ बाह्य भिन्नता भी आवश्यक प्रतीत हुई। इन्हीं भिन्नताओं के आधार पर पथो या सम्प्रदायों का निर्माण हुआ था।

पलटू पंथ की रूपरेखा पलटू-साहित्य मे पहले ही से विद्यमान थी। इनके मठों मे यह पंथ धीरे-धीरे पनपने लगा और वेशभूषा, छापा, तिलक तथा पूजा-पद्धति के कारण यह पंथ ही आगे चलकर पूर्ण विकसित हो गया। इसमे बहुत से ऐसे कर्मकाण्ड सम्मिलित हो गये जिनका विरोध पलटूदास ने स्वयं किया था और अयोध्या के प्रभाव से इसमें धीरे-धीरे प्रच्छन्न रूप मे पौराणिक धर्म के कर्मकाण्ड का प्रभाव पड़ा। अत: इन्ही मठों मे विकसित विचारावली की भित्ति पर आधुनिक पलटू पंथ खड़ा है जिसका वर्णन अन्यत्र किया गया है।

पंचम अध्याय

संत पलटूदास तथा पलटू पंथ

(तुलनात्मक अध्ययन)

१—प्रस्तावना

२—सिद्धान्त

३—साधना

४—साम्प्रदायिक रूप

प्रस्तावना

पलटूदास ने व्यक्तिगत साधना की थी और जो कुछ उन्होंने सत्संग, मनन, पठन तथा साधना से अनुभव किया था उसे सम्भवतः लिपिबद्ध कर दिया था। उनकी रचनाओं से यह भी नहीं ज्ञात होता है कि उन्होंने किसी विशेष पंथ का निर्माण किया था या उसकी इच्छा भी उनमें थी। ऐसा सुनने में भी नहीं आता कि अन्य संतों की भांति उन्होंने किसी प्रकार के धार्मिक संगठन की व्यवस्था भी की थी। उन्होंने अपने को गुलाल साहब का अनुयायी घोषित किया था और उसको गुलाल पंथ का नाम देकर उसी में अपनी निष्ठा भी व्यक्त की थी। परन्तु इनके व्यक्तित्व तथा साधना में कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं जिनके कारण वह अपने मूल पंथ से अलग जा पड़ा और पलटू पंथ के नाम से विख्यात हुआ।

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, पलटूदास बावरी पंथ से सम्बन्धित थे, परन्तु ऐसा देखने में आता है कि उसी पंथ के व्यक्ति-विशेष से गुरु तथा प्रतिष्ठा इत्यादि के कारण उनके साथ भी उसी के नाम पर अलग पंथ का प्रचलन हो जाता है। बावरी पन्थ को यारी पंथ भी कहते हैं। भुड़कुड़ा में गुलाल साहब की प्रसिद्धि के कारण इसे गुलाल पंथ भी कहा जाता है तथा भीखा साहब के नाम पर इसी पंथ को भीखा पंथ भी कहते हैं। उसी प्रकार अयोध्या में पलटूदास के नाम पर इसे पलटू पंथ कहते हैं। इस मठ से सम्बन्धित जितने भी मठ हैं तथा उन मठो के समस्त अनुयायी अपने को पलटू पंथी ही कहते हैं।

एक स्थान पर यह भी कहा जा चुका है कि पलटूदास उस काल में उत्पन्न हुए थे जिस काल में सन्तों में पंथ-निर्माण की प्रवृत्ति काम कर रही थी। सब पंथ मूल रूप में एक होते हुए भी पूजा-पाठ, वेश-भूषा तथा पूजा-पद्धति के आधार पर पृथक् ज्ञात होते थे। पलटूदास के शिष्यों पर भी यही प्रभाव पड़ा और पलटू दास के जीवन काल में ही इस पंथ की गद्दियाँ स्थापित होने लगीं और तत्पश्चात् इसका प्रभाव-क्षेत्र भी विस्तृत होने लगा। लोगों का कहना है कि यह सम्प्रदाय परसाद साहब के समय में ही पृथक् हो चुका था। तत्पश्चात् इसकी गणना उत्तरी भारत के विशिष्ट पंथों में होने लगी।

मूल पंथ से पृथक् होने के पश्चात् अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इसने अपने में परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया तथा इस पर स्थानीय पौराणिक प्रभाव प्रच्छन्न रूप से पड़ने लगा। चूंकि यह पंथ अधिक प्राचीन नहीं है अतः इस पर अन्य पंथों का नगण्य प्रभाव ही पड़ सका है। अब यह एक सुव्यवस्थित पंथ है और इस पंथ से सम्बन्धित पृथक् साहित्य भी है, जिसकी चर्चा अन्यत्र की गई है। इसकी साधना-पद्धति, पूजा-विधान तथा रीति-रिवाज सब कुछ भिन्न है। इसकी रूप-रेखा कबीर पन्थ से मिलती-जुलती है।

यद्यपि पलटूदास ने कोई अलग पंथ नहीं चलाया था, परन्तु पंथ-निर्माण की समस्त सामग्री उसमें विद्यमान थी जिसकी आधार-शिला पर इस पंथ की नींव आगे चलकर रख दी गई। अब यह देखना है कि पलटूदास के मतों पर आधारित पंथ और आधुनिक पलटू पंथ में कहाँ तक साम्य अथवा वैषम्य है।

सिद्धान्त

आधुनिक पलटू पंथ के सिद्धान्त उस मत के अवलम्बियों द्वारा पूछने पर ज्ञात होता है। इस पर अद्वैतवाद का अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पलटूदास ने प्रत्येक स्थान पर अद्वैतवाद का समर्थन किया है और अब भी यह प्रभाव अक्षुण्ण है।

पलटूदास ने कबीर की भांति कहीं भी स्पष्ट रूप से सृष्टिक्रम का वर्णन नहीं किया है, परन्तु उनके मत का विकसित रूप वर्तमान पलटूपंथियों में प्रचलित है। इनका कहना है कि सृष्टि के आदि में केवल ब्रह्म था। यही इस सृष्टि का निमित्त तथा उपादान कारण है। सृष्टि के पहले सद्गुरु थे और अन्त तक वही रहेंगे। उन्होंने आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी को निर्मित किया। इन्हीं तत्वों से समस्त संसार की रचना हुई। जिस प्रकार सूर्य प्रत्येक घट में प्रतिबिम्बित होता है उसी प्रकार ब्रह्म सबमें रहता है। जीव तथा ब्रह्म एक ही हैं। ऐसा देखने में आता है कि इनका सृष्टिक्रम अद्वैतवादियों से अधिक मिलता-जुलता है।

माया ब्रह्म से सम्बन्धित है। संसार में उसी माया का नाटक देखा जा रहा है। माया ब्रह्म की ही भाँति सब स्थानों पर विद्यमान है और नाना प्रकार के रूप धारण करके सबको ठगती रहती है। कनक तथा कामिनी उसी के रूप हैं। साधक के लिए परम आवश्यक है कि वह इस पर विजय प्राप्त कर ले।

पलटू पंथियों में प्रचलित है कि जीव अन्य नहीं है अपितु सद्गुरु का ही अंग है। यह जीव मल विक्षेप तथा आवरण के कारण नानात्व की कल्पना करता है। इनको जन्मान्तर वाद भी मान्य है। जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलता है। परन्तु सद्गुरु की कृपा से कर्मबन्धन कट जाते हैं और जीव अपना स्वरूप पहचान कर मोक्ष प्राप्त करता है।

सत्गुरु अशरीरी है, परन्तु उसका वरद हस्त सांसारिक जीवों पर रहता है। मुक्ति पाने के लिए आकुल जीव को सत्पथ पर लगाने के लिए सत्पुरुष सर्वदा तैयार रहते हैं और सत्य लोक से अपना प्रतिनिधि भेजा करते हैं। पलटूदास ऐसे ही प्रतिनिधि हैं।

पलटूदास ने दसवें द्वार पर सत्गुरु का निवास-स्थान माना है। उन्होंने इन दस लोकों का वर्णन स्पष्टतया व्यवस्थित रूप में कहीं नहीं किया है। कबीर पंथियों की लोक-व्यवस्था तथा उनके देवताओं को पलटू पंथियों ने ज्यों का त्यों अपना लिया है।

पलटूदास के अनुयायी उनके द्वारा निर्मित पदों का पाठ नियमित रूप से करते हैं तथा उनकी पूजा करते हैं। वे पूर्णरूप से अद्वैती हैं और भक्ति को अपनी साधना का अन्तिम चरण मानते हैं। लोकों की कल्पना के अतिरिक्त इनके सिद्धान्त पलटूदास के सिद्धान्त से अधिक मिलते-जुलते हैं।

साधना-पद्धति

पलटू पंथ सम्बन्धी मठाधीशों तथा अनुयायियों से पूछने पर इनकी साधना-पद्धति के विषय में ज्ञात होता है। इस पंथ की साधना-पद्धति विशेष जटिल नहीं मालूम होती। जन्मगत् संस्कार या विशेष परिस्थितियों के कारण साधक के हृदय में इस नश्वर संसार से विरक्ति उत्पन्न होती है। धीरे-धीरे सत्संग के द्वारा उसमें यह भावना पुष्ट होती जाती है। उपदेश तथा सत्संग इसके प्रमुख अंग हैं।

इस प्रकार की भावना के स्थिर हो जाने पर साधक वातावरण से भी प्रभावित होता है। तब उसे दीक्षित किया जाता है। साधना-क्षेत्र में उसे कर्तव्या-कर्तव्य का ज्ञान कराया जाता है। ब्रह्मचर्य धारण करता हुआ तथा धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन में लीन साधक अष्टांग योग की क्रिया में प्रविष्ट होता है। प्रारम्भ में उसे यम तथा नियम का पालन करना पड़ता है। नाना प्रकार के आसनों में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् पूरक, रेचक तथा कुम्भक का अभ्यास किया जाता है ताकि मन एकाग्र हो।

प्राणायाम के द्वारा प्राण-वायु को विविध चक्रों को पार कराकर त्रिकुटि तक लाने में ही विशेष कठिनाई है। त्रिकुटी तक माया राज्य है अतः उस पर विजय प्राप्त करने में विलम्ब होता है इसीलिए इसे पिपीलिका मार्ग कहते हैं। धीरे-धीरे अभ्यास के द्वारा यहाँ तक गति सम्भव है। त्रिकुटी के बाद तीव्र गति से साधक बढ़ता है इसीलिए इसे विहंगम मार्ग भी कहते हैं। क्रमशः आगे बढ़ने पर दसवाँ द्वार मिलता है जहाँ सोहं शब्द का उच्चारण होता है और तब निर्मल आत्मा का दर्शन होता है। और आगे बढ़ने पर शून्य है जहाँ आत्मा परमात्मा में विलीन

हो जाती है। यही स्थान सत्लोक है जहाँ साधक पहुँचने का प्रयत्न करता है और यही उसका मुख्य उद्देश्य भी है।

ऊपर वर्णित साधना-पद्धति के साथ-साथ उस निर्गुण के प्रति भक्ति की भी आवश्यकता है। यह भक्ति जप-तप या माला इत्यादि बाह्य वस्तुओं के सहारे नहीं होती बल्कि श्वास प्रश्वास के साथ उस निरूप ब्रह्म की धारणा के साथ होती है। मन निरन्तर उसके ज्योतिर्मय स्वरूप का चिन्तन करता रहता है ताकि वह सत्यलोक में पहुँचकर सत्पुरुष का दर्शन कर सके। कबीर-पंथियों के सत्य लोक को पलटू पंथियों ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है और इसी को दरियादासी छपलोक कहते हैं। गुरु की भक्ति तथा साधुजन की सेवा भी आवश्यक है और इस पंथ में सदाचरण का भी विशेष महत्व है।

चूंकि पलटूदास को इस संसार से गए हुए अधिक दिन नहीं व्यतीत हुए अतः उनकी वर्णित साधना-पद्धति में विशेष परिवर्तन नहीं ज्ञात होता और न उसकी सम्भावना की जा सकती है। इसका यह भी एक कारण हो सकता है कि दो-चार के अतिरिक्त इस पंथ में कोई प्रसिद्ध सिद्ध संत नहीं हुआ। पलटू पंथी योग साधना को प्रधानता देते हैं, परन्तु पलटूदास ने भक्ति को मोक्ष-प्राप्ति का प्रमुख साधन माना था।

साम्प्रदायिक रूप

पलटू पंथ की कुछ निजी विशेषताएँ हैं। इसमें कुछ अपने रीति-रिवाज हैं। पलटू पंथी भी कबीरपंथियों की भांति श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। गले में कंठी पहनते हैं जो तुलसी की बनी होती है। जनेऊ में पिरोकर यह गले में बांध दी जाती है। ये लोग मस्तक पर एक प्रकार का टीका करते हैं जिसे हरि-मंदिर कहा जाता है। पलटूदास ने टीका इत्यादि धारण करने वालों को बगुला तथा पाखंडी कहा था।[1] परन्तु इस टीके की मान्यता के प्रमाण में उन्हीं द्वारा निर्मित यह दोहा कहा जाता है—

हरि मंदिर जेहि शीस पै, उर तुलसी की माल।
पलटू ते कहं देखि कर, डर मानत है काल।[2]

इससे यह ज्ञात होता है कि इन दोनों वस्तुओं के लिए पलटूदास द्वारा मान्यता मिल चुकी है, परन्तु इस दोहे की प्रामाणिकता में सन्देह भी हो सकता है। जिस व्यक्ति का जीवन ही बाह्याडम्बरों के खण्डन में बीता हो वह उन्हीं का पोषक कैसे हो सकता है। सम्भव है कि उक्त दोहा पलटू परसाद द्वारा निर्मित हो या किसी अन्य व्यक्ति ने इसका प्रचलन कर दिया हो।

---

१. पलटू साहब की शब्दावली। पृष्ठ १४४ पद ४०६
२. वही पृष्ठ ३२१ पद ६०

यह तिलक मंदिर के आकार का होता है जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है। नाक के ऊपर मस्तक पर दो समानान्तर रेखाएँ होती हैं जो नीचे की ओर एक सीधी रेखा से मिली होती हैं। त्रिकुटी के नीचे नाक तक चन्दन लगाया जाता है। उन समानान्तर रेखाओं के मध्य मे नीचे की ओर दुग्रन्नी के आकार मे चन्दन भर दिया जाता है। हुलासदास ने तिलक में परिवर्तन कर दिया था। बरौली शाखा के लोग परिवर्तित तिलक का प्रयोग करते हैं। ये लोग दुअन्नी के स्थान पर कमल का फूल बनाते हैं। इस पंथ में दोनो प्रकार के तिलक प्रचलित हैं।

पलटू दास निस्पृह संत थे। मठाधीश होकर धन एकत्र करना उनकी समझ में एक हेय वस्तु थी। शिष्य बनाना भी उन्हें प्रिय नहीं था, परन्तु आजकल शिष्यों की एक वृहद् संख्या है। इन्हीं चेलो में से एक महन्थ बनता है। गद्दी देते समय एक विशेष प्रकार का समारोह होता है। भावी महंथ को कंठी, माला तथा सेल्ही पहनाकर एक विशेष प्रकार की सुसज्जित चौकी पर आसीन किया जाता है। मस्तक पर हरिमंदिर बना रहता है। वह श्वेत चद्दर धारण करके सिर पर श्वेत पगड़ी बांधता है। गुरु उसे टीका लगाते हैं। तत्पश्चात् एक वृहद् भडारा होता है जिसमे उपस्थित व्यक्ति भाग लेते हैं। तत्पश्चात् सबकी विदाई की जाती है और यथा-योग्य प्रसाद या विदाई रूप में कुछ दिया जाता है।

मृत्यु के पश्चात् शव को स्नान कराकर, तिलक लगाकर तथा नवीन वस्त्र पहनाकर सिंहासन पर बैठाया जाता है और एक विशेष प्रकार की बनी हुई संदूक मे बन्द कर उसे पृथ्वी मे दबा देते हैं। जलपान तथा भोजन की सामग्री एवं पात्र भी उस शव के साथ ही रख दिए जाते हैं। इच्छानुसार जल-प्रवाह भी होता है। समाधि पर नित्य दीपक जलाया जाता है। मृतक के उपलक्ष्य में एक भण्डारा होता है जिसमें सम्बन्धित मठाधीश तथा शिष्य भाग लेते हैं तथा पूजा देते हैं।

प्रत्येक मठ के पास कृषि योग्य भूमि है तथा निजी सम्पत्ति है। मठ मे निवास करने वाले साधु तथा आगन्तुक व्यक्तियों की सेवा-सुश्रूषा इसी की आय से होती है। शिष्यों से पूजा रूप में प्राप्त धन भी आय का एक साधन है।

मठों के सम्पर्क मे आने पर यह अनुभव किया जाता है कि इनमें परोपकार तथा अतिथि-सेवा का विशेष भाव है। नैतिकता भी पूर्णरूप से विद्यमान है। दुराचार तथा व्यभिचार का नाम तक नहीं है।

इस सम्प्रदाय मे जाति-पांति का भेद नहीं है, परन्तु अब उसका वह रूप नहीं है जिसका पालन पलटूदास ने किया था या करने का उपदेश दिया था। आजकल मूर्तिपूजा भी प्रचलित है। पलटूदास तथा पलटूपरसाद की दो मूर्तियां अयोध्या के मठ में वर्तमान हैं जिनकी पूजा होती है। *घंटा तथा घड़ियाल भी बजते हैं तथा* भोग लगाने की भी प्रथा है।

पलटूदास ने महथों की निन्दा इसलिए भी की थी कि वे भोग-विलास मे

लिप्त रहते हैं। वे पूजा भी लेते हैं और शिष्य भी बनाते हैं। आजकल दुर्भाग्यवश इस पंथ में शिष्यों की संख्या बढ़ाने के लिए परिश्रम किया जाता है। वर्ष में कम से कम एक बार महंथ अपने शिष्य के यहाँ जाते हैं, कुछ काल तक ठहरते हैं और पूजा भी ग्रहण करते हैं। यह कार्य वर्षाकाल में स्थगित रहता है।

यद्यपि इसका आधार पलटूदास द्वारा प्राप्त उपदेश ही है, परन्तु समय तथा स्थान के प्रभाव के कारण इसको पौराणिक धर्म की साम्प्रदायिकता ने प्रभावित किया है। फलस्वरूप इसमें विविध प्रकार के बाह्याडम्बरों तथा पाखण्डों का समावेश हो गया है।

षष्ट अध्याय

संत पलटू दास तथा समकालीन संत

संत पलटूदास तथा समकालीन संत

पलटूदास के समय संतों में पंथ-निर्माण की भावना प्रबल थी। विविध पंथों के अधिकांश प्रवर्तक इनके समकालीन थे। मूलरूप में एक होते हुए भी केवल बाह्याचार इत्यादि की भिन्नता के आधार पर पंथों का निर्माण होता था और इनके प्रचार के लिए यथाशक्ति व्यवस्थित तथा संगठित प्रयत्न भी होते थे।

इस काल के संतों ने ब्रह्मानुभूति का वर्णन विविध प्रकार से किया है। ब्रह्म-विषयक अनिर्वचनीय अनुभव को यथाशक्ति सरल तथा बोधगम्य बनाकर व्यक्त करने की प्रवृत्ति इस काल के संतों में पाई जाती है। उनका यह वर्णन किसी धार्मिक ग्रन्थ पर आधारित नहीं है और न ही किसी अन्य संत के अनुभव का अनुकरण मात्र है। इसीलिए धार्मिक ग्रन्थों से इनका मेल नहीं है और न एक सन्त की अनुभूति पूर्णरूप से अन्य सन्त की अनुभूति से मिलती ही है।

इस समय दूसरे धर्म के खण्डन तथा निजी धर्म के मण्डन का कम उल्लेख मिलता है। यह भावनाओं तथा मान्यताओं के आदान-प्रदान का युग था जिसमें विविध धर्मों के मूल सिद्धान्तों को मान्यता दी गई और बाह्याडम्बरों का खण्डन करके धर्म को शुद्धरूप में सामने रखने का प्रयत्न किया गया। विविध धर्मों की तुलना से सन्तों ने यह निष्कर्ष निकाला कि मूलतः सब धर्म समान हैं इसलिए तुलनात्मक अध्ययन के सहारे समन्वय की भावना का उदय हुआ और यह भावना पलटूदास और उनके समकालीन सन्तों में पाई जाती है।

पंथ की विशेषता दिग्दर्शित करने तथा जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए अधिकांश सन्तों ने अपने को पूर्ववर्ती सन्तों का अवतार घोषित किया और यही प्रवृत्ति गुरु के सम्बन्ध में भी काम कर रही थी। पलटूदास तथा उनके समकालीन समस्त सन्तों में ऊपर लिखित भावनाएँ कम या अधिक मात्रा में पाई जाती हैं।

पलटूदास ने कबीर दास, रैदास तथा पीपा आदि सन्तों का नाम आदर-पूर्वक लिया है, परन्तु न तो इन्होंने ही किसी अन्य सन्त से अपने सत्संग के सम्बन्ध में कुछ लिखा है और न ही इनके समकालीन सन्तों की रचनाओं में इनका ही उल्लेख है। पलटूदास तथा उनके समकालीन सन्तों के विषय में पूर्णरूप से प्रामा-

णिक तथ्यों का प्रभाव है। फिर भी उनकी तथाकथित रचनाओं तथा सम्बन्धित किंवदन्तियों के आधार पर इनके सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकता है। कालक्रम के अनुसार दरिया साहब बिहार वाले, दरिया साहब मारवाड़ वाले, चरनदास, सहजोबाई, गरीबदास इनके समकालीन कहे जा सकते हैं।

दरिया साहब (बिहार वाले)

दरिया साहब का जन्म डुमरांव से सात मील दक्षिण धरकन्धा जिला आरा में एक मुसलमान दरजी कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम पीरन शाह था जो अपने भाई की जान बचाने के लिए औरंगजेब की प्रिय दर्जिन की लड़की से विवाह करने के कारण मुसलमान बन गए थे। पीरन शाह अपनी ससुराल धरकन्धा में ही जा बसे थे जहाँ पर दरिया साहब का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि इनके पूर्वज उज्जैन के एक प्रतिष्ठित राजपूत थे जो बक्सर के पास जगदीशपुर में राज्य करते थे[१]। इनका जन्म कार्तिकसुदी पूर्णिमा सम्वत् १६६१[२] को हुआ था और मृत्यु भादों बदी चौथ शुक्रवार सम्वत् १८३३ में हुई थी[३]।

पलटूदास की भांति दरियासाहब भी कबीर के अवतार कहे जाते हैं। जब ये एक महीने के थे तभी इनको भगवान के दर्शन मिले थे। दोनों ही सन्त अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु दरिया साहब को पलटूदास की अपेक्षा फारसी का अधिक ज्ञान था। इन्होंने सोलह ग्रन्थों की रचना की है।

दरिया साहब ने निर्गुण ब्रह्म को पुरुष पुरान,[४] आदि पुरुष[५], आदि ब्रह्म

---

१. दरिया सागर—दरिया साहब का जीवन-चरित्र।

२. सम्वत् सोलह सौ इक्कानवें, कार्तिक पूरन जान।
मातु गर्भ से प्रकट भै, रहे वो घरी याम॥
(दरियासागर में दरिया साहब के चित्र के नीचे का दोहा)

३. भादो बदी चौथि बार शुक्र, गवन कियो छप लोक।
जो जन शब्द बिबेकिया, मेटेउ सकल सब सोक॥
संवत अठारह सै तेतीस, भादों चौथि अंधार।
सवा जाम जब रैनि गो, दरिया गौन बिचार॥
(दरिया सागर पृ० ६२)

४. पुरुष पुरान कहौं निज बैना। उनके मुख रसना है नैना॥
(दरिया सागर पृ० ८)

५. आदि ब्रह्म ओई पुरुष हहि, ताको सुनो संदेस।
(दरिया सागर पृ० ६)

तथा सत्पुरुष नाम से सम्बोधित किया है। वही ज्योति रूप में अवतरित होता है जिससे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश उत्पन्न होते हैं[2]। जिस प्रकार एक ही बीज से पत्र तथा शाखा इत्यादि की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार ज्योतिर्मय ब्रह्म से सृष्टि का सृजन होता है[3]। वह ब्रह्म चौथे लोक मे रहता है जिसका नाम छप लोक, सत्तलोक या अभयलोक है।[4] यह ब्रह्म श्वेत छत्र धारण करता है तथा उसके आस-पास की वस्तुएँ श्वेत रंग की हैं।[5] वहाँ अगणित सुन्दरियाँ उस सतपुरुष की सेवा कर रही हैं तथा ब्रह्मा वेदोच्चारण करते हैं।[6] वहाँ पर हीरे तथा जवाहरात प्रकाशित हैं।

उस छपलोक निवासी सत्त पुरुष को प्राप्त करने के लिए इन्होंने साधना पथ का ज्ञान कराया है। सर्वप्रथम यमराज की दस चौकियाँ पड़ती हैं जिनको कोई बिना सत्गुरु की कृपा के पार नहीं कर सकता।[7] इन चौकियों को पार

---

१. सत्त पुरुष रंग असल सरूपा। करम न काल छांह नहिं धूपा ॥
(दरिया सागर पृ० ८)

२. तीनि अंस है जोति सों, ब्रह्मा विस्नु महेस।
आदि ब्रह्म ओइ पुरुष हहि, ताको सुनो सदेस ॥
(दरिया सागर पृ० ९)

३. अनत एक से होत है साख पत्र लघु मूल।
बहुरि एक जब लीजिए, तब मेटे सब सूल ॥
(दरिया सागर पृ० ८)

४ बेद बिधी नहिं करेउ बखाना—छप लोक साहब अस्थाना ॥
(दरिया सागर पृ० १)

तीनि लोक के ऊपरे अभय लोक विस्तार।
सत्त सुकृत परवाना पावे, पहुँचे जाय करार ॥
(दरिया सागर पृ० १)

५. सेत मडल सेत चहुँ ओर, सेत छत्र विराजहीं।
सेत तख्त पै आप बैठे, हंस चंवर डोलावहीं ॥
प्रेम आनंद सुन्दर, प्रेम मगल गावहीं।
परिमल अम्र गुलाब को भरि, हंस सो सुख पावहीं ॥
(दरिया सागर पृ० ६)

६. कोटि कामिनि चंवर ढारहिं कोटिहस्ना ढारहीं।
कोटि ब्रह्मा वेद भनते अनत बाजा बाजहीं ॥
(दरिया सागर पृ० २)

७. चौदह चौकी यम के होई बिन सतगुरु के नहिं पहुँचे कोई।
(दरिया सागर पृ० ३)

करने के लिए सरगुरु चौदह मन्त्र सिखाता है।[1] मंत्रों का विवरण इन्होंने गुप्त रखा है। सर्वप्रथम साधक को अपना शरीर शुद्ध करना पड़ता है। इन्होंने ब्रह्म और जीव को एक ही माना है।[2] शुद्ध जीव ही ब्रह्म है। काया शोधन, नाड़ी शोधन तथा ईडा-पिंगला इत्यादि नाड़ियों से सम्बन्धित यौगिक वर्णन के अतिरिक्त प्राणायाम तथा पवन की बातें भी इनकी रचना में पाई जाती है।

दरिया साहब सुरति शब्द योग को ही उस छप लोक निवासी ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन मानते हैं। विविध चक्रों का भेदन करती हुई प्राण वायु जब आगे बढ़ती है तब अनहद शब्द सुनाई देता है। त्रिकुटी को पार कर यह ऐसे स्थान पर पहुँचती है जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है और तब साधक छप लोक में जाकर मुक्त हो जाता है। केवल यौगिक साधना से ही काम नहीं बनता बल्कि उस ब्रह्म के प्रति भक्ति भी आवश्यक है।[3] केवल ज्ञान से कुछ नहीं होता। उस ब्रह्म के प्रति प्रेम अत्यन्त आवश्यक है।[4]

पलटूदास ने भी ज्ञान तथा योग को गौण तथा भाव भक्ति को प्रधान माना है। उनके अनुसार बिना भक्ति के साधन निरर्थक हैं। मन की शुद्धता के साथ भगवान की भक्ति भी मोक्षदायिनी है।

दरिया साहब का ब्रह्म निरूपण पलटूदास के ब्रह्म निरूपण से अधिक मिलता है। दोनों ही कबीरदास से अनुप्राणित हैं, परन्तु दरिया साहब पर कबीर पंथ का अधिक प्रभाव है। छप लोक, अभय लोक या सत्तलोक कबीर पंथियों में प्रचलित सत्त लोक से भिन्न नहीं समझा जा सकता। दरिया साहब ने चौथे लोक पर ब्रह्म का निवास माना है परन्तु पलटूदास ने उसे दसवें मण्डल का निवासी कहा है। पलटूदास अपने को कबीर का अवतार मानते हैं परन्तु दरिया साहब अपने को कबीर से अभिन्न मानते हैं और अपने को ब्रह्मपुत्र कहते हैं।[5]

---

१. चौदह मन्त्र भेद जो पावे। जाई छप लोक बहुरि नहिं आवे॥
(दरिया सागर पृ० ३)

२. सत्त ब्रह्म जीव महं लेखा। अदुइत ब्रह्म आपुहि पेखा॥
(दरिया सागर पृ० २१)

३. भगति ज्ञान जो जानै कोई। प्रेम रुचित तब हिरदै होई।
अनुभौ अनहद करै बिचारा। सूझि परै तब उतरै पारा॥
(दरिया सागर पृ० २३)

४. जो लगि प्रेम जुगुति नहिं होई। केतनो ज्ञान कथै नर सोई॥
(दरिया सागर पृ० २४)

५. दरिया सागर पृ० ४०

दरिया साहब मारवाड़ वाले

मारवाड़ वाले दरिया साहब का जन्म जैतारन नामक ग्राम में भादो बदी अष्टमी सम्वत् १७३३ में हुआ था। इनकी मृत्यु अगहन सुदी पूर्णिमा सम्वत् १८१५ में हुई थी। ये जाति के धुनिया थे। इसके पिता की मृत्यु सम्वत् १७४० के आस-पास हुई। अतः इनका पालन-पोषण इनके नाना ने, जिनका नाम कमीच था, किया। फलतः अपने जन्म-स्थान को छोड़कर परगना मेढ़ता के रैन नामक ग्राम में रहने लगे। कहा जाता है कि इनके गुरु का नाम प्रेमजी था जो बीकानेर के किसी गाँव खिजानसर में रहते थे।[1] इनकी रचनाओं का एक संग्रह बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

दरिया साहब ने ब्रह्म का स्थान महाशून्य माना है जो ओंकार से भी ऊपर है।[2] मन, बुद्धि तथा चित्त की पहुँच त्रिकुटी तक है। इन तीनों से परे तथा त्रिकुटी के ऊपर ही ब्रह्म का स्थान है। उस ब्रह्म के निवास-स्थान पर धरती, पवन, पानी तथा अग्नि इत्यादि नहीं है।[3] पलटूदास ने भी उस स्थान का वर्णन करते हुए ब्रह्म के स्थान पर ऊपर वर्णित वस्तुओं का अस्तित्व नहीं माना है।

दरियादास ने उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए नाम स्मरण को प्रधान माना है। उनका कहना है कि नाम स्मरण से जीभ में रस उत्पन्न होता है जो नीचे उतरकर हृदय तक जाता है और फिर वहाँ से नाभि कमल को पार करता हुआ मेरुदण्ड के नीचे जाकर फिर क्रमशः ऊपर को उठता है और बंक नाल को पार करता हुआ वह रस त्रिकुटी तक पहुँचता है और उसके बाद अनहद श्रवण होता है।[4]

पलटूदास ने वैराग्य को साधना का मुख्य सोपान माना है, परन्तु दरिया साहब ने इसकी आवश्यकता पर बल नहीं दिया है और अपने घर में रहकर ही इन्होंने साधना करने की राय दी है। इनका कहना है कि घर छोड़ना आवश्यक नहीं है। चित्त की शुद्धता एवं मन की निष्कलकता ही परम आवश्यक है।

---

१. दरिया साहब मारवाड वाले की बानी—जीवन-चरित्र

२. मन मेरू से बावड़ें, त्रिकुटी लग ओंकार।
जन दरिया इनके परें, ररकार निरधार॥
(दरिया साहब की बानी पृ० १६ पद १०)

३. धरती गगन पवन नहिं पानी, पावक चंद न सूर।
रात दिवस की गम नहीं, जह ब्रह्म रहा भरपूर॥
(दरिया साहब की बानी पृ० १७ पद २१)

४. दरिया साहब मारवाड वाले की बानी देखिए नदा परचे का अंग
पृ० १३-१५

इसीलिए दरिया साहब के साहित्य में पलटूदास की भाँति स्त्री-निन्दा के शब्द नहीं मिलते। इन्होंने स्त्रियों की प्रशंसा की है।[१]

चरनदास

संत चरनदास का जन्म मेवाट के अन्तर्गत डेहरा नामक स्थान में सम्वत् १७६० की भाद्रपद शुक्ल तृतीया को मंगलवार के दिन सात घड़ी दिन चढ़े हुआ था। इनके पिता का नाम मुरलीधर और माता का नाम कुंजो था। ये दूसर जाति के थे। मुरलीधर एक भगवत प्रेमी व्यक्ति थे। जब वे जंगल में भजन के लिए गए थे, अचानक वहीं लुप्त हो गए। फलतः चरनदास के नाना प्रयागदास ने इनको अपने पास दिल्ली बुला लिया और इनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया, परन्तु ये विरक्त हो गए। बाल्यकाल से ही आध्यात्मिक रुचि के होने के कारण किसी अज्ञात व्यक्ति की प्रेरणा से इन्होंने योगाभ्यास करना प्रारम्भ किया और चौदह वर्ष के पश्चात् सिद्ध हो गए। इनकी मृत्यु अगहन सुदी चौथ सम्वत् १८३९ को दिल्ली में हुई थी[२]।

इनके गुरु का नाम शुकदेव कहा जाता है। चरन दास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध व्यास के पुत्र शुकदेव ही इनके गुरु थे[३] और उन्होंने डेहरा में ही दर्शन दिया था। दीक्षित करने के पश्चात् उन्होंने ही इनका नाम रणजीत से बदलकर चरनदास कर दिया था। गोविन्द साहब ने भी कदाचित् पलटूदास का नाम बदल दिया था और उन्होंने ही उनका नाम पलटूदास रखा था।

इन्होंने ब्रह्म का स्थान अमर लोक में माना है जहाँ पर कोटि सूर्य का प्रकाश है तथा अनहद शब्द निरन्तर होता रहता है। वहीं पर एक कमल के मध्य में एक तख्त है जहाँ पर अद्भुत आदि पुरुष बैठा रहता[४] है। वहाँ पर पहुँच जाने

१ नारी जननी जगत की, पाल पोस दे पोष।
मूरख राम बिसार कर ताहि लगावे दोष॥
(दरिया साहब की बानी पृ० ३४ दोहा ६३)

२. चरन दास की बानी—देखिए जीवन-चरित्र।

३. उत्तरी भारत की संत परम्परा—श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ० ४६८

४. दल असंख को कमल रूप जह सत्त बिराजै।
अनत भानु परकास जहाँ अनहद धुनि गाजै॥१॥
सुन्दर छवि अति हंस संत जन आगे ठाढ़े।
जहं पहुँचै कोइ सूर बीर नीसान जो गाड़ै॥२॥
कमल मध्य जो तख्त है सोभ अपार बरनूं कहा।
कहै चरनदास उस तख्त पर आदि पुरुष अद्भुत महा॥३॥
(चरनदास की बानी पृ० ३७ शब्द ५)

पर जीव आवागमन से मुक्त हो जाता है और उसी लोक के अमर फल का भोग करता है।[1] यहाँ पर चाँद, सूर्य, त्रिगुण माया, पवन इत्यादि कुछ भी नहीं है। इन्होंने अनहद शब्द को ही ब्रह्म का स्वरुप माना[2] है। यही जीवात्मा जब अनहद में लीन हो जाती है तब परमात्मा स्वरूप बन जाती[3] है। इनका ब्रह्म-वर्णन पलटूदास के अनुकूल है। केवल अमर लोक तथा तख्त की चर्चा पलटू साहित्य में नहीं मिलती।

संत चरन दास ने पलटू दास की भांति सदाचरण को प्रधान माना है। ये भी निष्काम भक्ति के पोषक जान पड़ते हैं। इनके अनुसार सच्चरित्रता तथा नैतिकता जीवन के आवश्यक अंग हैं जिनके अभाव में आदर्श की प्राप्ति असम्भव होती है। जीव हिंसा, इन्द्रिय-लोलुपता तथा शत्रुता इत्यादि विकारों को त्यागकर अहर्निश भगवान के चिन्तन में लगा रहना ही सात्विक जीवन है और यही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। इन्होंने सत्संग तथा गुरु की सेवा को भी प्रधान माना है, क्योंकि इनसे ब्रह्म-दर्शन में अत्यधिक सहायता मिलती है। पलटू दास ने भी सदाचरण तथा नैतिकतापूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए भगवान के प्रति निष्काम भक्ति को ही प्रधान माना है।

चरन दास ने भी योग, ज्ञान तथा भक्ति का समन्वय स्थापित किया है जिसका उत्कर्ष निष्काम भक्ति की दृढ़ता में ही है। दोनों ने योग की विविध साधनाओं का वर्णन किया है, परन्तु चरनदास ने हठयोग के षटकर्म का वर्णन किया है जिसका पलटूदास की साधना में अभाव मिलता है। गुरु, सत्संग, नाम स्मरण, इन्द्रिय-निग्रह, सूरमा तथा पतिव्रता इत्यादि के वर्णन में दोनों में कम भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

वृन्दावन में अधिक दिन निवास करने तथा श्रीमद्भागवत की कथा सुनने के कारण कृष्ण-चरित्र से इनका विशेष अनुराग हो गया था। इन्होंने कृष्ण संबंधी

---

१. छत्र फिरत नित रहत चवर ढोरत जहं हंसा।
जहं दरसन करें शिष्य मिटै जुग जुग का संसा ॥१॥
आवागमन हूँ रहित मरन जीवन नहिं होई।
आनि मिलै जब चारि मुक्त कहियत है सोई ॥२॥
जहं अमरलोक लीला अमर फल अनेक तहं पावई।
मन चरन दास सुकदेव बल चौथा पद इमि गावई ॥३॥
(चरनदास की बानी पृ० ३७ शब्द ६)

२. (चरनदास की बानी)।

३. जो जीवातम सो भया परमातम अरु ब्रह्म।
वा की सरवरि को करै पाई परै न गम्म ॥
(चरनदास की बानी पृ० २६ पद ६)

धामों को अलौकिक माना है और इनके मतानुसार चर्म-चक्षुओं से दिखाई देने वाले ये स्थान वस्तुतः नकली हैं। वे धाम दिव्य-चक्षुओं से ही दिखाई दे सकते हैं। मन और इन्द्रियों को जीतने वाला ही इसे देख सकता है। दरिया साहब बिहार वाले की भांति इन्होंने ब्रह्म के निवास-स्थान का नाम अमरपुर रखा है। नवधा भक्ति इत्यादि के निरूपण तथा वर्णन इनके सगुणोपासक होने की ओर संकेत करते हैं। पलटूदास में यह भावना स्पष्टतया सगुण के प्रति न होकर निर्गुण के प्रति है। चरनदास की रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि इन्होंने कुछ संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद भी किए हैं, परन्तु यह बात पलटू साहित्य में नहीं मिलती।

पलटू पंथ तथा चरनदासी सम्प्रदाय के अनुयायी गृहस्थ तथा विरक्त दोनों प्रकार के हैं। दोनों ही तिलक लगाते हैं, परन्तु इनके तिलक में अन्तर होता है। इस सम्प्रदाय में माला तथा सुमरिनी का प्रचलन है, परन्तु पलटू पंथी केवल कंठी धारण करते हैं। दोनों ही साफा बांधते हैं तथा दोनों ही के मठ हैं। उन मठों के पास पर्याप्त भूमि है। चरनदासी सम्प्रदाय वाले कृष्णलीला संबंधी कीर्तन करते हैं तथा श्रीमद्भागवत की पूजा करते हैं। पलटू पंथ में ऐसी व्यवस्था नहीं है।

सहजोबाई

सहजोबाई के संबंध में अधिक ज्ञात नहीं है। राजपूताना के एक प्रतिष्ठित दूसर कुल में इनका जन्म हुआ था। विराग होने के पश्चात् इन्होंने चरनदास से दीक्षा ली और सिद्ध हो गईं। सहजोबाई सम्भवतः सम्वत् १८०० विक्रमी के आसपास वर्तमान थीं। इनकी रचनाओं का एक संग्रह 'सहज प्रकाश' बेलविडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

सहज प्रकाश में गुरुदेव चरनदास का स्तवन इन्होंने विशद रूप से किया है।[1] दादागुरु श्री शुकदेव की भी वन्दना की गई है[2]। कबीर की भांति इन्होंने भी गुरु-स्तवन में निम्न दोहा लिखा है—

सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुन्दर जाय।
धरती का कागद करूँ, गुरु अस्तुति न समाय॥

(सहज प्रकाश पृ० ४ पद १३)

सहजोबाई की साधना चित्त तथा मन की शुद्धता पर आधारित है। इन्द्रिय-

---

१. (सहज प्रकाश पृ० १ से ३ तक)

२. नमो नमो शुकदेव गुसाईं। प्रकट करो भक्ती जग माहीं॥

(सहज प्रकाश पृ० २)

निग्रह, मनो मारण तथा निष्कामता साधु के लक्षण हैं[1]। पाप के नाना प्रकार के दारुण फलों का वर्णन भी इन्होंने किया है ताकि मानव इन पापों से विरक्त हो[2] जाए। निर्गुण तथा सगुण ब्रह्म की एकता भी इनकी रचनाओं में प्रतिपादित की गई है[3]। इनकी साधना-पद्धति में अजपा जाप का विशेष महत्त्व[4] है। साधना का मुख्य अङ्ग यही है। उस ब्रह्म का अहर्निश चिंतन ही मानव को मुक्ति दिला सकता है। जब चित्त स्थिर हो जाता है और इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो जाती है तो ब्रह्म का दर्शन सम्भव होता है[5]।

सहजोबाई अवतार वाद पर विश्वास करती हैं। कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन सरस ढङ्ग से इनकी रचनाओं में मिलता है। एक सगुण उपासक की भांति अपने पापों को दूर करने के लिए इन्होंने नाना प्रकार से प्रार्थना की है। संसार से विरक्ति तथा भगवान से आसक्ति के लिए बहुत से उपदेशात्मक पद इनकी रचनाओं में उपलब्ध हैं। इनकी साधना का चरम उत्कर्ष भक्ति है। इनकी साधना में सगुणोपासना का इतना महत्त्व इनके गुरु चरनदास की देन है। पलटूदास की साधना में सगुण के प्रति इतनी आस्था नहीं है।

दयाबाई

दयाबाई संत चरनदास की शिष्या थीं और सहजोबाई की समकालीन थी। यह भी मेवाड़ के डेहरा ग्राम में ही पैदा हुईं और जीवनपर्यन्त अपने गुरु चरनदास के पास दिल्ली में ही रहीं। इनके जन्म तथा मृत्यु के सम्बन्ध में कम ज्ञात होता है। इनका जन्म-सम्वत् १७५० और १७७५ विक्रमी के मध्य कहा जाता है। इनकी रचनाओं का एक संग्रह बेलविडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। कुछ लोगों का कहना है कि इन्होंने 'विनय मालिका' नामक अन्य ग्रंथ की भी रचना की है, परन्तु यह पुस्तक अप्रमाणित है।

दयाबाई ने जीव और ब्रह्म को एक ही माना है। विविध साधनाओं के द्वारा यह जीव ही निर्मल होकर ब्रह्म हो जाता है[6]। यह सर्वव्यापी है तथा

---

१. सहज प्रकाश देखिए साधु लक्षण-पृ० १५
२ सहज प्रकाश पृ० २१ से २६ तक
३. सहज प्रकाश पृ० ४०-४१
४. सहज प्रकाश पृ० ३७, पद १ से ७ तक
५. सहज प्रकाश पृ० १५
६. जीव ब्रह्म अंतर नहिं कोय।
एकै रूप सर्व घट सोय॥
जग बिबर्त सूं न्यारा जान।
परम अद्वैत रूप निर्बान॥ (दया बोध पृ० १४, पद ३६)

परिवर्तन के परे है। न तो वह कर्म करता है और न तो उस कर्म का फल भोगता है। मन, वचन तथा दृष्टि से भी वह परे है। उसे ही महाशुद्ध, चिद्रूप, निराकार, निर्गुण, आदिनिरंजन, अज तथा अविनाशी कहा जाता है[1]। वह आता-जाता नहीं है। यह संसार माया का जाल[2] है। ब्रह्म के निवास-स्थान पर न तो काल पहुँच सकता है और न सर्दी-गर्मी। वह ब्रह्म परम तेजस्वी[3] है। उसका सिंहासन श्वेत वर्ण का है तथा उसका धाम परम प्रकाशमान है जिसको देखकर आँखों में चकाचौंध हो जाती[4] है। वहाँ बिना बिजली के प्रकाश है और बिना बादल के ही वर्षा होती[5] है। यहाँ तक ब्रह्म का वर्णन पलटूदास से मिलता है, परन्तु विनयमालिका में राम, कृष्ण, मोहन, मधुसूदन इत्यादि नामों का प्रयोग करके इन्होंने अपना आकर्षण सगुणोपासना की ओर प्रदर्शित किया है[6] जो पलटू-साहित्य में नहीं मिलता। यह चरनदास की देन कही जा सकती है।

इस ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए कच्छप की गति धारण करनी पड़ती है। जिस प्रकार कच्छप अपनी समस्त इन्द्रियों को समेट लेता है उसी प्रकार साधक भी अपनी समस्त इन्द्रियों की गति को अन्तर्मुख कर लेता[7] है। पद्मासन पर बैठकर तथा नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि रखकर श्वास-प्रश्वास के साथ ब्रह्म की भावना

---

१. महा सुद्ध साच्छी चिद्रूप।
परमातम प्रभु परम अनूप॥
निराकार निरगुन निरबासी।
आदि निरंजन अज अविनासी॥
(दया बोध पृ० १४ पद ३६)

२. आवन जान बनें नहीं यह सब माया रूप।
मन बानी हग सूं अगम ऐसो तत्व अनूप॥
(दया बोध पृ० १२ पद २५)

३. अनंत भान उँजियार तहँ प्रगटी अद्भुत जोत।
चकचौंधी सी लगत है मनसा सीतल होत॥
(दया बोध पृ० १२ पद २०)

४. दया बोध पृ० १२ पद २०

५. दया बोध पृ० १२ पद २२

६. विनय मालिका पृ० १ से ५ तक

७. "दया" कह्यो गुरुदेव ने कूरम को व्रत लेहि।
सब इन्द्रिन कूं रोकि करि सुरत स्वांस में देहि॥
(दया बोध पृ० १० पद ६)

रखने से ही ब्रह्म का दर्शन किया जा[1] सकता है। अजपा जाप से तीनों ताप मिट जाते हैं। इसके द्वारा सुरति पाताल में पहुँचती है तत्पश्चात् आकाश में चढ़ने लगती है। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती है त्यों-त्यों घटा, मृदंग तथा मुरली के शब्द सुनाई देने लगते हैं। इनके अनुसार अनहद श्रवण ही साधक का मुख्य लक्ष्य है। संक्षेप में यह सुरति शब्द योग है जिसकी साधना पलटूदास ने की थी।

गरीबदास

गरीबदास का जन्म वैसाख सुदी पूर्णिमा सम्वत् १७७४ में रोहतक जिला की झज्झर तहसील में स्थित छुड़ौनी ग्राम में हुआ था। इनके माता-पिता का नाम ज्ञात नहीं है। ये जाति के जाट थे और एक जमींदार थे। कहा जाता है कि इन्हें स्वयं कबीरदास ने दीक्षित किया था। गरीबदास विवाहित थे और इन्होंने कभी भी साधु वेश नहीं धारण किया। गृहस्थ-जीवन में ही इन्होंने साधना की। ६१ वर्ष की आयु भोगकर सम्वत् १८३५ में इन्होंने शरीर छोड़ा। छुड़ानी में फागुन सुदी १० को एक मेला लगता है जिसमें इस मत के अनुयायी भाग लेते[2] हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इन्होंने कबीरदास को अपना गुरु घोषित किया था। यद्यपि इस कथन पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता, परन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इन्होंने कबीरदास को अपना पंथ-प्रदर्शक माना है और पलटूदास की भांति ही उनसे अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं।

गरीबदास का ब्रह्म अगम तथा निराकार है। वह आदि, अन्त तथा मध्य के परे है[3]। वह अगाध, अविनाशी, कर्तार, निर्भय तथा निश्चल है। इस संसार में ब्रह्म को छोड़कर और कुछ नहीं है। वह सर्वव्यापी है। उस ब्रह्म का कोई मोल-तोल नहीं है। वह न हल्का है, न भारी[4]। वह किसी विशेष रंग का भी नहीं है। अतः वह अनिर्वचनीय है। वह ब्रह्म 'सुन्न सिखर' के महल में रहता है जो गगन मण्डल में है[5]।

---

१. स्वांसउ स्वांस विचार करि राखं सुरत लगाय।
  "दया" ध्यान त्रिकुटी धरे परमातम दरसाय॥ (दयाबोध पृ० १० पद ५)

२. गरीबदास की बानी—जीवन-चरित्र।

३. सजन सलोना राम है अचल अभंगी एक।
  आदि अन्त जाके नहीं ज्यों का त्यों ही देख॥
  (गरीबदास जी की बानी पृ० २५ पद ८०)

४. गरीबदास जी की बानी पृ० २५-२६

५. पांच तत्त के महल में नो तत का इक और।
  नो तत से इक अगम है पारब्रह्म की पौर॥
  (गरीबदास जी की बानी पृ० ३८, पद ४)

इनकी साधना भी सुरति शब्द योग पर आधारित है। ब्रह्म की विरहानुभूति के जगने पर इसी के द्वारा साधक सत्तलोक या अमरपुर जाता है। सुरति, निरति, मन और पवन, इन चारो का एकीकरण करने से ब्रह्म प्राप्त होता है[1] है। बिना इसके शिव-द्वारा खुल नहीं सकता और न चौदह घरो में ही साधक जा सकता[2]। इसी को इन्होंने अजपा जाप और नाम-स्मरण भी कहा है। उस अविनाशी का नाम स्मरण गगनमण्डल पर ध्यान रखकर किया जाता है।[3] इस जाप मे जीभ नहीं हिलती, इन आँखों से उसके दर्शन नही होते और इन कानों से शब्द नही सुना जाता है।[4] बिना इसके जप, तप, सयम तथा ध्यान भगवान की प्राप्ति में सहायक नहीं सिद्ध होते[5]। इन्होने उस निर्गुण के प्रति भक्ति को प्रधान माना है और इतना तक कहा है कि भक्ति तथा नाम-स्मरण के द्वारा ही पापियों का उद्धार होना सम्भव है।[6]

इनके ऊपर कबीर पंथ का अधिक प्रभाव है। ब्रह्म का निवास-स्थान इन्होंने सत्त लोक या अमरपुर माना है—

दास कबीर कबीर का चेरा।
सत्त लोक अमरपुर डेरा॥ (गरीबदास जी की बानी पृ० ११ पद २३)

परन्तु इन्होने सत्गुरु को तेजपुंज अनिर्वचनीय तत्व कहा है—

ऐसा सत्गुरू हम मिला तेज पुंज को अंग।
झिलमिल नूर जहूर है रूप रेख नहि रंग॥
(गरीबदास जी की बानी पृ० ११ पद २३)

---

१. सुरत निरत मन पवन कूं करो एकत्तर यार।
द्वादस उलट समोय ले दिल अन्दर दीदार॥
(गरीबदास जी की बानी पृ० ३० पद ५)

२. चार पदारथ महल में सुरत निरत मन पौन।
सिव द्वारा खुलिहैं जबै दरसं चौदह भौन॥
(गरीबदास जी की बानी पृ० ३० पद ६)

३. अविनासी निःचल सदा करता कूं कुरबान।
जाप अजपा जपत है गगन मंडल धर ध्यान॥
(गरीबदास जी की बानी पृ० २२ पद ४४)

४. बिन रसना हूं बन्दगी बिन चासमे दीदार।
बिन तरबन बानी सुनै निर्मल तत्त निहार॥
(गरीबदास जी की बानी पृ० २२ पद ४५)

५. गरीबदास जी की बानी पृ० १३ पद ४७

" " " पृ० २७ पद १

इन्होंने पलटूदास की भांति कबीर की रचनाओं को ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया है और उनका विस्तारण भी किया है—

कबीर नौबति आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखो आय॥[1]

इसको गरीबदास ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

ये पुर पट्टन ये गली बहुरि न देखौ आय।
सतगुरु सो सौदा हुआ भर ले माल अघाय॥
ये पुर पट्टन ये गली बहुरि न देखे आय।
सतगुरु सो सौदा हुआ लीजै माल लदाय॥[2]

और कहीं पर कबीरदास का भाव ग्रहण किया है—

सेमर सुअना सेइया दुइ ढेढ़ी की आस।
ढेढ़ी फूटी चटाक से सुअना चला निरास॥[3]

गरीबदास के शब्दों में वह इस प्रकार है—

सूआ सेमर सेइया बारह बरस बिसास।
मस्त चोंच खाली पड़ी, डाडे बीच कपास॥[4]

पलटूदास तथा गरीबदास के पद भी मिलते हैं। पलटूदास का यह पद देखिए—

धुआं कौ धौरेहर हो बालू कै भीत।
पवन लगे भरि जैहै हो तृण ऊपर सीत॥[5]

गरीबदास ने भी कुछ इसी प्रकार कहा है—

धुआं का सा धौर हैर, बालू की सी भीत।
उस साँविद को याद कर, महल बनाया सीत॥[6]

दूलनदास

संत दूलनदास का जन्म ग्राम समेसी जिला लखनऊ में एक जमींदार कुल में हुआ था। ये जाति के सोमवंशी ठाकुर थे। वैराग्य उत्पन्न होने के पश्चात् सरदहा गए जहाँ पर जगजीवन साहब से दीक्षा लेकर उन्हीं के साथ कोटवा चले गए।

१ कबीर ग्रंथावली पृ० २०, पद १
२. गरीबदास जी की बानी पृ० ५१-५२, पद १३-१४
३. कबीर साहब का बीजक पृ० १०१
४. गरीबदास जी की बानी पृ० ३, पद २२
५. पलटू साहिब की बानी भाग ३, पृ० १३ पद ३०
६ गरीबदास जी की बानी पृ० ३, पद २६

दूलनदास ने जिला रायबरेली में धम्मे नामक एक गांव बसाया और जीवनपर्यन्त वहीं बने रहे। ऐसा कहा जाता है कि ये थोड़े वर्ष अठारहवीं शतक विक्रमीय के पिछले भाग में और विशेष काल तक उन्नीसवीं सदी विक्रमीय के अगले भाग में विद्यमान थे। इसी आधार पर इनका जन्म-सम्वत् १७१७ और मृत्यु-सम्वत् १८३५ के आस-पास मानी गई है। इनकी रचनाओं का एक संग्रह बेलविडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

दूलनदास ने ब्रह्म को साहब[1] कहा है। उनका यह साहब कहीं दूर नहीं रहता, बल्कि वह सबके पास ही है। वह जल, थल तथा प्रत्येक के घट में व्याप्त है।[2] अलख है। साराश यह है कि उनका ब्रह्म-वर्णन संत मत के अनुकूल है।

परन्तु उन्होंने वैष्णव भक्त की भांति ब्रह्म को सगुण मानकर उसकी प्रार्थना भी की है। उन स्थलों को देखने से ज्ञात होता है कि इनकी साधना पर वैष्णव धर्म की पूरी छाप है। इतना ही नहीं, उन्होंने हनुमान जी की वन्दना की है और तुलसीदास की भांति हनुमान से सहायता की अपेक्षा भी की है।[3]

दूलनदास ने नाम-स्मरण को विशेष महत्त्व प्रदान किया है और इसी को साधना की आधार-शिला माना है[4]। इसी नाम की डोरी को पकड़कर साधक गगन की अटारी पर पहुँच सकता है। इनकी साधना-पद्धति सुरति शब्दयोग से सम्बन्धित है।

पानपदास

सत पानपदास का जन्म सम्वत् १७७६ में ब्रह्म भट्टकुल में हुआ था। ऐसा भी कहा जाता है कि ये बीरबल के वंशज थे और इनका जन्म-स्थान दिल्ली के आस-पास था। दुर्भिक्ष के कारण इनके माता-पिता ने इनको त्याग दिया और किसी तिरधान जाति के एक व्यक्ति ने इनका पालन-पोषण किया। वहीं पर इनको थोड़ी-सी शिक्षा मिली, परन्तु अन्त में इन्होंने राजगीर का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। सयोगवश इनको मगनीराम के दर्शन हुए और उनसे प्रभावित होकर उन्हीं से दीक्षित हो गए। सिद्ध होने के पश्चात् अपने गुरु से आज्ञा लेकर दिल्ली चले गए और वहीं पर अपने मत का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। इनकी गद्दी धामपुर जिला बिजनौर में है। इससे कहा जा सकता है कि धामपुर ही इनका जन्म-स्थान था। इनके चार शिष्यों का पता लगता है। उनके राम मतसादास, काशीदास, चूहड़दास

१. दूलनदास जी की बानी पृ० १ पद १
२.　　,,　　पृ० २५ पद १
३.　　,　　पृ० २६ पद ५
४.　　,,　　पृ० २८-२६

तथा बुद्धिदास कहे जाते हैं। इनकी मृत्यु सम्वत् १८३० की फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को हुई थी।[1] श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' में इनके द्वारा लिखित कई पुस्तकों का नाम लिखा है, परन्तु धामपुर से परमानन्द ने इनकी एक रचना 'सुधमवेद' छपवाई है।

इस पुस्तक मे पानपदास की रचनाएँ शब्दियों मे विभाजित हैं जो दोहे में लिखी गई हैं। इसमें अरिल्ल, फारसी, कडका, भूलना, सवैया, कवित्त, दोहा तथा चौपाई आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। बसन्त, होली तथा राग मेख का भी समावेश है। कुछ रचनाएँ संस्कृत में भी हैं, परन्तु उनकी शुद्धता सदिग्ध है।

पानपदास परम तत्व के निरूपण मे अद्वैती ज्ञात होते हैं। उन्होने ब्रह्म को पूर्णब्रह्म[2] हरि[3] तथा अमूर्त[4] अलख[5] तथा अरूप के[6] नाम से सम्बोधत किया है। वह ब्रह्म सब घटों मे समान रूप से ब्याप्त है। अतः उसकी प्राप्ति घट के भीतर खोजने से ही हो सकती है।[7] आतम राम ही ब्रह्म है।[8] वह ब्रह्म "अगम सूरत" नामक स्थान पर निवास करता है।[9]

इनकी साधना में पवन शोधन का मुख्य स्थान है। प्राणायाम द्वारा मूल बन्ध को शोधने के पश्चात् सुरति को उर्ध्वमुख करने पर सतगुरु की कृपा से अलख तथा अरूप ब्रह्म का दर्शन मिल सकता है।[10] वहीं पर आकाश मे बिना बत्ती तथा तेल के ही एक प्रज्वलित दीप दृष्टिगोचर होता है। वह दिन-रात जला करता है।[11] योग का मुख्य कार्य मन को थकाना है क्योंकि मन की चचलता के कारण ही सुरति अस्थिर हो जाती है।[12] यह कार्य धोती नेती करने से नहीं हो सकता।[13] इससे स्पष्ट है कि इन्होने हठयोग की प्रारम्भिक क्रियाओं को व्यर्थ माना है।

१. उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा पृ० ६११ से ६१३ तक
२. सुधमवेद पृ० १ पद ६
३. ,, पृ० १ पद ८
४. ,, पृ० १ पद १६
५. ,, पृ० १ पद १६
६. ,, पृ० १ पद १०
७. ,, पृ० २ पद १२
८. ,, पृ० २ पद १३
९. ,, पृ० २ पद १९
१०. ,, पृ० २ पद ११
११. ,, पृ० ६३ पद २२
१२. ,, पृ० ६३ पद २४
१३. ,, ज्ञान की शब्दी

पलटूदास की भांति ही प्रानपदास ने वाक्य ज्ञान को शुद्ध ज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा है। उनके अनुसार ज्ञान तथा ध्यान दोनों एक ही हैं। ये दोनो ही हरि के मिलने के रास्ते हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ तथा तृष्णा इत्यादि विकारों को त्यागकर सुरति को निरति में लीन करना ही वास्तविक ज्ञान कहा जा सकता है।[1]

प्रानपदास ने नारदी भक्ति को प्रधानता दी है। इनके अनुसार गाना तथा पुस्तक पढ़ना भक्ति की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते, बल्कि मन को एकाग्र करके अन्तर की ध्वनि को सुनना ही भक्ति है। इसमे प्रेम की प्रधानता है। तीर्थ-व्रत करने या नियमों का पालन करने से भगवान नही मिलता। इसके लिए अनन्य प्रेम की आवश्यकता है। प्रेम के पथ पर चलने वाले पथिक को अपना सिर हाथ पर लेकर चलना पड़ता है। अत: यह कार्य कोई सूरमा ही कर सकता है।

---

१. सुषमवेद प्रेम की शब्दी

सप्तम अध्याय

संत पलटूदास का स्थान तथा उनकी देन

१. पलटू-साहित्य का साहित्यिक रूप
२. पलटू-साहित्य में जन-जीवन
३. देन

पलटू साहित्य का साहित्यिक रूप

पलटूदास एक संत थे और उन्होंने जो कुछ लिखा कवि बनने के उद्देश्य से नही लिखा। अतः इस साहित्य में काव्य के गुणों का अभाव विशेष महत्व नही रखता। काव्य मे भाषा तथा भाव दो पक्ष होते हैं। एक मे शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास तथा अलकार इत्यादि प्रधान रहते हैं और इन्ही से काव्य मे चमत्कार आ जाता है। दूसरे में भाव की गम्भीरता रहती है। इस प्रकार के काव्य मे कवि चमत्कार लाने का प्रयत्न नही करता, अपितु भाव-पक्ष पर अधिक बल देता है। अलंकार भाषा पक्ष को अलंकृत करते हैं और दूसरा भावानुभूति को सामने लाता है। परन्तु यह काम एक कवि का है, संत का नही।

पलटूदास का अधिकांश काव्य शांत-रस प्रधान है और उस अव्यक्त ब्रह्म का वर्णन स्वयं दुरूह तथा अनिर्वचनीय होने के कारण साधारणतः न तो शृङ्गार काव्य की भांति आकर्षक होता है और न मनोरंजनार्थ सरल ही। इसीलिए इनके काव्य मे कबीर की भांति एक ही बात को नाना प्रकार से कहने की शैली मिलती है। उस ब्रह्मानुभूति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया, उपमा, रूपक तथा प्रतीकों का सहारा लिया गया फिर भी वह अनिर्वचनीय ब्रह्म अनिर्वचनीय ही रहा। भाषा सहायता नही दे सकी।

तुलसी ने स्वान्तःसुखाय काव्य-रचना की थी। वीरगाथाकालीन कवियों ने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया था। रीतिकाल मे विलास-प्रिय राजाओं को प्रसन्न करने के लिए शृङ्गार-रस का सहारा लिया गया था। इन कवियों का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन करना था। पलटूदास एक संत थे। अतः न तो उनको धन की आवश्यकता थी और न यश तथा कीर्ति की। अपने हृदय की अनुभूति को जनता तक पहुँचाना उनका मुख्य उद्देश्य था न कि काव्य-सौष्ठव तथा चमत्कार लाकर एक सफल कवि बनने का अभिनय करना। पलटूदास ने कवि की पहचान भी बतलाई है। उन्होने उसी को सच्चा कवि माना है जो बिना कागज, अक्षर तथा स्याही के ही काव्य की रचना कर दे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, ब्रह्मानुभूति का वर्णन एक साधारण काम नहीं है। उसकी प्राप्ति के उल्लास के वर्णन में एक विवशता छिपी है। स्थूल जीभ

उसका वर्णन नहीं कर सकती। बार-बार एक ही वस्तु का वर्णन नाना प्रकार से करने का एकमात्र यही कारण है कि उस अनिर्वचनीय ब्रह्मानुभूति को स्पष्ट कर दिया जाए। परन्तु ऐसा करने में सर्वदा असमर्थता ही हाथ लगी है क्योंकि भाषा तथा काव्य-कौशल इसमे रंचमात्र भी सहायता नहीं कर पाते। इन्द्रियो के परे की वस्तु का वर्णन स्थूल इन्द्रियाँ कैसे कर सकती है।

रहस्यवाद

प्राचीनकाल से ही मानव-मस्तिष्क इस संसार तथा इसके नियन्ता के विषय में सोचता रहता है। उस अदृश्य, अगम्य तथा अव्यक्त शक्ति के समस्त भेदों को जानने की इच्छा तथा उसको प्राप्त करने की अभिलाषा सदैव जाग्रत रही है। परन्तु वह इस दिशा में सर्वथा असमर्थ ही रहा है। जिस प्रकार परम ब्रह्म की सत्ता तथा कार्य-कलाप गूढ़ हैं उसी प्रकार उसका वर्णन भी रहस्यमय है।

ब्रह्म का चिन्तन मनन के बल पर किया जाता है। नाना प्रकार के तर्कों के सहारे इस पर विचार किया जाता है। ब्रह्म ज्ञानी तर्क, ज्ञान तथा बुद्धि के सहारे ब्रह्म और जीव की एकता को सिद्ध करता है। इसलिए उसे अद्वैतवादी कहा जाता है। स्वामी शंकराचार्य का अद्वैतवाद पूर्णरूपेण ज्ञान पर टीका है और इसका सम्बन्ध हृदय या मन से नहीं है। जब साधक बुद्धि, तर्क या ज्ञान का आश्रय न लेकर भावना तथा कल्पना के सहारे उस अपार शक्ति में अपने अस्तित्व को विलीन कर देता है वहीं रहस्यवाद का सृजन समझना चाहिए। अत: 'रहस्यवाद' जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमे वह दिव्य तथा अलौकिक शक्ति से अपना शान्त तथा निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है।" (डॉ. रामकुमार वर्मा)

रहस्यवाद शब्द नया है, परन्तु इस प्रकार की रचनाएँ भारतीय-साहित्य में प्राचीनकाल से ही उपलब्ध हैं। वेदों तथा उपनिषदों[२] में भी इस प्रकार की भावना पाई जाती है। सिद्ध तथा नाथ-साहित्य में इसकी प्रचुरता है। उनका रहस्यवाद साधना के विविध गुह्य रहस्यो का प्रतीकात्मक शैली मे व्यक्त करने तक ही सीमित है। ईड़ा-पिंगला इत्यादि नाड़ियो का वर्णन, कुण्डलिनी, उत्थापन तथा अन्य साधनात्मक जटिलताएँ उनके वर्ण्य विषय थे।

हिन्दी-साहित्य में रहस्यवाद का वास्तविक स्वरूप कबीर-साहित्य मे मिलता है। वर्ण्य-विषय को लेकर रहस्यवाद दो प्रकार का कहा गया है। जिसमे साधना सम्बन्धी तथ्यों का वर्णन प्रतीक पद्धति पर किया जाता है उसे साधनात्मक रहस्यवाद

---

२. आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातु मर्हति॥

(कठोपनिषद् १।२-२१)

कहा जाता है। प्राचीनकाल मे योगियो तथा नाथपंथियों आदि का रहस्यवाद साम्प्रदायिक रूढियो पर आधारित होने के कारण इसी के अन्तर्गत आता है। इसके विपरीत जहाँ जीव तथा ब्रह्म का मानसिक अद्वैत स्थापित किया जाता है वहाँ भावात्मक रहस्यवाद होता है। कबीरदास की रहस्यवादी रचनाएँ दोनो प्रकार की हैं। उनके समय हठयोग की क्रिया का भी प्रचलन था और उनके ऊपर इसका प्रभाव भी था। ईडा, पिंगला सहस्र दल कमल, कुडलनी इत्यादि का प्रचुर रहस्यात्मक वर्णन इनकी रचनाओ में मिलता है। अपने को राम की बहुरिया[1] तथा 'हमारे घर आए राजा राम भरतार[2]' कहकर उन्होने जीव तथा ब्रह्म का मानसिक तथा भावात्मक सम्बन्ध स्थापित कर भावात्मक रहस्यवाद का मिश्रण किया है।

ब्रह्म और जीव का वर्णन करते समय यह कठिनाई उपस्थित होती है कि इस अस्पष्ट का वर्णन किस प्रकार स्पष्ट रूप मे किया जाए ताकि भाव पाठक तथा श्रोता द्वारा ग्रहण कर लिया जाए। अद्वैत की यह अनुभूति भावात्मक होने के कारण 'गूगे के गुड' के सदृश अनिर्वचनीय हो जाती है। आनन्द का अनुभव करते हुए भी उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। ऐसी दशा मे भाषा उस भाव को व्यक्त करने मे सर्वथा असफल तथा असमर्थ हो जाती है और एक ही वस्तु का वर्णन स्पष्ट करने के लिए उसे विभिन्न प्रकार से कहना पडता है। संतो का वर्ण्य-विषय इन्द्रियो से परे है, जिसका केवल अनुभव किया जा सकता है। ऐसे वर्णन बहुधा प्रतीको के सहारे ही किए जाते हैं। "संतों के सम्बन्ध मे जिस रहस्यवाद की चर्चा की जाती है वह स्वानुभूति की अस्फुट अभिव्यक्ति के कारण ही अस्तित्व में आता है॥"[3]

पलटूदास की रचनाओं मे जो रहस्यवादी पद मिलते हैं वे कुछ नाथ तथा सिद्ध सतों की भांति साधना से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ सूफियो के भावना सम्बन्धी मधुर रस से। परन्तु यह भावना न तो उन्हें सिद्धों से मिली है और न सूफियो से। वे कबीर से अनुप्राणित थे। अतः रहस्यवादी रचनाओ में उनका सीधा सम्बन्ध कबीर से ही ज्ञात होता है।

नाथ-पथ का रहस्यवाद मुख्यतः साधना से सम्बन्ध रखता है। इस पंथ की साधना कुंडलनी पर आधारित थी। अतः इस साहित्य मे कुडलनी, मेरुदण्ड, इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना का ही वर्णन रहस्यवादी पद्धति पर किया गया है। कबीर ने

---

१. कबीर ग्रन्थावली पृ० १२५ पद ११७
२. ,, पृ० ८७ पद १
३. सन्त काव्य (श्री परशुराम चतुर्वेदी) पृ० ५६

हठयोग की क्रियाओं को क्लिष्ट ठहराया था और चरित्र-प्रवणता, मन की शुद्धता तथा हृदय की निष्कपटता पर बल दिया था। इस प्रकार की साधना को उन्होंने सहज साधना या सहज समाधि की संज्ञा दी थी।[1] प्रायः ऐसा देखने में आता है कि उनके परवर्ती अधिकांश संतों ने हठयोग की क्लिष्ट पद्धति का बहिष्कार किया। फिर संत साहित्य इस प्रकार के वर्णन से अछूता न रहा। पलटूदास ने "करै हठयोग अनारी"[2] कहकर हठयोग का तिरस्कार तो किया, परन्तु परम्परागत पद्धति से प्रभावित भी हुए। उन्होंने सूर्य, चन्द्र, शिव तथा शक्ति[3] का जो वर्णन रहस्यवादी पद्धति पर किया है तथा उलटबासियों के रूप में आग में पानी, पानी में जंगल तथा बकरी द्वारा शेर के चराए जाने की चर्चा की[4] है, इस प्रकार के समस्त वर्णन साधनात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

सूफी साधना मुख्यतः प्रेम पर आधारित है। परमात्मा इन्द्रियगम्य नहीं है, क्योंकि वह भौतिक जगत से बाहर है। बुद्धि से वह प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि वह तर्क से परे है। पुस्तक का ज्ञान जानकर नहीं हो सकता क्योंकि पुस्तकों में वह नहीं छपा है। अतः सूफियों के अनुसार वही मनुष्य ब्रह्म को जान सकता है जिसने अपने को पहचान लिया हो क्योंकि परमात्मा का राज्य हृदय के भीतर है[5]। संतों की साधना में मस्तिष्क का भी योग है। वह ज्ञान से प्रारम्भ होती है। सूफियों का रहस्यवाद ब्रह्म तथा जीव की गवेषणा के पश्चात् प्रारम्भ होता है। वह हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नहीं। इसलिए उसमें मधुर भाव का समावेश होता[6] है।

इस साधना की तीन अवस्थाएँ कही जा सकती हैं। प्रथम जिज्ञासा वाली अवस्था है, जिसमें साधक किसी गुरु की शरण में जाता है जहाँ पर गुरु के प्रवचन या सत्संग के द्वारा उस तत्त्व की प्राप्ति के लिए वातावरण तैयार होता है। साधक में इस संसार के प्रति विराग तथा उस तत्त्व को प्राप्त करने के लिए व्यग्रता तथा उत्कंठा पैदा हो जाती है। वह अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए कष्ट तथा अपमान तक भी सहन करने के लिए तैयार होता है। दूसरी अवस्था में उसे क्रमशः उस परम तत्त्व की अनुभूति मिलती जाती है और तब साधक आनन्द-विभोर हो

१. 'साधो सहज समाधि भली।'

(कबीर साहब की शब्दावली भाग १ पृ० १६ शब्द ३०)

२. पलटू साहब की बानी भाग १ पृ० २४ पद ५६

३. " " " पृ० १०४ पद २५३

४. पलटू साहब की शब्दावली पृ० २० पद ६५.

५. सूफी मत, साधना और साहित्य पृ० ३०६

६ रहस्यवाद—डा० रामरतन भटनागर भूमिका पृ० १६

जाता है। वह उसका वर्णन करना चाहता है, परन्तु उसकी वाणी उसके लिए सर्वथा अशक्त सिद्ध होती है। यही वह स्थिति है जिसका वर्णन अनिर्वचनीय होता है। तृतीयावस्था मे साधक सिद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है। इस अवस्था मे उसका मन शान्त हो जाता है। इसी अवस्था को सूफी 'फना' की अवस्था कहते हैं।[1]

पलटूदास की साधना मे भी इन तीनो अवस्थाओं का समावेश है। साधना की प्रथम अवस्था मे गुरु का शब्द सुनकर ही उनकी मृत्यु हो गई थी[2]। सद्गुरु ने ऐसे तीखे-तीखे बाण चलाए कि इनका बचना कठिन हो गया[3]। इसीलिए इन्होने गुरु की महत्ता को स्वीकार किया है और पार उतरने के लिए सद्गुरु रूपी मल्लाह को खोजा[4] है। सद्गुरु के मिलने पर ही उनके मन की आशा पूरी हुई थी[5]।

अन्य संतों की भांति पलटूदास ने भी उस अरूप तथा निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपनी आत्मा की तीव्र अनुभूति व्यक्त करने के लिए स्त्री-पुरुष के लौकिक प्रेम को प्रतीक रूप में ग्रहण किया है। जिस प्रकार एक स्त्री अपने प्रियतम को पाने के लिए व्यग्र तथा व्याकुल हो जाती है उसी प्रकार चिर-परित्यक्ता आत्मा भी अपने प्रियतम ब्रह्म को पाने के लिए चिन्तित तथा उत्कंठित रहती है। यही विरहानुभूति साधना का उत्कर्ष है।

पलटूदास ने लिखा है कि "जब मैं पपीहे की बोली सुनती हूँ तो मेरा हृदय फट जाता है। मैं चौंक पड़ती हूँ और मेरा हृदय धड़कने लगता है। मुझे बराबर अपने प्रियतम की चिन्ता बनी रहती है।"[6] उनकी आत्मा व्यग्र हो जाती है और उसे पाने के लिए वे परम व्याकुल दिखाई देते हैं। उनकी आत्मा रोकर कहती है कि "मैं तो अब वैराग्य से भर गई हूँ। मेरी आँखों से निरन्तर जल प्रवाहित होता है और बराबर मुख से राम-नाम का उच्चारण होता है। विरह मुझे जला रहा[7] है।

फिर वह कहते हैं "मुझे अपने प्रियतम की खबर नहीं मिली। आषाढ़ चढ़ गया और ऐसे समय में अपने प्रियतम के अभाव मे पागल बन गई हूँ।[8] विस्मृति की अवस्था मे वे कहते हैं कि "मैं अपने प्रियतम के सामने घूँघट को खोल दूँगी,

---

१. कबीर-साहित्य की परख (श्री परशुराम चतुर्वेदी) पृ० ११६
२. पलटू साहिब की बानी भाग १ पृ० ४३-४४ पद १०४-१०५
३. ,, ,, भाग ३ पृ० ८४ पद ४
४. ,, ,, भाग १ पृ० ३ पद ६
५. ,, ,, भाग १ पृ० १ पद १
६. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० २ पद ६
७. ,, ,, पृ० ४ पद १३
८. पलटू साहब की बानी भाग ३ पृ० ६४ पद ११३

लोक-लज्जा को तिलांजलि दे दूँगी और भेंट होने पर अपने प्रियतम से हँस-हँसकर वार्तालाप करूँगी[1]।

फिर तो विरह अपने उत्कर्ष पर पहुँचता है। अपने प्रियतम को पाने के लिए नींद नहीं आती, खाना-पीना सब छूट जाता है। मन उस पर मोहित हो गया है। रात-दिन जागरण में ही बीतता है।[2] निरन्तर उसका ध्यान धारण करते हुए तथा नाम-स्मरण करते-करते जीभ में छाले तक पड़ गए। रास्ता देखते-देखते आँखें शिथिल हो गईं। वे कहते हैं कि विरहाग्नि प्रचण्ड रूप से प्रज्वलित हो गई, पर मेरा बेदर्दी प्रियतम मेरे दर्द को नहीं समझ पा रहा है। उसके वियोग में मैं अपनी जान की बाजी लगा दूँगी और उसके न मिलने पर विष का प्याला पी लूँगी[3]।"

प्रियतम के मिलने पर साधक की द्वितीयावस्था प्रारम्भ होती है। वह अपने प्रियतम के रूप का वर्णन करना चाहता है, परन्तु उसकी वाणी सर्वथा अशक्त हो जाती है। पलटूदास ने उस रूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि मैंने अपने साजन को देख लिया। उसका रंग श्वेत है। वह रूप, रंग तथा रेखविहीन है। वह अलेख है, परन्तु मैंने दिव्य चक्षुओं से उसे देख लिया है। वह गगनगुफा में बोलता[4] है।" फिर वे कहते हैं कि "मैंने उस रूप को देखा है। मैं तृप्त हो गई। भूख-प्यास मिट गई। तन तथा मन की विस्मृति हो गई और मैं अपने ही अपने में समा गई[5]।

इसके अनन्तर साधक की तृतीयावस्था आती है जब उसका प्रियतम मिल जाता है तब उसे सन्तोष होता है तथा शान्ति मिलती है। यह आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है। समस्त इन्द्रियाँ अन्तर्मुख हो जाती हैं और सुरति भी शब्द में मिल जाती है। पलटूदास ने इस मनोदशा का वर्णन स्पष्ट शब्दों में किया है। वे कहते हैं कि अब मेरा मन आलस्यपूर्ण हो रहा है। मुझसे बोला तक नहीं जाता। देहरी तक जाना उतना ही दुरुह है, जितना पर्वत का लांघना। आंगन विदेश तुल्य हो गया है। मट्ठा जल गया है और केवल घी शेष रह गया है। मेरी शक्ति नहीं के बराबर है। अब मैं दूसरे के हाथ बिक गई हूँ। जिस प्रकार नमक की डली पानी में मिल जाती है और जल से उसका पृथक् अस्तित्व नहीं रहता। वह गलकर तद्वत् हो जाती है, उसी प्रकार मेरी भी दशा हो गई है। मैं इस दशा का कैसे वर्णन

१. पलटू साहब की शब्दावली पृ० १ पद १
२. पलटू साहब की बानी भाग ३ पृ० २८ पद ६२
३. पलटू साहब की शब्दावली पृ० ३ पद १८
४. " " पृ० ५ पद १८
५. " " पृ० ४ पद १५

कहूँ। यह वर्णनातीत है। गूंगे के गुड़ की भांति अनिर्वचनीय[1] है। दूसरे स्थान पर इसी मनोदशा का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है कि "मुझे 'सत' ने बेध रखा है। मैं इसे किससे कहूँ। मेरे शरीर के रोम-रोम से नाद उठ रहा है और ससार की गति विनष्ट हो रही है मेरे शरीर मे रोमाच हो आया है और उस वस्तु को ओर टकटकी लगी हुई है। मुख से वचन नही निकलता। इस अनिर्वचनीय आश्चर्य को किसमे कहा जाए। इसको वही जान सकता है जिसने देखा है। खोजने वाला ही भूल गया तो वह अपने को कैसे सम्भाल सकता है।"[2]

पलटूदास ने कबीर की भाति सूफी-साहित्य मे पाई जाने वाली प्रबध-कल्पना का सहारा नही लिया है, बल्कि उनकी बानियों मे यत्र-तत्र रहस्यवादी पद बिखरे पड़े है। पलटूदास की अनुभूति शब्द पर टिकी हुई है और ऐसा ज्ञात होता है कि कबीर की अनुभूतियो मे इनकी अनुभूतियो का अधिक साम्य है।

रस

पलटू-साहित्य प्रबन्ध-काव्य के रूप मे नहीं है। अतः उसमे सब प्रकार के रसों का समावेश नहीं हो सका है। इनका वर्ण्य-विषय अध्यात्म-प्रधान है। अतः इसमे शान्त-रस की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त शृङ्गार-रस का नाम लिया जा सकता है जिसमें आत्मा तथा परमात्मा की मधुर मिलन की कल्पना तथा वियोग की दशा का वर्णन रहस्यात्मक ढंग पर किया गया है। शेष रसों मे वीर रस तथा अद्भुत रस की प्रधानता है। अन्य रस यदा-कदा ही मिल सकते हैं। पलटू-साहित्य मे पाए जाने वाले रसों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

शान्त-रस

यह संसार सराय है, सब लोग मुसाफिर,
आज काल में कूच है, कोऊ नाहीं थिर।
मातु पिता सुत बन्धुआ, जैसे रैन का सपना,
हंस अकेला जाएगो कोऊ नाहिन अपना।
जिया वर्ष हजार तूं आखिर फिर चलना,
कोड़ी नाहीं संग एक नाहक पचि मरना।
फूटे घट में नीर ज्यों, छिन-छिन छीजे काया,
देखत के साथी सबै जग झूठी माया।

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ४१ पद ८६
२. ,, ,, भाग ३ पृ० ४१ पद ८७

पलटूदास सब छोड़ि कै सतसंगति कीजै,
दिन चार की जिन्दगी टुक हरि भजि लीजै ।
(पलटू साहब की शब्दावली पृ० ६१ पद २६७)

२. हरि सों करु प्रीति नर मूढ़ गवारा ।
गर्भ बास में भक्ति कौल किहेउ बाहर ग्रानि भुलाना ॥
सुत दारा निरखत हरखाना प्रभु को मर्म न जाना ॥
कौड़ी कौड़ी द्रव्य बटोरी मिथ्या सब विस्तारा ॥
तोरि लिहेउ कटिहुं को धागा, छूटि गयो संसारा ॥
जौने साहु कै पूंजी ले ग्रायहुं लेखा ग्रानि पसारा ॥
मूर ब्याज एकौ नहिं पल्हें हाथन कहा बिचारा ॥
साहनशाह भये ग्रब पलटू भक्ति किहा निरधारा ॥
ग्रबकी बार जजाल गयो है सतगुरु पूर हमारा[1] ॥

३. कै दिन का तोरा जियना रे, नर चेतु गँवार । (टेक)
काची माटि कै घैला हो, फूटत नहिं बेर ।
पानी बीच बतासा हो, लागे गलत न देर ॥१॥
धूंग्रा को धौरेहर हो, बारू कै भीत ।
पवन लगे भरि जैहैं हो, तृन ऊपर सीत ॥२॥
जस कागद कै कलई हो, पाका फल डार ।
सपने के सुख-सम्पत्ति हो, ऐसो संसार ॥३॥
पनै बास का पिंजरा हो, तेहि बिच दस द्वार ।
पंछी पवन बसेरु हो, लावै उड़ैत न बार ॥४॥
ग्रातसबाजी यह तन हो, हाथे काल के ग्राग ।
पलटूदास उड़ि जैबहुं हो, जब दंईहिं दाग[2] ॥५॥

४. हाथी घोड़ा खाक है, कहे सुनै सो खाक ।
कहे सुनै सो खाक, खाक है मुलुक खजाना ।
जोरु बेटा खाक, खाक जो साचै माना ।
महल ग्रटारी खाक, खाक है बाग बगीचा ।
सेत सपेटी खाक, खाक है हुक्का नैचा ।
साल दुसाला खाक है, खाक मोतिन कै माला ।
नौबतखाना खाक, खाक है ससुरा साला ।

१. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० १५४ पद ४३७
२. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० १३ पद ३०

पलटू नाम खुदाय का, यही सदा है पाक।
हाथी घोडा खाक है कहै सुनै सो खाक[1] ॥

५. गोरख डारा कूप महै लै दरब को,
बारह बरस सुकदेव तजा ना गरम को।
दत्तात्रय सनकादि माया तजो केतनो,
अरे हाँ पलटू बड़े खेलाड़ी यार हमारे श्रोतनी[2]।

६. राम गरीब नेवाज दया दासन पर कीजै ॥
अबको बार बकसो मेरे सब दुरमति हरि लीजै ॥
सब तजि भजों सदा सतसंगति मति ऐसी करि दीजै ॥
फिकर फटै कटै मर्म को बेरी कारज सोई करीजै ॥
मैं हौं पतित पतित तुम पावन् भजन बिना तन छीजै ॥
पलटूदास सरन की लज्जा भुज से भुजा गहीजै[3] ॥

७. हरी जगन्नाथ जगबन्धु, पारब्रह्म कृपा के सिंधु ॥
बोध प्रभु लीला चलबासी, कृपा कर भक्ति देव खासी ॥
पतित है पावनों पाना, पतित मैं आपसे जाना ॥
माया बड़ी दुस्तर है तेरी, गरीबी देखिए मेरी ॥
अपानो ओर तुम ताको, अपाने बृद्ध को राखो ॥
दीनन पर बहुत सुनि दाया, इहै सुनि सरन मैं आया ॥
गुनह मैं गार सरकारा, अधम उद्धार बलिहारी ॥
सिन्धु से सुयस गहिराई, हमारो बुद्धि इकराई ॥
मुरख है पलटूदासा, नहीं मेरे दूसरो आसा[4] ॥

८. अब राम कृपा करि कब तकिहैं।
सब बिधि चूक परी है हमसे आपनि जानि सरन रखिहैं।
रखिहैं लाज सरन अपने की पुन अवगुन कहुं ना लखिहैं।
दीन दयाल नाम है उनके, दीन भए से ना भखिहैं।
पलटूदास बिमुख सुख नाहीं, नर तन चूकि बहुरि भखिहैं[5]।

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग १ पृ० ८ पद १८
२. ,, ,, भाग २ पृ० ६४-६५ पद २५
३. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० ६६ पद २१२
४. ,, ,, पृ० १०६ पद ३१३
५. ,, ,, पृ० २५४ पद ७१४

संसार से अत्यन्त निर्वेद होने पर या तत्त्व ज्ञान द्वारा वैराग्य का उत्कर्ष होने पर शान्त-रस की प्रतीति होती है। इस रस में मन का कोई विकार नहीं रह जाता; न क्षोभ, न उद्वेग। चित्त में शान्ति आ जाती है। योगी तथा ब्रह्म ज्ञानी समाधि की अवस्था में निर्व्विकार हो जाते हैं। पलटूदास के उद्धृत पदों में सांसारिक सम्बन्धों की क्षणभंगुरता तथा नश्वरता दिग्दर्शित कर निर्वेद उत्पन्न किया गया है। संग्रह-त्याग तथा निर्लेपता के द्वारा विराग तथा आत्मनिवेदन के माध्यम से शम की उत्पत्ति की गई है।

शृङ्गार-रस : संयोग शृङ्गार

पलटू-साहित्य में सांसारिक शृङ्गार-रस का मिलना असम्भव है। जीव और ब्रह्म के मिलन सम्बन्धी कल्पना में ही संयोग शृङ्गार-रस का स्फुरण हुआ है। परमात्मा के वियोग की दशा के अनुभव में ही वियोग शृंगार पाया जाता है। नीचे कतिपय पद्य उद्धृत किए जाते हैं—

१ काहे को लगायो सनेहिया हो, अब तुरल न जाए। (टेक)
जब हम रहिनि लरिकवा हो, पिया आवहिं जाए।
जब हम भइनि सयानी हो, पिया गए बिदेस ॥१॥
पिय को पठयो सँदेसवा हो, आए पिय मोर।
हम धन पैयाँ उठि लागब हो, जिय भयल भरोस।
सोने की थरियवा जेवना हो, हम बिहल परोस ॥२॥
हम धन बेनियां डोलाउब हो, जेवं पिय मोर ॥३॥
रतन जड़ित इक झारी हो, जल भरा अकास।
मोरे तोरे बीच परमेसुर हो, कहै पलटूदास[1] ॥४॥

२. भेद भरी तन के सुधि नाहीं, ऐसी हाल हमारी हो। (टेक)
पुरुष अलख लखि मन मतवाला, झुकि झुकि उठत संहारी हो।
घायल भये नाव के लागे, मरमा है हयव कटारी हो।
टक टक लागि रहीं टक पूरी, पापा आव बिसारी हो।
सिथिल भई मुख बचन न आवै, लागि गगन बिच तारी हो।
सखि पलटू अलमस्त दिवानो, गोविन्दनन्द दुलारी[2] हो ॥

१. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ६९-७० पद १२५
२. ,, ,, भाग ३ पृ० ७१ पद १२७

३. साजन के संग मैं सूतूंगी, सूतूंगी यश लूटूंगी।
सासु ननद घर दारुण मेरे, भक्ति द्रोह से छुटूंगी।
रानी पांच पचीस सहेली, तीन सौत को कुटूंगी।
दुई देवर एक जेठ हमारे, तीनिउ गुण से फूटूंगी।
पलटूदास मनै जो करिहैं, तेहि सेतों मैं रुठूंगी[1] ॥

वियोग-शृङ्गार

१. प्रेम बान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर। (टेक)
जोगिया के लालि लालि अँखियां हो, जस कँवल कै फूल।
हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनों भए तूल ॥१॥
जोगिया कै लेउँ मिगंछलवा हो, आपन पट चीर।
दूनों कै सियब गुदरिया हो, होइ जाब फकीर ॥२॥
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
चितवन में मन हरि लियो हो, जोगिया बड़ चोर ॥३॥
गंग जमुन के बिचवाँ हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहि ठैयां जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर ॥४॥
जोगिया अमर मरै नहिं हो, पुजवल मोरी आस।
करम लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास[2] ॥

२. अरे दैया हमरे पिया परदेसी। (टेक)
इक तो मैं पिय की बिरह बियोगिनि, मोकंह कछु न सुहाई।
दुसरे सासु ननद मारै बोलो, छतिया मोरि फटि जाई ॥१॥
चुइ चुइ आंसु भींजि मोर अंचरा, भींजि गई तन सारी।
भूख न भोजन नींद न आवै, झुकि झुकि उठौं संहारी ॥२॥
अपने पियहिं पाती लिखि पठइउँ, मरम न जानै काऊ।
उमगे जोबन राखि न जाई तुम याती लै जाऊ ॥३॥
वारी रहउँ भइउँ तरुनापा सेत भए तन केसा।
पलटूदास पिया नहिं आये तब हम गइनि बिदेसा[3]।

३. रटौं मैं राम को बैठी पड़े हैं जीभ में छाला।
थके दृग पंथ को जोहत जपौं मैं प्रेम की माला ॥१॥

---

१. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० १ पद ४
२. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० १८-१९ पद ४२
३. ,, ,, पृ० २० पद ४५

कुसल जब पिय को देखौं देखे बिनु नाहिं जीवौंगी ।
खेलौंगी जान पर अपने पियाला जहर पीवौंगी ॥२॥
बिरह की आग है लागी मुझे कुछ और ना सूझै ।
सजन वह बड़ा बेदरदी हमारी दरद ना बूझै ॥३॥
दीपक को भावना नाहीं पतंग तन जारि भया राखी ।
पलटूदास जिव मेरा तुम्हारे बीच है साखी[1] ॥४॥

वीररस

पलटूदास की रचनाओं में वीररस का वर्णन दो परिस्थितियों में किया गया है। एक तो उन्होंने इन्द्रियों को जीतने या दमन करने में तथा दूसरे योग की क्रियाओं में अनेक रूपकों द्वारा वीररस का सृजन किया है। इनके अनुसार साधक वीर; नाना प्रकार की साधनाएँ उपकरण; शरीर युद्धस्थली तथा इन्द्रियाँ या तज्जनित विकारादि शत्रु हैं। यह युद्ध सांसारिक न होकर आध्यात्मिक है और शरीर के बाहर न होकर भीतर ही होता है। अतः इस युद्ध को कोई बाह्य चक्षुओं से नहीं देख सकता। इस युद्ध में किसी बाह्य सामग्री की भी आवश्यकता नहीं है। नीचे कुछ पद उद्धृत किए जाते हैं—

१. भुजा फरक्कै सुन्न में अनहद गड़ा निसान।
पलटू जूझा खेत पर लगा जिकर का बान।[2]
बखतर पहिरे प्रेम का घोड़ा है गुरु ज्ञान।
पलटू सुरति कमान लै जीति चले मैदान[3]।
बसो बिना मुरचा किहा ब्राली दिहा लगाय।
काया गढ़ में पैसि के, पलटू लिहा छुड़ाय[4]।

१. बज्यो जब डंक सब छूटेउ गढ़ संक,
चढ़ेउ भगवन्त तिहुं लोक जाना।
पवन का घोर लै गगन में छोर,
रिपु कटक बल मोर छुटे ज्ञान बाना।
खुसी संतोस अब कटे भुम बास,
धरि मार दससीस मन राउ राना।

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० १६ पद ४४
२. ,, ,, भाग ३ पृ० ८७ पद ३७
३. ,, ,, भाग ३ पृ० ८७ पद ४०
४. ,, ,, भाग ३ पृ० ८७ पद ४१

बिभीखण दास करि सुन्न में वास,
तब सत्त की सीता लै अवध आना ।
भयो जब राज लै प्रेम समाज,
पलटूदास सुजान आनन्द माना[1] ।

३. खैंचि समसेर तब पैठु रनसेर मे,
करै ना देर सोइ साध बका ।
काम दल जारि कै क्रोध को मारि कै,
रहे निसंक न करै सका ।
मनराव को पकरि कै ज्ञान से जकरि कै,
छिमा दे ढाल गढ़ लेत लका ।
पलटू सोई दास कहूँ सुन्न में बास तब,
गैब घर बैठि कै देत डंका[2] ।।

४. होय रजपूत सो चढ़ै मैदान मर, खेत पर पाँच पच्चीस मारै ।
काम औ क्रोध दुइ दुष्ट ये बड़े हैं, ज्ञान के धनुष से इन्हे टारै ।
कूद परि जाइकै कोट काया महैं, आगि लगाय के मोह जारै ।
दास पलटू कहै सोई रजपूत है, लेहि मन जीति तब आपु हारै[3] ।।

अद्भुत रस

विचित्र वस्तु के देखने या सुनने से जब आश्चर्य का परिपोष होता है तब अद्भुत रस की प्रतीति होती है । पलटूदास की रचनाओं मे अद्भुत रस का अधिक समावेश नहीं है । संत-साहित्य मे अधिकतर उलटबासियों में यह रस पाया जाता है । इस प्रकार की उलटबासियों की सख्या पलटू-साहित्य मे कम है । अद्भुत-रस के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

१. एक अकथ कहानी मेरी है कोई बूझे सखी री ।
आगि में मीन नीर में जगल, सिंह चरावै छेरी है ।
परवत उड़त अकास में देखा, ससा स्वान को घेरी है ।।
उलटा कूप गगन के बीचे, नीचे बसै पनिहारी है ।।
अमावस को चन्दा देखा, पूनौं रात अंधेरी है ।।

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग २ पृ० ६२ पद ५
२. ,, ,, पृ० १२ पद ३२
३. ,, ,, पृ० ११ पद ३१

सांप के हां एक मेढ़का पकरैं, कोल्हू केहांतिल पेरी है।।
पलटूदास कहैं संतन से ऐसी मति अब मेरी है[1] ।।

२. खसम हमारा बाला मरिगा, हम घन हैं अहिवाती ।
पीहर सासुर दोनों खायहुं अपने रंग में राती ।
ननद हमारी पांच खसम कियो सासु हमार निपूती ।
बाप हमारे सेंदुर दिन्हों, भसुर के संग में सूती ।
बिना ब्याह बिन गवना मेरे, पुत्र भया अह्लानो ।
ससुर हमारा गोद खिलावे, देवर के मनमानो ।
मांग मुड़ावों मोहि औरत को, सरवरि करे हमारी ।
पलटूदास खसम दे मारा, पतिबरता नारी[2] ।

३. ऐसो गुरु हम पावा अजबू सबद पेलेऊ लावा ।
ना वह तावैं न वह पीवैं अचरज कहा न जाई ।
ना वह डोले ना वह बोले, बिन मारे चिचिआई ।।
बिनु पर उड़ै भजन बिनु बासा, निशदिन रहे अकासा ।
जब मारो कुछ हाथ न आवै हाड़ मांस ना स्वासा ।।
गगन महे तितिर के खोंता तेहि बीच गाय बियानी ।
भूखो रहै तो बछवा पियावे दूध न देय अघानी ।।
बिना चलाये चक्को चलती भोंकबिना कर नावै ।
जियत मरे सों उहवां पहुंचें लिट्टी एक लगावे ।।
आगे जाय करे विश्रामा आवागमन ना होई ।
पलटूदास जो ऐसा जोगी तत्व लगेगा सोई ।।

४. यह अचरज हम देखिया कानी काजर देइ ।
कानी काजर देइ खसम के मन ना मानै ।
निशि दिन करै सिंगार भेद या विरला जानै ।।
नख सिख खोटी मोटि पहिरि के बैठी गहना ।
मूरख देखन जाय देखि के करैं सरहना ।।
बोलै मीठी बोल सबन को बेगि रिझावै ।
नाहिं खसम से भेंट बैठि के बात बनावै ।।

---

१. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० २० पद ६५
२. ,, ,, पृ० १७९ पद ५०२
३. ,, ,, पृ० २११ पद ५६५

पलटू या संसार में झूठ कहै सो लेय।
यह अचरज हम देखिया कानी काजर देय[2]।

ऊपर के उद्धृत पदों में दो विरोधी तत्वों का समावेश करके विचित्रता तथा विस्मय उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। विविध प्रतीकों का अर्थ समझ लेने पर इसका वास्तविक अर्थ समझ में आ सकता है।

अलंकार

पलटू-साहित्य का मुख्य विषय अध्यात्मवाद है। इसमे असांसारिक भावो का वर्णन तथा पोषण ही पाया जाता है। अप्रत्यक्ष विषय होने के कारण यह दुरूह तथा शुष्क प्रतीत होता है। इस गूढ़ विषय को बोधगम्य बनाने के लिए प्रतीकों का सहारा लेना आवश्यक होता है। जिस प्रकार शान्त-रस की प्रधानता होने पर भी कतिपय अन्य रसो का समावेश इस साहित्य में हो गया है उसी प्रकार इसमे अलंकारों का भी प्रयोग यत्र-तत्र दिखाई देता है। जनता तक पहुँचाने के लिए तथा अपने साहित्य में स्पष्टीकरण लाने के लिए पलटूदास ने रूपकों तथा उदाहरणों का सहारा लिया है। अधिकतर अनिर्वचनीय ब्रह्मानुभूति को स्पष्ट करने के प्रयास मे ऐसा किया गया है।

रूपक के द्वारा इन्होंने अप्रस्तुत वस्तु को बोधगम्य बनाया है। ब्रह्म-निरूपण तथा अन्तर्मुख साधनाओं की दुरूहता को स्पष्ट करने के लिए इसका प्रयोग किया गया है। चूंकि इनका मुख्य विषय ब्रह्मानुभूति का वर्णन तथा तत्सम्बन्धी साधनाओं का स्पष्टीकरण ही है। अत: इनके साहित्य मे कबीर की भाँति रूपक की बहुलता पाई जाती है। अपनी अनुभूतियों के वर्णन मे असमर्थता आने पर विभावना का प्रयोग किया गया है तथा कही हुई बातों को शक्तिशाली बनाने के लिए उदाहरण का प्रयोग किया गया है।

यह साधिकार नहीं कहा जा सकता कि इन्होंने जान-बूझकर इस रीतिकालीन परिपाटी से प्रभावित होकर अलंकारों को अपने साहित्य में स्थान दिया है। कुछ अलंकार तो अनायास ही आ गए हैं और कुछ अलंकार संत-साहित्य की परम्परा से भी प्राप्त हैं। इन्होंने अधिकतर अर्थालंकार का प्रयोग किया है जो संतों के साहित्य मे प्राचीनकाल से ही उनका सहायक सिद्ध होता रहा है। इन्होंने शरीर के अन्दर अप्रत्यक्ष साधनाओं को मूर्तिमान् बनाने के लिए उदाहरण तथा दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया है। रूपकों का स्थान मुख्य होते हुए भी विभावना अलंकार का प्रयोग यत्र-तत्र उपलब्ध है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

२. पलटू साहिब की बानी भाग १ पृ० १०८ पद २६१

रूपक

१. कौन करै बनिग्राई ग्रब मोरे कौन करै बनिग्राई। (टेक)
त्रिकुटी मे है भरती मेरी, सुखमन मे है गादी।
दसवें द्वारे कोठी मेरी, बैठा पुरुष ग्रनादी ॥१॥
इंगला पिंगला पलरा दूनौं, लागि सुरति की जोती।
सत्त सबद की डांडी पकरौं, तोलौं भरि भरि मोती।
चांद सुरज दोउ करें रखवारी, लगी तत्त की ढेरी।
तुरिया चढ़ि के बेचन लागे, ऐसी साहिबी मेरी।
सतगुरु साहिब किहा सिपारस, मिली राम मोदिग्राई।
पलटू के घर नोबति बाजे, निति उठि होत सवाई[1]।

२. ग्ररे सखी ज्ञान के ग्रांधी ग्राई हिंडोलवा हो।
माया छप्पर उड़िगा हो, लालच बड़ेर परी टूट।
मोह के खम्मा गिरि परे सखी, कुमति कलस गए फूट।
ढहि गए भीति भरम के हों कोट महल महरान।
कामदेव टूटी थून्हीं सखी उड़ि गए लोम निदान।
नाती तिनि उड़ि गयेनि हो ग्रासा तृष्णा पूत।
बाप हंकार उड़ि गयेन सखी उड़ि गए पांचों भूत।
सकल समाज उड़ि गयेन हों हम धनि रहेहैं ग्रकेल।
पलटूदास मगन मैं सखी सतगुरु के यह खेल।[2]

३. सखी रिमझिमि बरसै मेह हिंडोलवा हो।
वायु बहै पुरवैया हो बदरा फेर घहराय।
पिय पिय बोलै पपीहा सखी पिया पापी नहिं ग्राय।
भीजै पञ्च रंग चुनरी हों नैन ढुरि ढुरि जाय।
दादुर वचन सुनावै सखी छतिया मोर बिहराय।
बिरह की बिजली तड़पे हों जिया मोर उठं डेराय।
सावन के ग्रंधियरिया सखी सेज पै मैं खाय।
सतगुरु पैया तोरें लागौं हौं पिया मोर देउ मंगाय।
पलटूदास पिया ग्रापनि सखी सूतिहूं छाती लाय[3]।

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ३८ पद ८१
२. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० १३२ पद ३७८
३. ,, ,, पृ० १३३ पद ३८१

४. ज्ञान धनुष सतगुरु लिहे, सबद चलावै बान।
पलटू तिल मरना घसें, जियतें मया पवान[१]।

५ बीनों मन चित लाई हों जग फिरे उघारा।
पाँच तत्व का ताना तनिहों चेतन माड़ी लगाई हों।
इगला पिगला नरी भराई हाथा ठोकि चलाई हो।
सत्य शब्द की ढरकी फेकों प्रेम के राछ बधाई हों।
तन करिगह में मन भेरो बीने सुखमनि के घर जाई हो।
तुरिया में मैं पुरिया बीनों सुरति के तांत लगाई हों।
पलटूदास बैकुंठ पैंठ मे बेचों होय सवाई हों[२]।

प्रतीप

ये मन भवरा कित भुलाय, रितु बसंत तेरो चलो जाय।
काया बन तेरो रहो है फूल, अमृत रस हरिनाम मूल।
चहुं दिसि आवें बास सुबास, आनन्द छा रितु बारहों मास।
भाँति भाँति आवे सुगंध, पांडर सूंधन जास अंध।
अर्द्ध वृक्ष सोभित विशाल, फल लागे तहाँ लाल लाल।
भंवरा लालिच बुरी बलाय, घर तजि बाहर मेरे धाय।
घर बैठे तूं कर विलास, मगन रहो जिनि होउ उदास।
यक तो भंवरा भयो बूढ़, रस पियो अब ढूंढ़ि ढूंढ़।
पलटूदास एक भवर अपार, पुहुप बीच करु गुंब मार[३]।

दृष्टांत

१. झाड़ नहीं फल खात है, नहीं कूप को प्यास।
पर-स्वारथ के कारने, जनमे पलटूदास[४]।

२ हंस चुगे ना घोंघिया, सिंह चरे ना घास।
भीख न मांगे सत जन, कहि गए पलटूदास[५]।

३. पलटू जहवां दुइ अमल, रैयत होइ उजार।
जेहि घेर में दस देवता, क्यों करि बसैं बाजार[६]।

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ६४ पद १२६
२. „ शब्दावली पृ० २३ पद ७८
३. „ „ पृ० १५२ पद ४३१
४. „ „ पृ० ३२३ पद ७६
५. „ „ पृ० ३२२ पद ७५
६. „ „ पृ० ३२२ पद ७०

उदाहरण

१. जैसे काठ में अगिन है फूल में है ज्यों बास।
हरि जन में हरि रहत है, ऐसे पलटदास[1]।
२. मिहदी में लाली रहै, दूध माँहि घिव होय।
पलटू तैसे सन्त हैं, हरि बिनु रहैं न कोय[2]।
३. सतगुरु बपुरा क्या करै, चेला करै ना होस।
पलटू भीजै मोम ना जल को दीजै दोस[3]।

अनुप्रास

खालिक खलक खलक मे खालिक, ऐसा भजन जहूरा है।
हाजी हज्ज हज्ज में हाजी, हाजिर हाल हजूरा है।
फल में फूल फूल में फल है, रोसन नबी का नूरा है।
पलटूदास नजर नजराना, पाया मुरसिद पूरा है[4]।

व्यतिरेक

पलटू तीरथ को चला बीचे मिलि गे सन्त।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गई मुक्ति अनन्त[5]।

विभावना

१. फूल बिना एक झाड़ खड़ा है, लागे फल बहुतेरा है।
पग बिनु चले जीभ बिनु गावे, करे गगन बिच फेरा है।
पंख बिहून उड़े एक पक्षी अधर के बीच बसेरा है।
बिना तेल बिन दीपक बाती निसिदिन होत उजेरा है।
पलटूदास कूप एक देखा उलटा मुख तेहि केरा है[6]।
२. माय हमारी मरि गई तब हम जनमे आय।
ब्याह भया जब बाप का पलटू देखा जाय[7]।

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ८८ पद ४९
२. ,, ,, ,, पृ० ८८ पद ५०
३. ,, ,, ,, पृ० ९४ पद १२५
४. ,, ,, ,, पृ० ९७ पद १२०
५. ,, ,, ,, पृ० ८९ पद ६४
६. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० २५ पद ६०
७. ,, ,, ,, पृ० ३२२ पद ६७

१. अकथ कथा की बानी बूझो मेरी, कोइ सखिया सयानी।
   आनन्द का दरियाव भरा है, बिना नीर बिन पानी।
   उसमें और कछू नाहीं है भरा जवाहरखानी।
   नेह बिना का महल खड़ा है तिस पर बैठी रानी।
   उसके रूप रंग नहिं देखा एक आंख है कानी।
   मूल बिना एक झाड़ खड़ा है तिस पर तबुआ तानी।
   पहिले जन्म भयो है मेरो पाछे जन्मी रानी।
   बिन कुन्डी बिन कोतका हमने अमल पिया है छानी।
   पलटूदास तेल बिनु बाती भीतर जोति समानी[1]।

उलटवासी

पलटूदास ने अपने साहित्य मे उलटवासियो को भी स्थान दिया है। सन्त-साहित्य में इस प्रकार की रचनाएँ अधिक मात्रा मे पाई जाती हैं। इनके द्वारा सतो ने विपरीत या असंगत रूप में अपने विचारो को प्रकट किया है। इस प्रकार की रचनाएँ वेदों तथा उपनिषदों मे भी मिलती हैं। ऋग् वेद में एक स्थल पर कहा है कि इस बैल के चार सींग, तीन पैर, दो सिर, सात हाथ हैं। यह तीन प्रकार से *बधा हुआ अत्यन्त शब्द करता है।[2] उलटबासियो के स्वरूप की बहुत-सी उक्तियां* उपनिषदो मे भी प्राप्त हैं। एक स्थान पर कहा गया है कि वह बैठा हुआ दूर जाता है और सोया हुआ सब ओर गमन करता है[3]।

उलटबासियों का प्रयोग तांत्रिको ने भी किया है। इनका वर्ण्य विषय साधना पद्धति है जो किसी कारण से गुप्त रखी जाती थी। अत. उनका वर्णन भी रहस्यमय ढंग से किया जाता था। वज्रयानी सिद्धों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है तथा सिद्धो और नाथों के समय मे तो उलटबासियों द्वारा अपनी साधना-पद्धति को व्यक्त करना अधिक प्रचलित हो गया था। सन्तो मे कबीर ने अपनी आध्यात्मिक उक्तियों तथा साधना-सम्बन्धी सिद्धान्तों को भी उलटबासियों द्वारा व्यक्त किया है। *सिद्धों तथा नाथो की परम्परा से सम्बन्धित कबीरदास ने उनके द्वारा व्यवहृत नामो* को भी ग्रहण कर लिया है। पलटू-साहित्य मे उलटबासियो की प्रचुरता नहीं है पर यदा-कदा ऐसे पद मिल जाते हैं।

---

१. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० १३ पद ३६

२. चत्वारि शृगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे हस्ता सप्त अस्य।
   त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यं आविवेश॥ऋ० ४।५८।३
   (कबीर साहित्य का अध्ययन पृ० २५१ से उद्धृत)

३. आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।कठ० १।२।१०

उलटबासियों में मुख्यत: कार्य तथा कारण का विरोध, जाति, गुण या क्रिया इत्यादि में विरोध या असंगति प्रदर्शित होते हैं। अत: विभावना, विरोधाभास या असम्भव अलंकार में ही उलटबासियाँ मिलती हैं। इसमें ऐसी बातों का वर्णन मिलता है जो प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल हों या जिनकी सत्यता पर श्रोता को आश्चर्य होता हो। अत: कार्य कारण का विरोध तथा अनहोनी बातों के घटित होने पर आश्चर्य तथा विस्मय की मात्रा जितनी ही अधिक होगी जनता उतनी ही अधिक प्रभावित होगी। परन्तु केवल बाह्य अर्थ को समझने में ही आश्चर्य का प्रभाव होता है। जब उसमें निहित अर्थ का उद्घाटन हो जाता है, तो आश्चर्य की मात्रा समाप्त हो जाती है।

पलटू साहब की उलटबासियाँ तीन श्रेणियों में विभक्त की जा सकती हैं। प्रथम उस प्रकार की उलटबासियाँ हैं जो असंगति, विभावना या विषम अलंकार के अन्तर्गत आती हैं[1]। द्वितीय ऐसी उलटबासियाँ हैं जो विरोध प्रधान होते हुए भी अद्भुत रस के अन्तर्गत आ सकती हैं।[2] पाठक शब्द-योजना तथा कार्य-कारण की

१. असंगति—

जाको मूल अकाश पहुमी में साखा हो।

जल ले देय सुखाय काटि गछ राखा हो। (शब्दावली पृ० ६० पद १८७)

विभावना—

दीपक बरै अकाश तेल बिनु बाती हो। (शब्दावली पद २५१)

विषम—

उलटा कूप अकाश नीचे पनिहारी हो।

सुरति के डोरी भरे काया कुवारी हो। (शब्दावली पद २५२)

विरोध और विशेषोक्ति—

आगि में मीन, मीन में जंगल सिंह चरावै छेरी है। (शब्दावली पद ६५)

२. साधो माई ऐसी विस विच मानो, जामें अगिन पवन न पानी।

खसम हमारा बाला मरिगा, हम धन है अहिवाती।

नैहर ससुर दोनों खायउ, अपने रंग में राती।

ननद हमारी पाँच खसम कियो, सासु हमार निपूती।

बाप हमारे सेन्दुर दीन्हा, ससुर के संग में सूती।

बिना ब्याह बिन गौना मेरे, पुत्र भया अहलादी।

ससुर हमारा गोद खेलावे, देवर के मन मानी।

माँग मुंड़ावो आहि औरत की, सरबरि करै हमारी।

पलटूदास खसम धै मारा, हम पतिबरता भारी।

(शब्दावली पृ० १७६ पद ५०२)

विषमता मे डूबकर आश्चर्य-चकित हो जाता है। ऐसे स्थलो पर अलकार दब जाते हैं और अद्भुत रस की प्रधानता हो जाती है। तीसरी प्रकार की उलटबासियाँ ऐसी हैं जिनमे एक सांगोपाग रूपक द्वारा आध्यात्मिक तत्त्व या साधना-पद्धति का वर्णन किया गया है। गूढ़ तत्वो के वर्णन मे उन्होने प्रतीको का भी आश्रय लिया है।[1]

प्रकृति-वर्णन

पलटूदास ने बाह्य जगत् के सम्बन्ध मे केवल उद्‌बोधन के अन्तर्गत ही लिखा है। जिसका जीवन ही इस संसार की असारता को सिद्ध करने में बीता वह इसकी तथाकथित सुन्दरता का वर्णन कैसे कर सकता है ? उनका मुख्य उद्देश्य अन्तर्जगत के रहस्यों का उद्‌घाटन करना था और उस दिशा मे किए हुए प्रयत्न द्वारा प्राप्त अनुभवों को जन-साधारण तक पहुँचाना था।

प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन सासारिक है। सन्त मत से यह ससार माया

१—सांगोपांग रूपक

अरे दैया महरा मारेनि मछरी।
यक बार महे मछरी मारेनि यक बार लायनि डाढा।
आग महे ले मछरी जियायनि लाल हरिन कै बाढ़ा।
मछरी चढ़ी गगन के ऊपर परबत खोजे महरा।
बीत शहर मे नहर खोदायनि बन में लायनि पहरा।
ऐसे नाग से सुरज बझायनि नागिनि बाझी चन्दा।
तीतिर मारसि सिंघ उलटि गाबोवरी के भीतर फन्दा।
कँवटिन चीटिया भैंस चरावे अहिरिनि जाल पसारा।
पलटूदास यक कोहड़ा बाझा सतो करहूं बिचारा।
(शब्दावली पृ० २१६ पद ६०७)

प्रतीप

कहल न जाय मोसे कहल न जाई।
अचरज देखो एक राम के दोहाई।
उल्टा स्यार सिंह धै खाइ, सांप के घर मेमेघा के दोहाई।
पाहन जल बिच रहा उतराई, जल बिच फूल तुरन्त बूड़ि जाई।
पानी महे आगि लाग घासि से बुताई, मछरी मागि के पहाड़ में लुकाई।
पसो कहै देखि के अधिक डेराई, बकरी को देखि के बाघ घिघिआई।
बन को हरिनो कुआँ में बिआई, पलटूदास गुरु कहे चेला समुझाई।
(शब्दावली पृ० २८५ पद ८०२)

का रूप है अतः इसमें पाई जाने वाली प्रत्येक वस्तु मायिक है और क्षणभंगुर है। माया के इस रूप का वर्णन इन सन्तों द्वारा कैसे अपेक्षित हो सकता है। जब जीवन पर्यन्त इसी से बचने का इन्होंने उपदेश दिया। श्री परशुराम चतुर्वेदी का कथन है, "प्राकृतिक दृश्यों के प्रसंग वे ऐसे ही अवसरों पर लाते थे जहाँ उन्हें सर्वव्यापी परमात्मा के अस्तित्व एवं प्रभाव की ओर ही संकेत करना होता था अथवा अपनी विरह दशा का वर्णन या अन्योक्तियों की रचना करते समय इनका ध्यान उधर चला जाता था"[1]।

पलटू साहित्य में प्रकृति का वर्णन नगण्य है। जो कुछ है वह भी स्वतंत्र नहीं है, बल्कि विरह-वर्णन के अन्तर्गत आया है जिसका सम्बन्ध साधना-पद्धति से है। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है—

सखी रिमझिम बरसे मेह हिंडोलवा हो।
वायु बहे पुरवैया हो बदरा फेर घहराय।
पिय पिय बोले पपीहा सखी पिया पाथी नहिं आय।
भीजे मधरेव चुनरी हो नैन ढुरि ढुरि जाय।
दादुर वचन सुनावहिं सखी छतिया मोर बिहराय।
विरह की बिजली तड़पै हो जिया मोर उठे डेराय।
सावन के अधियरिया सखी सेज मैं मैं खाय।
सतगुरु पैयां तोर लागों हो पिया मोर देहुं मंगाय।
पलटूदास पिया आयनि सखी पुतिउँ छाती लाय[2]।

उक्त रूपक विरह सम्बन्धी भावना को व्यक्त करते हैं। इसमें ब्रह्म की प्राप्ति के लिए व्याकुलता तथा उत्कंठा का वर्णन प्रकृति के माध्यम से किया गया है। यहाँ पर प्रकृति आलम्बन नहीं है बल्कि उद्दीपन है। ब्रह्म से मिलन का चित्र निम्नलिखित पद में प्रकृति के माध्यम से खींचा गया है—

सखी निरखित मेहुँ अकास हिंडोलवा हो।
सुभग सोहावन बादर हो हरे हरे परत है बूंद।
भीतर के दृग खोलहु सखी बाहर के लेहुँ मूंद।
चमकि चमकि उठे बिजुरी सो बादर दौरा जाय।
कहूं लाल कहूं पीयर सखी शब्द उठे घहराय।
ज्यों-ज्यों पवन झकोरे हों त्यों-त्यों घटा गंभीर।
पवन थके तब बरसे सखी गगन से निरमल नीर।

---

१. सन्त काव्य—भूमिका पृ० १०३
२. पलटू साहिब की शब्दावली पद ३८१ पृ० १३३

शशि औ भानु तारागन निरमल भयो है प्रकास ।
पलटूदास तहाँ भूल तजो अपने पिया के पास[1] ।

छन्द

पलटूदास न तो काव्य-शास्त्र के ज्ञाता थे और न नाना प्रकार के छन्दो के लक्षणो से पूर्ण भिज्ञ थे । निर्गुण पंथ की पोथियो के पठन या श्रवण के फलस्वरूप या सत्सगवश उन्हें संत-काव्य मे प्रचलित छन्दों का ज्ञान हो गया था । प्राचीनकाल से ही संतों ने पद्य मे रचना की तथा दोहा-चौपाई एव गेय पद मे उनके अधिक काव्य उपलब्ध हैं । कालान्तर मे कवित्त, सवैया, झूलना, छप्पय, अरिल्ल तथा रेखता भी इनमें सम्मिलित हो गए और इस प्रकार सन्त-साहित्य मे नाना प्रकार के छन्दो की भरमार हो गई । पलटूदास के काव्य मे ऊपर लिखे समस्त छन्दो का प्रयोग हुआ है ।

कुण्डलिया

पलटूदास अपनी कुण्डलियों के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं । इनकी रचित २६८ कुण्डलियाँ बेलविडियर प्रेस प्रयाग द्वारा प्रकाशित हैं । कुछ पाण्डुलिपि मे सुरक्षित हैं और कुछ मौखिक रूप मे जनता मे प्रचलित हैं । छन्द-शास्त्र की कसौटी पर ये लगभग खरी उतरती हैं और कदाचित् कलेवर में अन्य सन्तों की कुण्डलियो की अपेक्षा अत्यधिक हैं । इनके समस्त वर्ण्य-विषय कुण्डलियों मे व्यक्त हैं और इस छन्द पर इनका अधिकार-सा ज्ञात होता है ।

अरिल्ल

इस छन्द का प्रयोग आधुनिक सन्तों के काव्यों मे विशेषतः पाया जाता है । इस छन्द मे पलटूदास तथा तुलसी साहब हाथरस वाले की रचनाएँ अधिक हैं । पलटूदास के मुद्रित अरिल्लो की सख्या १४७ है और लगभग इतने ही अप्रकाशित तथा मौखिक हैं । इस छन्द में भी समस्त वर्ण्य-विषयो का समावेश है, परन्तु उपदेशात्मक भावना के छन्द अधिक मात्रा मे पाए जाते हैं । अरिल्ल की रचना मे भी इनकी प्रतिभा पूर्णरूपेण मुखरित हुई है । अरिल्लो की भाषा तथा भाव दुरूह नहीं हैं और ये गाने तथा सुनने मे इतने अच्छे लगते है कि साधारण जन-समुदाय पर इनका अत्यधिक प्रभाव है ।

ककहरा

अरिल्ल के अन्तर्गत ही इन्होंने ककहरा भी लिखा है । ककहरा मे हिन्दी वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर से वाक्य प्रारम्भ किया जाता है तथा संयुक्ताक्षरों पर रचना नहीं मिलती । इस प्रकार के छन्दो की मात्रा भी अन्य अरिल्लो की मात्रा से भिन्न है । इसकी भाषा भी परिमार्जित है तथा भाव भी भली प्रकार से प्रकाशित किए गए हैं ।

१. पलटू साहिब की शब्दावली पद ३६४ पृ० १२६

रेखता

रेखता का प्रयोग सन्त-काव्य में ईसा की अठारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। यह फारसी कवियों के पाए जाने वाले छन्दों में से एक है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इसे हिन्दी के दिक्पाल नामक छन्द का एक रूप माना है। दिक्पाल छन्द हलाल से अधिक मिलता है। इसमें चौबीस मात्राएँ होती हैं, परन्तु सन्तों का रेखता सैंतीस मात्राओं का होता है। पलटूदास द्वारा रचित निन्नानवें रेखते प्रकाशित हैं। इनमें गुरुदेव, अद्वैत माया, सन्तोष, दया तथा उपदेश इत्यादि समस्त वर्ण्य-विषयों पर रचना की गई है। यह सवैया की भाँति एक मात्रिक छन्द है जिसमें २० और १७ पर विराम होकर कुल ३७ मात्राएँ हैं। भाषा, भाव, सरलता तथा प्रभाव के विचार से पलटूदास द्वारा रचे हुए रेखते उच्च श्रेणी के अन्तर्गत आ सकते हैं। इस छन्द में अधिकतर ज्ञान की चर्चा है।

झूलना

सन्त सुन्दरदास के समय से ही सन्त साहित्य में झूलना का प्रयोग यदा-कदा मिलता है, परन्तु आधुनिककाल में यह भी सन्तों का प्रिय छन्द हो गया है। इसमें ३७ मात्राएँ होती हैं और यह छन्द मात्रिक दंडक परिवार का है। पलटूदास की मुद्रित रचनाओं में झूलनों की संख्या ६८ है, परन्तु मात्रा के विचार से इनके द्वारा निर्मित अधिकांश छन्द अशुद्ध हैं। कहीं-कहीं प्रवाह रुक सा गया है फिर भी अन्य सन्तों के झूलनों से इसका स्थान ऊपर ही रखा जा सकता है।

कवित्त

पलटू-साहित्य में कवित्तों की संख्या ७ है। इसमें फारसी शब्दों का भरसक बहिष्कार किया गया है। कवित्त का ऐसा सुथरा रूप सन्त-साहित्य में सुन्दरदास को छोड़कर अन्यत्र आसानी से नहीं मिल सकता।

सवैया

सवैयों की संख्या कुल दो है। एक में मन की अस्थिरता का वर्णन है तथा दूसरे में अपने को भगवान् का अनन्य भक्त कहा गया है।

हिंडोला

पलटूदास की शब्दावली में ३० पद हिंडोला के अन्तर्गत रखे गए हैं। इनकी लय से अनुमान लगाया जा सकता है कि ये सावन महीने में गाए जाने वाले झूले के गीत की ही भाँति हैं। प्रत्येक में ९ पंक्तियाँ हैं और टेक वाली पंक्ति के अन्त में 'हो' शब्द का प्रयोग अनिवार्य रूप से हुआ है। इनकी मात्राओं में समता नहीं है, क्योंकि ये लय-प्रधान हैं। इनमें आध्यात्मिक तत्त्वों, साधना तथा उपदेश-सम्बन्धी

बातों का वर्णन है। पलटूदास के अनुसार यह हिंडोला समस्त संसार के झूलने के लिए बना है और कदाचित् आवागमन का कारण भी यही झूलना है।

कहरा

इनकी संख्या ७ है। कहरा कदाचित् कहरवा का रूपान्तर है और इसमें सम्भवतः ३० मात्राएँ होती हैं। १६ और १४ पर विराम होता है[1]। परन्तु पलटूदास द्वारा रचित इस प्रकार के छन्दों में यह नियम लागू नहीं होता। ये पूर्णतः गेय पद हैं, जिनमें लय की प्रधानता के कारण नियम का उल्लंघन हो गया है।

दोहा

पलटूदास की साखियाँ दोहे में लिखी गई हैं। दोहे में साखियों की परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आती है। साखी 'साक्षी' शब्द का रूपान्तर है और इसका अभिप्राय उस पुरुष से है जिसने किसी घटना या वस्तु को अपनी आँखों देखा हो ताकि विवाद के समय वह साक्षी रूप में रखा जा सके। पलटू-साहित्य में दोहों की संख्या अधिक नहीं है। इन्होंने इन्हीं दोहों में से कई दोहों का भाव-प्रसारण करके कुण्डलियों की रचना की है, जिसका वर्णन अन्यत्र किया गया है।

गेय पद

पलटूदास के साहित्य में गेय पदों की संख्या सबसे अधिक है। इनको शब्द या वाणी भी कहा जाता है। ऐसे शब्दों या गेय पदों की रचना प्राचीन हिन्दी-साहित्य में मिलती है। इन शब्दों को कई रागों में विभाजित कर दिया गया है। सम्भवतः इस प्रकार का विभाजन पलटूदास के बाद किसी ने कर दिया हो। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि शब्द महात्माओं के मुख से निकले हुए वाक्यों के प्रतीक हैं और इन्हीं अनुभूतियों के वर्णन के आधार पर उनकी सिद्धता आँकी जाती है।

इन शब्दों में पलटूदास ने सन्त-दर्शन, ब्रह्मानुभूति तथा जगत् की नश्वरता इत्यादि समस्त वस्तुओं का वर्णन किया है। इसमें देहात में गाए जाने वाले रागों से लेकर विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों तक का समावेश है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पलटूदास की रचनाओं में विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने किसी नवीन छन्द में रचना नहीं की है, बल्कि परम्परागत प्रयुक्त छन्दों का ही अनुसरण किया है। पलटू-साहित्य में एक विशेषता है कि उन्होंने एक ओर शास्त्रीय गेय पदों की रचना की और दूसरी ओर प्रचलित लोकगीतों को भी स्थान दिया।

---

१. कबीर-साहित्य की परख पृ० २०५

संगीत-प्रेम

गेय पदों का आधिक्य इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि पलटूदास की साधना में संगीत का विशेष महत्त्व था या यह भी सम्भव है कि उन्होंने अपने मत के प्रचारार्थ इन गेय पदों की रचना की थी। नामदेव के विषय में प्रसिद्ध है है कि वे सदा भजन गाया करते थे। साधु तुकाराम, नानक तथा गरीबदास इत्यादि प्रसिद्ध तथा सिद्ध सन्त भी भजन गाने के प्रेमी थे। बावरी पंथ के अधिकांश सन्त संगीत को महत्त्व प्रदान करते थे जैसा कि उनके चित्रों से ज्ञात होता है। यौष साहिब सितार के प्रेमी थे तथा गुलाल तथा भीखा साहब खंजड़ी के।

पलटूदास का न तो कोई चित्र ही उपलब्ध है और न यह ही ज्ञात होता है कि वे संगीत के प्रेमी थे। अतः इस सम्बन्ध में साधिकार कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अपने मत के प्रचार के लिए इन्होंने सम्भवतः ऐसे पदों की रचना की है। पलटू साहिब के समय पंथ-प्रचार की भावना बलवती होती जा रही थी और इसी कारण नाना प्रकार के पंथ भी व्यक्ति के नाम से चल निकले थे। इनकी रचनाओं मे देहाती गानों का समावेश भी सिद्ध करता है कि वे समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक अपना सन्देश पहुँचाना चाहते थे और जनता को अपने मत की ओर आकृष्ट करना चाहते थे।

इसका अन्य कारण भी हो सकता है। सन्तों ने अपनी साधना के द्वारा ब्रह्म के सम्बन्ध मे जो अनुभव किया वह लोकोत्तर आनन्ददायक होने के कारण इनकी तल्लीनता का कारण बना। चूंकि न तो इसका सम्बन्ध किसी पठित पुस्तक के ज्ञान से था और न किसी के द्वारा कही हुई बातों के आधार पर ही अवलम्बित था, वह हृदय की सच्ची अनुभूति थी, जो उनको आनन्द-विभोर रखती थी और वे उसी मे मस्त रहते थे। फलस्वरूप मस्ती की दशा में वे संगीत की ओर झुक जाते थे और कुछ गुनगुनाने लगते थे। पलटूदास भी उसी मस्ती में सम्भवतः संगीत की ओर झुक गए थे।

परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं है कि वे छन्द-शास्त्र के या संगीत-शास्त्र के विद्वान थे। उनके द्वारा निर्मित पद न तो संगीत-शास्त्र के नियमों का पूर्ण पालन करते हैं न वे स्वर, लय तथा ताल इत्यादि मे ही बंधे हुए हैं। उनका मुख्य उद्देश्य अपने भावों को व्यक्त करना था और उन्होंने ऐसा किया भी है। दूसरी बात यह है कि वे अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। अतः उनकी रचनाओं में शुद्धता की सम्भावना भी कम थी। वे एक स्वतन्त्र व्यक्ति थे और उनकी स्वतन्त्रता हर स्थान पर यहाँ तक कि साहित्य मे भी दृष्टिगोचर होती है।

पलटूदास ने समस्त प्रचलित रागों में रचना की है। इनमें राग बसन्त, राग परस्तो, राग बिलावल इत्यादि मुख्य हैं, परन्तु उनमें अनियमितता है। कहीं पर

अधिक पद हैं कहीं पर कम। मात्रा इत्यादि पर कम ध्यान दिया गया है। देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने किसी विशेष नियम का पालन नहीं किया है।

भाषा

स्वानुभूति को अन्य व्यक्ति तक पहुँचाने के माध्यम को भाषा कह सकते हैं। मानव-जीवन में इंगित के माध्यम से भी यह कार्य किया जा चुका है और अब भी कभी-कभी किया जाता है। इंगित प्रणाली ने क्रमशः आधुनिक भाषाओं का रूप ग्रहण कर लिया है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मनोभाव प्रदर्शित किए जाते हैं। किसी साहित्यकार के लिए आवश्यक है कि भाषा पर उसका अधिकार हो तथा उसमें भाव-प्रकाशन की क्षमता भी हो।

परन्तु अन्य सन्तों की भांति पलटूदास की भाषा पर विचार करने से भी कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। पलटूदास अशिक्षित थे। अतः उनकी भाषा विशेष व्यवस्थित रूप मे सामने नहीं आई है। अपने ज्ञान के बल पर अपने विचारों को व्यक्त करने पर ही उन्हें भरोसा था। इनको अपनी अनुभूतियों को किसी प्रकार व्यक्त करना था न कि एक कवि की भांति भाषा के सौष्ठव तथा रमणीयता को प्रदर्शित करना था। इन्होंने भाषा से अधिक महत्त्व भाव-प्रकाशन को दिया। अतः इनकी भाषा कुछ अव्यवस्थित-सी हो गई है।

पलटूदास भ्रमणशील थे। अतः इनकी भाषा के ऊपर अन्य भाषाओं का प्रभाव पड़ना आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता। पर्यटन में अन्य भाषाओं के सम्पर्क में आने से तथा जिज्ञासुओं से सत्संग करने के कारण इनकी भाषा में कई अन्य भाषाओं के शब्द अनायास ही आ गए हैं या जान-बूझकर भी कहीं-कहीं ऐसा कर दिया गया है। एक बात और ध्यान देने की है कि इनकी रचनाएँ शिष्यों द्वारा लिखी गई हैं। अतः उन पर लिपिकर्ताओं की भाषा का प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक है।[1]

इसका एक और भी कारण हो सकता है। कबीर साहब के समय विद्वान् या पण्डित लोकभाषा का बहिष्कार करते थे। रीतिकालीन कवि आचार्य केशवदास ने भी लोकभाषा में कविता करना हेय समझा है। सन्त मत का प्रचार पंडितों में न होकर आम जनता में ही हुआ था। अतः सन्तों ने जनता की भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करना उचित तथा उपयुक्त समझा। सन्तों ने इसीलिए लोकभाषा को ही अपने काव्य की भाषा बनाया। इससे यह लाभ हुआ कि एक ओर जनता ने इसको अपनी भाषा समझकर इसका आदर किया और इस प्रकार साथ-ही-साथ सन्त मत

---

१. सन्त-काव्य—भूमिका पृ० ११८

का प्रचार भी सरल हो गया। पलटूदास की भाषा मे देशी तथा मिश्रित भाषा का प्रयोग इसी तथ्य की ओर सकेत करता है।

पलटूदास अवध के रहने वाले थे। अतः उनकी मातृभाषा अवधी थी और उनके साहित्य में भी मूल रूप से अवधी ही प्रयुक्त है, परन्तु इसमे भोजपुरी, पंजाबी, फारसी इत्यादि अन्य भाषाओं के शब्द प्रचुर मात्रा मे व्यवहृत होने के कारण यह भाषा पंचमेल खिचडी बन गई है और उसे सन्तो द्वारा प्रयुक्त सधुक्कडी भाषा की श्रेणी मे रखा जा सकता है। इसलिए इनकी भाषा के सम्बन्ध मे निर्धारण करना कुछ कठिन प्रतीत होता है।

पलटूदास की भाषा की कुछ निजी विशेषताएँ हैं। इनकी भाषा में पजाबी शब्द अनुमानतः यदा-कदा जान-बूझकर प्रयुक्त किए गए हैं। जैसा कि निम्नलिखित पद से ज्ञात होता है—

नाले होली खेलन मैं आँवी।
आदी जांदी होइहों बाँदी।[1]

इनकी भाषा पर भोजपुरी का प्रभाव सबसे अधिक है। इनका जन्म-स्थान भोजपुरी भाषाभाषी प्रान्त से मिला हुआ है। अतः इनकी भाषा में स्वाभाविक रूप से भोजपुरी भाषा के शब्द आ गए है। इससे यह भी कहा जा सकता है कि इनका सम्बन्ध उत्तर-प्रदेश के पूर्वी जिलो तथा बिहार के पश्चिमी जिलो से अधिक रहा है। इन्होने किसी कारणवश भोजपुर प्रान्त को ही अपने प्रचार का क्षेत्र चुना हो क्योंकि सामाजिक उत्सवों पर गाए जाने वाले पद अधिकतर इसी भाषा मे मिलते हैं। इस भाषा मे सोहर, नहछू, होली तथा विवाह के समय गाए जाने वाले गीत तथा संसार की असारता सम्बन्धी पद अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। भोजपुरी की कविताएँ प्रभावशालिनी हैं। इसका परिमार्जित रूप जितना पलटू-साहित्य में मिलता है उतना कदाचित् इने-गिने सन्तों की रचनाओं में उपलब्ध है। उदाहरण से यह अधिक स्पष्ट हो जाएगा।

सोहर—

पिया मोर बसे पुर पाटन, हम धनि इहवां हो।
ललना हमरे पुत्र के साधि, पाऊँ मैं कहवां हो।
अंग अंग भभूति लगइबो, बना फल खावों हो।
ललना धरबो जोगिनियां के भेष, पिया तहं जावो हो।
जाय के गयउं विदेश, पिया नहीं पायउं हों।
ललना कंवल चरन चित लाय, मने समुझायउं हो।

१. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० २६० पद ८१७

गर्भ रहा विश्वास, पिया मोर जाने हों।
ललना हेक खाय सब लोग, कोउ नहिं माने हो।
पलटूदास यह सोहर, जो कोउ गावे हो।
ललना दसवें मास एक पुत्र, लखे सोई पावे हो।[1]

हमरे जन्में गोपाल, सुलगन धरावा हो।
ललना जै जै उठत है शोर, सर्म सुख पावे हो।
एक तो मैं पिया के दुलरई, दूसरे सोहे सुन्दर हो।
ललना तिसरे जन्मे गोपाला, चौथे में सुन्दर हों।
पिया मोर चवर डोलावे, नगर लुटावे हो।
ललना पत्थर पै जामी दूब, कोऊ डिठि आवे हो।
घरे घरे पिया तुम जाहू, नन्द बेगि आवे हो।
ललना झ्टल मनद मनावों, ये नार छिनावे हो।
दस दिसि भा उजियार, पहर गोहगाई हो।
ललना पुलटूदास यह सोहर, आनन्द बधाई हो[2]।

नहछू—

मानसरोवर बीच दूलह बइठावा हो।
हरदी तेल लगाय, वेगि नहवाया हो।
परम पुरुष अविनाशी, देवन के देवा हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश, करें जाको सेवा हो।
जे करे रूप न रंग, नहीं कछु रेखा हो।
पूरण प्रकटे भाग्य, नयन भरि देखा हो।
आदि अन्त नहिं मध्य, निरन्तर निरगुण हो।
चारि खानि मा प्रगट, देखावत सरगुण हो।
पलटूदास के नेहछू, बूझै कोई ज्ञानी हो।
सीस लिहै हैं एक, जो सखिया सयानी हो।[3]

हरदी तेल लगाय के, मरदन कीजे हो।
दुलहा के रोग बलाय, सखी सब लीजे हो।
आनन्द के दरियाव में पैठि नहावें हो।
आवागमन मिटि जाय, बहुरि नहिं आवें हो।
आए हैं सतगुरु विप्र, बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी हो।

---

१. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० ८० पद २४३
२. ,, ,, पृ० ८० पद २४३
३. ,, ,, पृ० ८५ पद २५४

अष्ट कंवल दल उलटि, मुक्ति भरे पानी हो।
सोहं शब्द के कलस, सुरति के डोरी हो।
उलटा कूप अकास में, भरें ढबकोरी हो।
सीता सो है गोरि, रामजी सांवर हो।
ज्ञान ध्यान के पार, फिरे लागि भांवर हो।
दीपक बरै अकास, तेल बिनु बाती हो।
पलटूदास के नहछू, सखी हरखाती हो।[1]

मंगल विवाह—

हमरा ब्याह करो मोरे बाबा तुह से न होई निरबाह रे।
जेकरे रूप रंग नहिं रेखा, तेहि से कियो बियाह रे।
आवे न जाय मरे नहिं जीवे सो वर खोजहुँ जाय रे।
बूड़ न बार तरुण नहिं बाबा जायहुँ तिलक चढ़ाय रे।
गगन में खम्हवा गड़ायहुँ मोरे बाबा अधर रचहुँ बितान रे।
पवन बराती ब्याहन अइहैं बाबा कियहुँ बहुत सनमान रे।
त्रिवेनी का पानी मंगावहुँ, अक्षै वृक्ष के डार रे।
सुकृति कलस धरायहुँ मोरे बाबा पूज्यों पांव हमार रे।
शब्द सुरति से गांठि जोरायो मांड़ो दियहुँ छिराय रे।
पांच भांवरी जब आवें मोरे बाबा गांठि दिहौ निवकाय रे।
निर्गुण सेंदुरा मंगायहुँ मोरे बाबा पिया से दियायहुँ भरि मांग रे।
सतगुरु विप्र के गोड़ धरायहुँ दिन-दिन अवल सुहाग रे।
चांद सूरज दोनों कवरी रे बाबा कुहवर बहुवें द्वारा रे।
ऊंचे के राखिउ दरवाजा मोरे बाबा निहुरे न कथ हमार रे।
ज्ञान के उड़िया फंदायो मोरे बाबा के दियो बिदा हमार रे।
पलटूदास छूटा मोरें नैहर सबका भेंट अकवार रे।[2]

मंगल—

सासु मोर सूते गज ओवरि ननद मोर आंगन हो।
हम धनि सूतेऊँ घबराकर पिया संग आंगन हो।
झिरहिर बहै बयार अमीरस ढरके हो।
बोरमी नवरंगिया के डार धनन मनहुं भरके हो।
तेहि चढ़ि बोले हंस शब्द सुनि बावरि हो।
मंगल पलटूदास भगत के गावरि हो।[3]

---

१. पलटू साहब की शब्दावली पृ० ८४ पद २५१
२. ,, ,, पृ० १२२ पद ३५४
३. ,, ,, पृ० ५७-५८ पद १८२

नश्वरता—

> कै दिन का तोरा जियना रे, नर चेतु गँवार ।
> काची माटि के घैला हो, फूटत नहिं बेर ।
> पानी बीच बतासा हो, लागै गलत न बेर ।
> धूम्रां के धौरेहर हो, बारू के भीत ।
> पवन लगे झरि जैहै हो तृन ऊपर सीत ।
> आतसबाजी यह तनु हो, हाथे काल के आग ।
> पलटूदास उड़ि जैयहैं हों, जब देइहि दाग[1] ।

इस प्रकार की रचनाओं से ज्ञात होता है कि अपने मत का सामूहिक रूप से प्रचार करने तथा स्त्रियों तक का ध्यान आकर्षित करने के लिए ही ऐसे पदों की रचना की गई है ।

पलटूदास की भाषा मे फारसी शब्दों की भी प्रचुरता है । इससे यह नहीं समझना चाहिए कि यह बात प्रत्येक पद मे है । मुल्ला तथा मौलवी को धर्मोपदेश देते समय इन शब्दों का प्रयोग किया गया है । सूफी मत में प्रचलित रूढ़ियों को व्यक्त करने वाले शब्दों के प्रयोग भी सूफियों के सम्बन्ध मे किए गए हैं ।[3] ठीक ऐसी ही बात पण्डितों के सम्बन्ध मे है । उनको उपदेश देते समय अधिकतर शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया है । जनता मे व्यवहृत फारसी के शब्द किसी भी पद में पाए जाते हैं ।

पलटूदास की भाषा सीधी-सादी है । इसमें तोड़-मरोड़ के शब्द बहुत ही कम पाए जाते हैं फिर भी इनकी भाषा भाव-प्रकाशन में सफल हुई है । अनिर्वचनीय तथा दुरूह स्वानुभूतियों को व्यक्त करने की क्षमता पलटूदास मे अधिक है तथा इस क्षेत्र में वे पूर्णतया सफल हुए हैं[4] । यही नहीं, अनिर्वचनीय ब्रह्मानुभूति के साथ योग सम्बन्धी साधना-पद्धति को भी इन्होंने बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है[5] ।

पलटूदास की रचनाओं में व्याकरण सम्बन्धी दोष यदा-कदा पाए जाते हैं । इसका मुख्य कारण इनका पूर्ण शिक्षित न होना ही कहा जा सकता है । न तो इन्हें व्याकरण का पूरा ज्ञान था, और न उन्होंने इसकी आवश्यकता ही समझी थी । उनका उद्देश्य स्वानुभूतियों को इस प्रकार व्यक्त कर देना था ताकि जनता तथा

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० १३ पद ३०
२. „ „ ३ पृ० ३७ पद ६७
३. „ „ ३ पृ० ७७ पद १३९-१४०
४. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० २६ पद ८७
५. पलटू साहिब की बानी भाग २ पद ६७ से ८० तक

शिष्यगण उसे सरलतापूर्वक ग्रहण कर सकें। उनके सम्बन्ध में एक बात सर्वथा ध्यान में रखनी चाहिए कि वे उपदेशक थे, कवि नहीं। उन्होंने स्वयं अपनी कविताओं का संग्रह नहीं किया था। अतः हो सकता है कि संग्रहकर्त्ताओं ने भूल से कुछ अशुद्धियाँ कर दी हों, जैसा कि स्वाभाविक है।

पलटूदास और जन-जीवन

पलटू-साहित्य के अवलोकन से तत्कालीन जन-जीवन पर कुछ-कुछ प्रकाश पड़ता है। जैसा कि अन्यत्र लिखा जा चुका है कि उस समय समाज में ऊँच-नीच तथा धनी और निर्धन के बीच एक विभाजक रेखा थी। जहाँ एक ओर धनवान आनन्द मनाते थे तथा आमोद-प्रमोद में अपना जीवन व्यतीत करते थे वहाँ निर्धन को भर-पेट भोजन भी नहीं मिलता था। इतिहास बताता है कि धर्म-परिवर्तन का एक कारण धनाभाव भी है जो बरबस ऐश्वर्यशाली से ईर्ष्या उत्पन्न करता है और धर्म-परिवर्तन करने को बाध्य करता है। ऐसे लोगों की संख्या समाज में अधिक है जिनसे उच्चकुल के लोग घृणा करते हैं और जिनको पशुतुल्य समझते हैं।

पलटूदास ने उस समय के धर्म के ठेकेदारों, महथों तथा ब्राह्मणों पर प्रहार किया है। महथों ने समाज को धोखा दिया। जनता समझती थी कि वे महात्मा हैं, परन्तु वहाँ बात कुछ दूसरी ही थी। वे धार्मिक कामों से अरुचि रखते थे। बाह्या-डम्बरों से उन्हें विशेष प्रेम था।[1] माया से दूर रहने का ढोंग रचकर भी वे उसी में लिप्त थे।[2] ब्याज पर धन देते थे तथा लाभ के लिए अनाज एकत्र करके महँगाई

---

१. पगरि धरा उतारि टका छः सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया आठ का।
गोड़ धरै कछु देहि मुड़ाये मूड़ के।
अरे हाँ पलटू ऐसा है रुजगार कीजिए ढूंढ़ के।

(पलटू साहिब की बानी भाग २ पृ० ६६ पद ३१)

२. करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।
माया में है लीन बहाना भगति का।
तनिक कहीं नहिं छूट गया बैराग है।
अरे हाँ पलटू जनमे पूत कपूत लगाया दाग है।

(पलटू साहिब की बानी भाग २ पृ० ६५ पद ३०)

के दिनों मे अधिक मूल्य पर बेचते थे[1] ।

कर्मकाण्डी ब्राह्मण भी निम्न वर्ग के ऊपर अत्याचार करते थे । वे उन्हें छूना भी पाप समझते थे । मूर्तिपूजा, जनेऊ तथा अन्य पाखण्डो मे जनता को फंसाकर धनोपार्जन करते थे और स्वयं विलासमय जीवन बिताते थे । निम्न श्रेणी के साधारण मनुष्य तो उनके कोप के भाजन ही बने होते थे ।

शासक वर्ग आमोद-प्रमोद में जीवन व्यतीत करता था । मौलाना साहिब हलवा, पूड़ी, मांस पेटभर खाते थे और बाह्याडम्बर का प्रचार करते थे[2] । यही दशा गफ्फा की भी थी ।[3]

पलटूदास ने जन-साधारण का पक्ष लिया । उनके मस्तिष्क में यह बात बराबर खटकती रही कि एक ही ईश्वर के पुत्रों मे यह भेदभाव क्यों दिखाई देता है । उन्होने सामाजिक साम्यवाद का प्रचार किया जिसमे ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य तथा शूद्र सब एक ही है । उनका विचार था कि जाति के कारण किसी मे भेदभाव नहीं होना चाहिए । सबका शरीर पांचो तत्त्वों से बना है तथा सबमें एक ही ब्रह्म निवास

---

१. सस्ते मेंहै अनाज खरीद के राखते ।
महंगी में डारे बेचि चौगुना चाहते ।
देखो यह बैराग दाम को गाड़ते ।
अरे हां पलटू जम की बात है दूर हाकिम अब डांड़ते ।
(पलटू साहब की बानी भाग २ पृ० ६५ पद २६)

२ क्यों तुम फिरें भुलाना मोलने पढ़ि पढ़ि क्या तुम जाना ।
बैठा उठा करो महजिद में सिर दे दे तुम मारो ।
साहिब को बहिरा ठहराया, ऊँचे बांग पुकारो ।
हाथ महैं तुम तसवी फेरों, दिल दुनियां में फिरता ।
दस कौड़ी पर मुर्गी मारो, तुमसे साहिब डरता ।
पढ़ो कुरान ईमान बेच के, कौड़ी के तुम बन्दा ।
दिल की बात तुम्हारी जाने, साहिब नाहीं अन्धा ।
कह नापाक करो तुम रोजा, हलुवे से दिल लागा ।
पलटूदास कहै सुन मोलने, तुमसे साहिब भागा ।
(पलटू साहिब की शब्दावली पृ० १४ पद ४४)

३ पलटू साहिब की बानी भाग १ पृ० १७ पद ४४

करता[1] है। सभी में मास तथा रुधिर है। अतः भेदभाव निराधार है[2]। उन्होंने ब्राह्मणों से प्रश्न किया कि ब्राह्मण और शूद्र में कैसा भेद है? केवल जनेऊ का अन्तर सांसारिक है। ब्राह्मण और शूद्र दोनों में ही रुधिर है, जो भगवान को भजता है, वही उत्तम जाति का[3] है।

इस प्रकार की बातें करने से एक ओर ब्राह्मणों द्वारा प्रचलित कर्मकाण्ड का भण्डाफोड़ हुआ और दूसरी ओर साधारण जनता ने भी यह समझना प्रारम्भ किया कि सचमुच जातिभेद व्यर्थ है। कोई भी भगवान के भजन का अधिकारी है और सचमुच वही ऊँचा है जो भगवान का भजन करता है। अतः उनमें कुछ अपनी बुद्धि के प्रयोग करने तथा तथ्यों को समझने की प्रवृत्ति जाग उठी। वे भी अपने कर्तव्याकर्तव्य को समझने लगे तथा भक्ति क्षेत्र में आगे बढ़ने का साहस करने लगे।

पलटूदास ने जनता के सामने इस तथ्य की पुष्टि में उदाहरण रखे। उनका कहना था कि यह कोई आवश्यक नहीं है कि ब्राह्मण ही मोक्ष पा सकता है। जो कोई भी भगवान का भजन करेगा उसी को मोक्ष मिल सकता है। उन्होंने रैदास, कबीर, सेना, नामदेव इत्यादि निम्न जाति के लोगों का उदाहरण रखा कि जाति बंधन मोक्ष के मार्ग में बाधक नहीं सिद्ध हो सका[4]।

१, २, ३. पांडे जी तीन ताग तुम नाये बमनी को क्या तुम पहिराए।
तुमरे तन में दूध जो निकरे शूद्र के निकरे लोहू।
इहै परिक्षा दीजै पाड़े तब तुम बामन होहू।
शुद्धिन मेहर घर के भीतर नित उठि करै रसोई।
तेकरे किहा खाउ तुम पांडे सकल बमनई खोई।
जब तुम मन में शूद्र आये इहवां जनेऊ नावो।
तब हम बामन कहिबे तुमको उहवें से पहिने आवो।
कहत फिरो तुम वर्ण अठारह कहवां वर्ण है देखो।
अपने मुँह से बड़ा कहावो फिरो बढ़ावत शेखी।
पूरण ब्रह्म सकल घट व्यापक काको कहिए मध्यम।
पलटू कहैं सुनो हो पांडे हरि को भजै सो उत्तम।
(पलटू साहिब की शब्दावली पृ० १४२-४३ पद ४०६)

४. कोई जाति न पूछे हरि को भजै सो ऊँचा है।
कोटि कुलीन होइ ब्रह्मा सम सो भी उससे नीचा है।
सुपच अजामिल सदन रैदासा कौन बीज के सींचा है।
सेवरी भील बिदुर दासी सुत भाजी बेर गुनीचा है।
पलटूदास चढ़ो जब गनिका पकरि बिमान हरि खींचा है।
(पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ५० पद १०२)

उनकी इन बातों से जनता में दृढ़ता आई। वे कई शताब्दियों से यही सुनते आ रहे थे कि निम्न वर्ग के लोगों को भगवान के चिन्तन का कोई अधिकार नहीं है और न तो वे भव-जाल से मुक्त होने के अधिकारी ही हैं। उनके सामने भगवान राम और शूद्रक की कथा थी, परन्तु पलटूदास के वचनों से उनकी अज्ञानता दूर हो गई और उन्हें विश्वास हो चला कि वे भी इस क्षेत्र में कुछ कर सकते हैं। यद्यपि इस प्रकार की बातें महात्मा बुद्ध भी कर चुके थे तथा कबीर ने भी की थी परन्तु उनकी आवाज मन्द पड़ चुकी थी, जिसमें उग्रता लाने का कार्य पलटूदास ने किया।

जनता में ज्यों-ज्यों दृढ़ता बढ़ी त्यों-त्यों इनमें आत्मविश्वास भी बढ़ता गया। कारण यह था कि उनके सामने कबीर, दादू तथा रैदास इत्यादि नीच कुल में उत्पन्न सन्तों के उदाहरण तो थे ही, स्वयं पलटूदास भी इसके जीते-जागते उदाहरण थे। वे आध्यात्मिक जगत् के जीव थे और नीच जाति के होते हुए भी ब्राह्मणों द्वारा पूज्य थे। वे यह भी देखते थे कि बड़े-बड़े अमीर भी उनके सम्मुख नतमस्तक होते थे फिर भी वे जाति के बनिया थे। जनता ने यह भली-भाँति समझ लिया कि वे भी ऐसी भक्ति करें तो समाज में पलटूदास की भाँति ही उनका नाम होगा तथा नीच जाति में उत्पन्न होना उन्हें किसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रगति करने में बाधक सिद्ध नहीं होगा। पलटूदास ने डंके की चोट पर जाति-पाँति का खण्डन किया और इस मार्मिक ढंग से किया कि साधारण जनता भी इस पर विचार कर सके।

कुलीनों की भर्त्सना करने से तथा नीच कुलोत्पन्न सन्तों की प्रशंसा से जनता में एक धार्मिक चेतना का स्फुरण हुआ। यही धार्मिक चेतना एक ओर पाखण्ड का नाश करती है तो दूसरी ओर क्रान्तिकारियों को आगे बढ़ाती है। इसमें दो लाभ हुए। एक तो कर्मकाण्ड तथा बाह्याडम्बर के विरोध में उग्र प्रचार हुआ, दूसरे निम्न श्रेणी में आत्मविश्वास, तर्कशक्ति का स्फुरण तथा उत्थान की भावना जागृत हुई। उन्होंने भी समझ लिया कि राम का नाम लेने से इस संसार में शूद्र कहे जाने वाले भी मोक्ष प्राप्त कर गए और कुलीन कहे जाने वाले बिना नाम-स्मरण के बीच ही में डूब गए—

> नीच नीच सब तरि गए रामनाम लवलीन।
> पलटू ऊँचे बरण मद बूड़े सबै कुलीन[1]।

तथा

> राम कृष्ण भजि लेहु भला कछुक है तुमरो।
> बालमीक सुलचारा तरिया तरिया सदन कसाई।
> सुत हित धोखे कहा अजामिल तुरत परम पद पाई।

---

१. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० ३२७ पद १२६

जातिन नीच हरै रैदासा तरिया सेना नाई।
सुग्रा पढ़ावत गनिका तरिया तरिया गीध कसाई।
गौतम नारि अहिल्या तरिया नामा गाय जियाई[१]।

इस प्रकार के प्रचार से बाधाएँ भी उत्पन्न होती हैं। पदारूढ़ वर्ग के ऊपर निरन्तर प्रहार होने के कारण साधारण जनता मे निर्भीकता भी आ गई। वह न तो कुलीनों की श्रेष्ठता मानने को तैयार हुई और न अपने को उनसे निम्न स्तर का। उसकी यह निर्भीकता ब्राह्मण-समाज को पदच्युत करने के लिए पर्याप्त थी और साधारण जनता ने भी निर्भीक बनकर खुलेआम पलटूदास के स्वर में अपना स्वर मिलाया। साथ-ही-साथ साधारण जनता ने यह भी देखा कि अपने को कुलीन कहने वाले ब्राह्मण भी इन अछूतों के शिष्य बनने में अपना अहोभाग्य समझने लगे थे तथा अहर्निश नीच कुलोत्पन्न सन्तों की सेवा करते थे। अतः उन्होंने जाति-पाँति मे विश्वास न करके भगवत्-भक्ति में विश्वास करना प्रारम्भ किया। क्रमशः कालान्तर में जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच का यह बंधन गांधी-युग तक आते-आते शिथिल पड़ गया।

---

१. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० ४२ पद १४२

पलटूदास की देन

जब-जब समाज का रूप विकृत होता है, उसमे बाह्याडम्बर तथा पाखण्ड की भावना आती है, उस समय कोई महान पुरुष उत्पन्न होकर एक कुशल माली की भांति उसे कांट-छांटकर सुव्यवस्थित रूप देता है। पलटूदास एक महान सन्त तथा सुधारक थे। उनके व्यक्तित्व, प्रवचन तथा रचनाओं का प्रभाव भी जन-साधारण पर पड़ा। ऐसा लगता है कि कबीर से लेकर आधुनिककाल तक के समस्त सन्तो का एक ही ध्येय था और काल तथा समाज के अनुसार समाज पर थोड़ा-बहुत सबका अमिट प्रभाव पड़ा है। उनका प्रभाव जन-जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ा। जन-साधारण मे बुराइयो की मात्रा इतनी अधिक थी कि उसे दूर करने मे सन्तो को अधिक सफलता नहीं मिली, परन्तु बार-बार उन पर आघात करने से उनकी नीव अवश्य हिल गई। पलटूदास भी कबीर की परम्परा में आते हैं और सब क्षेत्रो मे लगभग इन्ही का अनुसरण करते हैं। उन्होंने अपने साहित्य के द्वारा समाज, धर्म, दर्शन इत्यादि को प्रभावित किया और कबीर द्वारा उन्नोलित क्रान्ति के झण्डे को बराबर ऊँचा रखा।

कबीर की भाति पलटूदास भी सदाचरण के पोषक थे और साम्यवाद की प्रतिष्ठा मे इन्ही का अनुसरण करते थे। जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है पलटूदास का युग संघर्ष का युग था। समाज, धर्म तथा जनता मे जो विषमता आ गई थी वह सन्तों द्वारा दूर करने की अथक चेष्टा करने पर भी प्रचलित रही। पलटूदास इसको सहन नही कर सके। उन्होंने समाज, धर्म तथा दर्शन को शुद्ध रूप देने का संकल्प किया था। यद्यपि उनका लक्ष्य सुधार करना नहीं था, फिर भी वे अनायास ही सुधारक के रूप में आ गए हैं। जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उनकी निजी देन है, जो सुधार, साम्यवाद तथा समन्वयवाद पर आधारित है।

पलटूदास ने भारतीय दर्शन को प्रभावित किया। हिन्दू तथा इस्लाम धर्म के समन्वय करने मे उन्होंने कबीर से कम प्रयत्न नहीं किया है। उन्होंने नाना प्रकार से तत्त्वों के विवेचन तथा निरूपण में लिखित तथ्यों को अस्वीकृत करके अनुभूतियो को मान्यता दी। एक ओर हिन्दुओं के उपनिषद के अद्वैतवाद और दूसरी ओर मुसलमानों के एकेश्वरवाद को मान्यता देते हुए भी उन्होने हद अनहद के पार ब्रह्म

की स्वीकृति दी है। यह उनके निरूपण की विलक्षणता है। उनके समस्त तत्व-निरूपण भी वेदसम्मत होते हुए विलक्षण हैं और इस मार्ग में भी उन्होंने कबीर का ही अनुसरण किया है।

धर्म का मुख्य कार्य समाज में स्थिरता लाना है। इसके अन्तर्गत उपासना-पद्धति, धार्मिक विश्वास तथा साधना-पद्धतियाँ आती हैं। पलटूदास के समय में साधारण जनता अधिकतर अन्धविश्वासी थी। जिस प्रकार हिन्दू मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, जप-तप, छापा-तिलक इत्यादि पर विश्वास करते थे, उसी प्रकार मुसलमान हज, नमाज और रोजा पर। तात्पर्य यह है कि दोनों के धर्मों में पाखण्ड था और धर्म का वास्तविक स्वरूप बदल-सा गया था। पलटूदास ने इन बुराइयों को सामने रखा और उनसे उनकी सत्यता के विषय में प्रश्न किया। उनसे कहा—

> मैं तोहि पूछौं पण्डिताइन पण्डित की जोय।
> पण्डित के है जनेऊ तुम्हरे गले नाहिं।
> तुम काहे रहे सुद्दिन तुम्हरे किहो खाहिं।
> पढ़ि गुनि कै पंडित भये तुमको नाहिं अभ्यास।
> सांच कहो पण्डिताइन पूछै पलटूदास।

(पलटू साहिब की शब्दावली पृ० ३३ पद ११३)

और इसी प्रकार पंडित जी से कहा—

> मति मति हरल तुम्हार पांड़े बम्हना।
> सब जातिन में उत्तम तुमहीं, करतब करौ कसाई।
> जीव मारि कै काया पोखौ, तनिको दरद न आई।
> राम नाम सुनि लूड़ी आवै, पूजो दुर्गा चंडी।
> लम्बा टीका कांध जनेऊ, बकुला जाति पखंडी।
> बकरी भेड़ा मछरी खायौ काहे गाय बराई।
> रुधिर मांस सब एकै पांड़े, थू तोरी बम्हनाई।
> सब घट साहिब एकै जानौ, यहि मां मल है तोरा।
> भगवत गीता बूझि बिचारौ पलटू करत निहोरा।

(पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ७७ पद १४०)

पलटूदास ने ब्राह्मण को जन्म-गत नहीं माना। उनका कहना था कि ब्राह्मण वही कहा जा सकता है जो ब्रह्म का ज्ञाता हो; जो समदर्शी हो तथा सबमें ईश्वर को देखे; जो नियम तथा आचार सम्बन्धी बाह्याडम्बरों से दूर रहे तथा जाति-

पांति के भेद से ऊपर उठा हुआ हो[1]।

पलटूदास ने मुसलमानों मे फैले हुए आडम्बरो का भी खण्डन किया। मुसलमानों से भी स्पष्ट शब्दों मे पूछा और उन्हें भी सत्य धर्म के पालन का उपदेश दिया। उनका कहना था कि "ऐ मोलने! तुम क्यों दूसरे के गले पर चाकू चलाते हो? मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह दयाशील हो। तुम बकरे का प्राण लेते हो फिर उसकी खाल तक खींच लेते हो। तुम जीवित को मृत बनाकर उसे हलाल की सज्ञा देते हो। औरों को काफिर कहते हो और स्वय कलेजा निकालकर काफ़िर का काम करते हो।" उन्होंने आदम तथा बकरी को एक बताकर मुसलमान को भी जीवहिंसा से विरत करने का प्रयत्न किया[2]।

हिन्दू तथा मुसलमानों के अतिरिक्त उन्होने मौनी[3] तथा शाक्त[4] इत्यादि

---

१. पांडे जी ब्रह्मज्ञानी सोई ब्राह्मण।
समदरसी को पंडित कहिए दूजा भाव न आने।
चारि खानि जो लख चौरासी सबमे साहिब जाने।
जो ब्रह्मा सो मसा एक सम घाटि बाढ़ि ना कोई।
दृष्टि बराबर सबको ताके पंडित कहिए सोई।
मर्म भगावे प्रीति लगावे छोड़े नेम अचारा।
जाति वर्ण की छूत न माने ज्ञान को करे विचारा।
भजन द्वादस गले मेंखला तत्त्व गायत्री होई।
पलटू कहे सुनो हे पांडे ब्राह्मण कहिए सोई।
(पलटू साहिब की शब्दावली पृ० १४३ पद ४०७)

२. क्यों तू छुरी चलावे मोलने, तुमको दरद न आवे।
पहिले तो बकरा गल काटा, दूजे खैंचो खाला।
लेके जान किया तू मुरदा, तुमही कहो हलाला।
दोजक मरो नाद कलिया से, खूब हुआ मस्ताना।
खाव हराम हलाल बताओ साबित नहीं इमाना।
करो कबाब करेजी काढ़ो, यही बड़ा कुफराना।
मारे जान सोइ है काफिर, बोले नबी कुराना।
जो आदम सो बकरी भेड़ा, सबमें नबी रसूला।
पलटूदास कदम ये बोलें, क्यों तू फिरते भूला।
(पलटू साहिब की शब्दावली पृ० १५ पद ४७)

३. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० ४२ पद १४३

४. " " पृ० १४४ पद ४०६

नाना प्रकार के धर्मावलम्बियों को चेतावनी दी है और सबको घट के भीतर ही ब्रह्म को पहचानने तथा साधारण धर्म को मानने की राय दी है। उन्होंने सब धर्मों को एक ही स्थान पर पहुँचाने वाले विभिन्न पथों की भांति माना है तथा उन्होंने धार्मिक विद्वेष मिटाने का प्रयत्न किया है।

धर्म के रूप के अनुसार ही समाज बनता है। अतः समाज तथा धर्म में घनिष्ट सम्बन्ध है। धार्मिक समन्वयवाद तथा अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा के लिए सर्वात्मवाद की भावना आवश्यक है। पलटदास का समाज के प्रति सबसे महान कार्य उनका साम्यवाद था। यह उनकी नवीन देन नहीं थी, अपितु कबीर ने इसके लिए भरसक प्रयत्न किया था। पलटूदास ने ऊँच-नीच तथा जाति-पांति का खुलकर विरोध किया। उन्होंने सबसे कहा कि जाति-पाँति के भ्रम को छोड़कर कर्म के बन्धन को काटने में ही कल्याण[1] है। उन्होंने हिन्दू तथा मुसलमानों में कोई भेद नहीं रखा। जब सब एक ही साहब द्वारा निर्मित संसार के रहने वाले हैं फिर उनमें द्वैत की भावना कैसे ? दोनों एक ही स्थान से तथा समान तत्वों से पैदा होते हैं। एक एकादशी करता है तो दूसरा रोजा। एक मुसहफ (?) पढ़ता है तो दूसरा वेद-पुराण। जो विष्णु है वह बिसमिल्ला है। तात्पर्य यह है कि दोनों एक हैं। केवल

---

१. भरम सब छोडि दे भाई अब जाति बरण कुल खोय।
भैया कर्म बंध नहि राखिये अब कर्म को दीजे काट।
कर्म मोई जंजाल है, यह छेके मुक्ति की बाट।
भैया कर्म की रसरी मोट है, यह से बंधिया संसार।
यमपुर बांधे जाएँगे, फिर चौरासी अवतार।
भैया लोकलाज ना मानिए परदा दीजे खोल।
चौड़े जाय बजाइये दिन रात को ढोल।
भैया ज्यों-ज्यों नाच को नाचिये वह त्यों-त्यों लागे रंग।
पलटू दास तब पाइये अच्छे सतगुरु के प्रसंग।
(पलटू साहिब की शब्दावली पृ० ५१ पद १६५)

सांसारिक प्रपंचों में पड़कर वे अपने को एक-दूसरे से पृथक् मानते हैं।[१] इसीलिए पलटूदास राम तथा खुदा के मध्य मे अपने ब्रह्म को मानकर कबीर की भांति मध्यम मार्ग की प्रतिष्ठा करते हैं।

सनातन धर्म मे आचरण की प्रधानता है। कबीर ने उसे अपने धर्म का एक आवश्यक अंग माना था। पलटूदास भी बार-बार आचरण को शुद्ध रखने की शिक्षा देते हैं। उनके समय मे जन-जीवन वासनायुक्त हो गया था तथा भोग-विलास का आधिक्य था। उसी को रोकने के लिए स्त्रियो की निन्दा की गई तथा उन्होने उनकी सुन्दरता को विष-तुल्य माना है। वासना को उद्दीप्त करने वाले भोज्य-पदार्थ—मांस तथा मदिरा—का विरोध किया। उन्होंने मन की शुद्धता तथा हृदय की निष्कपटता पर विशेष बल दिया तथा इन्ही को प्रत्येक साधना की आधार-शिला माना है।

दिल का सांचा चाहिए वह खाली पड़ा न कोय।

तथा

काह भये गुरमुख भये भाई, जो लगि दिल में सांच ना आई।

पलटूदास ने साहित्यिक क्षेत्र को भी प्रभावित किया। उनकी रचनाएँ सन्त-साहित्य के कलेवर मे वृद्धि करने के साथ हिन्दी-साहित्य के लिए एक अनुपम भेंट हैं। ब्रह्मानुभूति जैसे कठिन विषय को सरल तथा स्पष्ट ढंग से व्यक्त करने मे अन्य सन्तो की अपेक्षा पलटूदास अंशत: सफल हैं। यद्यपि वे कम पढ़े-लिखे थे, परन्तु उनमे भाव-प्रकाशन की क्षमता पूर्णरूपेण वर्तमान थी।

पलटूदास की रचनाओ मे कुछ ऐसी कुण्डलियाँ मिलती हैं जिनमे दोहे मे वर्णित भाव को स्पष्ट तथा विशद रूप मे वर्णन किया गया है। नीचे इस प्रकार के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

---

१. साहेब एक जहान बनाया दोइ दोइ सब गोहराया हो।
खून विसाब एक है दोऊ एक राह होय आया हो।
एकादसी हिन्दू सब रहते मुसलमान रहे रोजा हो।
गुड़ एक पकवान बहुत भा हिजरा करें या खोजा हो।
मुसलमान मुसहफ को बांचे हिन्दू बेद पुराना हो।
बन्दगी एक दुइ राह बताया वही राम रहिमाना हो।
वही विस्नु वही बिसमिल्ला वही करीमा केसो हो।
बेनमाज बिसमर मोहो बात मुओ दरवेसो हो।
जो हिन्दू सो मुसलमान में सब मिलि करो बिचारा हो।
पलटूदास दोऊ के थोचे साहेब एक हमारा हो।
(पलटू साहिब की शब्दावली पृष्ठ १८४ पद ५१४)

१. पलटू सतगुरु सबद को तनिक न करै बिचार।
नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरे पार[१]।
... ...

नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरे पार।
कैसे उतरे पार पथिक बिस्वास न आवै।
लगै नहीं बैराग यार कैसे कै पावै।
मन में धरै न ज्ञान नहीं सतसंगति रहनी।
बात करै नहीं काम प्रीति बिन जैसे कहनी।
छूटि डगमगी नाहिं सन्त को बचन न मानै।
मूरख तजै बिवेक चतुरई अपनी आनै।
पलटू सतगुरु सब्द को तनिक न करै बिचार।
नाव मिली केवट नहीं कैसे उतरे पार[२]।

२. सीस नवावै सन्त को सीस बखानौं सोय।
पलटू जे सिर ना नवै बेहतर कद्दू होय[३]।
... ...

पलटू जो सिर न नवै बिहतर कद्दू होय।
बिहतर कद्दू होय संत से नइ कै चलिए।
जुरै सो आगे धरै गोड़ धै सेवा करिए।
आपन जीवन जनम सुफल कै बह दिन जानै।
देखत नैन जुड़ाय सीतलता मन मे आनै।
अन्तर नाहीं करै मन बच से लावै सेवा।
ब्रह्मा बिष्णु महेस सन्त हैं तीनो देवा।
सीस नवावै सन्त को सीस बखानौं सोय।
पलटू जो सिर ना नवै बिहतर कद्दू होय[४]।
... ...

३. जड़ी बूटी के खोजते गई सुध्याई खोय।
पलटू पारस नाम का मनै रसायन होय[५]।

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ८४ पद ६
२. ,, ,, १ पृ० ३ पद ६
३. ,, ,, ३ पृ० ६१ पद ६०
४. ,, ,, १ पृ० ४८ पद ११६
५. ,, ,, ३ पृ० ८४ पद ८

पलटू पारस नाम का मर्न रसायन होय।
मर्न रसायन होय करै या तन को सोसो।
सपुट दै गुरु ज्ञान विस्वास दवाई पोसो।
दसों दिसा से मूंदि जोग की मठी बारै।
तेहि पर देहि चढ़ाय ब्रह्म की अग्नि से जारै।
इंधन लावै ध्यान प्रेम रस करै तयारी।
सबद सुरति के बीच तहां मन राखै मारी।
जड़ी बूटी के खोजते गई सिधाई खोय।
पलटू पारस नाम का मर्न रसायन होय[1]।

इन्होंने कबीरदास के भावों को तो ग्रहण किया ही है, कहीं-कहीं उसमे प्रयुक्त शब्दों को भी ज्यों-का-त्यों रख दिया है, उदाहरणस्वरूप निम्न पद उद्धृत हैं–

१. साहब के दरबार मे कमी काहु की नाँहि।
बन्दे मौज न पावहीं चूक चाकरी माँहि।[2] (कबीर)
... ...
साहिब के दरबार में कमी कुछ नाँहीं।
चूक चाकरी में परी दुबिधा मन माँहीं।[3] (पलटूदास)
... ...

२. वृच्छ नहीं फल खात हैं, नदी न संचे नीर।
पर स्वारथ के कारने, संतन धरो सरीर। (कबीर)
... ...
वृच्छा फरै न आपको नदी न अंचवै नीर।
पर स्वारथ के कारने संतन धरै सरीर[4]।
... ...

३. सिंहन के लहड़े नहीं, हंस की नहिं पांत।
लालों की नहिं बोरियां, साधु न चले जमात[5]। (कबीर)
... ...
नहिं हीरा बोरन चले, सिंह न चलें जमात।
ऐसे संत कोइ एक हैं, और मांग सब खात[6]। (पलटूदास)

---

१. पलटू साहिब की बानी भाग १ पृ० १०६ पद २६६
२. कबीर-ग्रन्थावली
३. पलटू साहिब की शब्दावली भाग ३ पृ० २४ पद ७४
४. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ९३ पद १११
५. कबीर साहिब का बीजक पृ० १०२
६. पलटू साहिब की बानी भाग ३ पृ० ६७ पद १५६

४. चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय।
दोउ पाटन के बीच मे साबित बचा न कोय। (कबीर)
... ...
चलती चक्की देखि के दिया मैं रोय है।
पीस गया संसार बचा ना कोय है[1]। (पलटूदास)
तथा
चलती चक्की बीच परा जो आइ कै।
अरे हां पलटू साबित बचा न कोइ गया असगाइ कै[2]। (पलटूदास)

५. माला फेरत जुग गया मिटा न मन का फेर।
करका मनका छांड़िके, मनका मनका फेर। (कबीर)
... ...
केतिक जुग गये बीति माला के फेरते।
छाला परि गये जीभ राम के टेरते।
माला दीजे डारि मनं को फेरना।
अरे हां पलटू मुंह के कहे न मिलै दिलं बीच हेरना[3]। (पलटूदास)

६. यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नांहि।
सीस उतारे भुंइ धरे, सो पैठे घर मांहि[4]। (कबीर)
... ...
साहिब के घर बीच गया जो चाहिए।
सिर को धरे उतारि कदम को नाइये[5]। (पलटूदास,
तथा
खाला कै घर नांहि भक्ति है राम की[6]। (पलटूदास)

पलटू-साहित्य पर अन्य कवियों की भी छाप है। ऐसे स्थल कम हैं। उदाहरणस्वरूप कुछ पद नीचे दिए जाते हैं—

१. अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम।
दास मलूका कहि गए सबके दाता राम। (मलूकदास)
... — ...

१. पलटू साहिब की बानी भाग २ पृ० ७५ पद ८७
२. " " पृ० ६८ पद ४६
३. पलटू साहिब की बानी भाग २ पृ० ७३ पद ७६
४. कबीर ग्रन्थावली
५. पलटू साहिब की बानी भाग २ पृ०७१ पद ६२
६. " " पृ० ६६ पद ५२

अजगर ना व्योपार करन कछु जात है।
डोलै कं सक नाहि बैठे वह खात है।
चुसिहारी के किरिम मंहे किन्ह दिया है।
अरे हां पलटू दोऊ से सन्तोष मोल हम लिया है[1]। (पलटूदास)

२ सबै भूमि गोपाल की बामें अटक कहां।
जाके मन में अटक है सोई अटक रहा। (अज्ञात)
... ...
भैया जाके मन में एक है अब वाको भटक कहां।
जाके मन में भटकि है अब सोई भटक रहा[2]।

३. सठ सुधरहिं सत्सगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥ (तुलसी)
... ...
पारस परसि कुधातु सुहाई। वाको लोह कहा नहिं जाई[3]॥ (पलटूदास)

४. कामिहिं नारि पियारि जिमि लोभी के प्रिय दाम।
त्यों रघुवंश निरन्तर प्रिय लागहि मोहि राम॥ (तुलसी)
... ...
जैसे कामिनि के विषय कामी लावै ध्यान।
कामी लावै ध्यान रैन दिन चित्त न टारै।
तन मन धन मर्जाद कामिनि के ऊपर वारै।
लाख कोऊ जो कहै कहा ना तनिको मानै।
बिन देखे ना रहै वाहि को सर्बस जानै।
लेय वाहि को नाम वाहि को करै बडाई।
तनिक बिसारै नाहि कनक ज्यों किरपिन पाई।
ऐसी प्रीति अब दीजिए पलटू को भगवान।
जैसे कामिनि के विषय कामी लावै ध्यान[4]। (पलटूदास)

पलटूदास पर कबीरदास का अधिक प्रभाव ज्ञात होता है। बात यह है कि इन्होंने कबीरदास द्वारा प्रवर्तित सन्तमत को मान्यता दी थी। जिस प्रकार कबीरदास की निर्गुण भावना में प्रेमप्रधान है, उसी प्रकार इनकी साधना में भी प्रेम और

१. पलटू साहिब की बानी भाग २ पृ० ७६ पद ११२
२. पलटू साहिब की शब्दावली पृ० ५४ पद १७५
३. ,, ,, पृ० २४६ पद ६८८
४. पलटू साहिब की बानी भाग १ पद ६२ पृ० ३८

सदाचरण का मुख्य स्थान है। प्रेमतत्त्व के कारण ही इन्होंने धर्म के सहज स्वरूप को मान्यता दी और कष्टसाध्य योगमार्ग में भी इस तत्त्व का मिश्रण कर उसे सरस बना दिया।

पलटूदास आधुनिक युग की एक महान विभूति हैं। आधुनिक भौतिकवादी युग में अध्यात्मवाद को प्रधानता देकर इन्होंने अधिकांश जनता को आकर्षित तथा प्रभावित किया। बाह्याडम्बर, दुराचरण तथा पाखण्ड की निन्दा कर कबीरदास की भांति इन्होंने जनता को सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया। इनकी वाणी से सत्य तथा आनन्द की जो धारा प्रवाहित हुई वह आज भी पाठकों के हृदय को परम आनन्द तथा शान्ति प्रदान करती है। भारतीय समाज का अधिकांश भाग इनके व्यक्तित्व तथा वचनामृत से प्रभावित है और आशा है कि भविष्य में भी इनकी पीयूषवाणी इस भवताप से उसे मुक्त करने में सहायक सिद्ध होगी। इनकी अमर वाणी के प्रकाश से सन्त-साहित्य सर्वदा जगमगाता रहेगा।

सहायक ग्रन्थों की सूची

(अ) संस्कृत

१. कण्ठोपनिषद् —गीताप्रेस गोरखपुर, अष्टम संस्करण

२ मुण्डोपनिषद् ,, ,, षष्ठ संस्करण

३. श्वेताश्वतर उपनिषद् —गीता प्रेस गोरखपुर, तृतीय संस्करण

४. महाभारत —गीता प्रेस गोरखपुर

५. मनुस्मृति

६. भागवत पुराण —गीता प्रेस गोरखपुर

७. गीता —गीता प्रेस गोरखपुर, पंचम संस्करण

८. योग-दर्शन-पतंजलि
—हरिकृष्णदास गोयदका, गीता प्रेस, गोरखपुर, तृतीय संस्करण

९. भक्ति-सूत्र-नारद
—(प्रेम दर्शन) हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर, नवा संस्करण

१०. भक्ति-सूत्र-शांडिल्य —गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण

११. शिवसंहिता —वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई सं० २००८

१२. हठयोग प्रदीपिका —वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई सं० २००६

१३. विवेक चूड़ामणि—स्वामी शंकराचार्य
—गीता प्रेस गोरखपुर, ग्यारहवाँ संस्मरण सं० २०१४ वि०

(आ) हिन्दी

१. कबीर—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, द्वितीय संस्करण सन् १९४७

२. कबीर—डॉ. रामरतन भटनागर
—किताब महल इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

३. कबीर की विचारधारा—डा० त्रिगुणायत

४. कबीर-साहित्य का अध्ययन—पुरुषोत्तम गुप्त श्रीवास्तव
—साहित्यरत्नमाला कार्यालय बनारस, प्रथम संस्करण

५. सुन्दर दर्शन—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित
६ उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—ग्राचार्य परशुराम चतुर्वेदी
७. सन्त काव्य ,, ,,
—प्रथम सस्करण, किताब महल, इलाहाबाद
८. कबीर-साहित्य की परख —ग्राचाय परशुराम चतुर्वेदी भारतीय भाग, प्रयाग, प्रथम संस्करण
९. सूफीमत : माधना ग्रोर साहित्य—रामपूजन तिवारी
—ज्ञानमण्डल लि० बनारस, प्रथम सस्करण स० २०१३
१०. ज्ञानयोग—स्वामी विवेकानन्द-प्रभात प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण
११. भक्तियोग ,, ,, ,, ,,
१२. हिन्दी-काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय—डा० बड़थ्वाल
—ग्रवध पब्लिशिंग हाउस लखनऊ, प्रथम सस्करण
१३. बौद्ध धर्म की मीमांसा—डा० बलदेव उपाध्याय
—चौखम्वा विद्या भवन, चौक बनारस, द्वितीय संस्करण
१४. भारतीय दर्शन—डा० बलदेव उपाध्याय
शारदा मन्दिर, काशी, पंचम संस्करण
१५. रहस्यवाद—डा० रामरतन भटनागर
—किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण
१६. ग्रयोध्या का इतिहास—सीताराम
—हिन्दुस्तानी एकेडमी यू० पी०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
१७. मुगल-साम्राज्य की जीवन संध्या—राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह
—ग्रात्माराम एण्ड संस, दिल्ली
१८. कबीर साहिब की शब्दावली—श्यामसुन्दरदास
—बेलविडियर प्रेस, प्रयाग, षष्ठ संस्करण सन् १९५१
१९. कबीर ग्रंथावली—श्यामसुन्दरदास
—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, छठा संस्करण
२०. घट-रामायण—तुलसी साहब हाथरस वाले
—बेलविडियर प्रेस, प्रयाग
२१. महात्माग्रों की बानी—रामवरन दास भुड़कुड़ा
—रामबरनदास साहिब भुड़कुड़ा, गाजीपुर सन् १९३३
२२. यारी साहिब की रत्नावली—बेलविडियर प्रेस प्रयाग, प्रथम संस्करण
२३. बूला साहिब का शब्दसार ,, द्वितीय ,, सन् १९४६

२४. गुलाल साहिब की बानी—बेलविडियर प्रेस, प्रयाग, द्वितीय संस्करण सन् १६३२
२५. भीखा साहिब की बानी ,, सन् १६१६
२६. देवकीनन्दन साहिब की बानी—अप्रकाशित
२७ गोविन्द साहिब का जीवन-चरित—गैबदास भिक्षु, महन्त मुनीश्वर साहिब लालगज बस्ती, प्रथम संस्करण
२८. ब्रह्मविलास—हुलासदास
संत वक्सलाल बरोली, जि० बाराबांकी, प्रथम संस्करण
२६. लक्ष्मणदास की शब्दावली—अप्रकाशित
३०. दरिया सागर—दरिया साहिब बिहार वाले
—वेलविडियर प्रेस, प्रयाग सन् १६५३
३१. दरिया साहिब मरवाड़ वाले की बानी
—वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण
३२. चरनदास की बानी
—बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, प्रयाग सन् १६५२
३३. सहज-प्रकाश—सहजोबाई
—बेलविडियर प्रेस प्रयाग, सप्तम संस्करण
३४. दयाबोध—दयाबाई वेलविडियर प्रेस, प्रयाग
३५. गरीबदास की बानी —बेलविडियर प्रेस प्रयाग, सन् १६४६ ई०
३६. कबीर साहिब का बीजक —बेलविडियर प्रेस प्रयाग १६५१
३७. दूलनदास जी जो बानी
—बेलविडियर प्रेस प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सन् १६३१
३८. पलटू साहिब की बानी (तीनों भाग)
—बेलविडियर प्रेस इलाहाबाद, सातवां संस्करण, १६५६ ई०
३६. पलटू साहिब की शब्दावली
—प्रकाशक महंथ जगन्नाथदास जी महाराज प्रथमावृत्ति २००७ वि०
४०. गोविन्द साहिब का निर्णयसार—गैबदास भिक्षु
—बच्चा साहब जी जयराम पट्टी, बस्ती
४१. गोविन्द साहिब का सत्य टेर—गैबदास भिक्षु
—बच्चा साहब जी जयराम पट्टी, बस्ती
४२. सुषमवेद—पानपदेव —राजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली
४३. केशवदास जी की अमी घूंट —बेलविडियर प्रेस, प्रयाग

५. सुन्दर दर्शन—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित
६. उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—ग्राचार्य परशुराम चतुर्वेदी
७. सन्त काव्य ,, ,,
—प्रथम सस्करण, किताब महल, इलाहाबाद
८. कबीर-साहित्य की परख —ग्राचार्य परशुराम चतुर्वेदी भारतीय भाग, प्रयाग, प्रथम संस्करण
९. सूफीमत : साधना ग्रोर साहित्य—रामपूजन तिवारी
—ज्ञानमण्डल लि० बनारस, प्रथम सस्करण स० २०१३
१०. ज्ञानयोग—स्वामी विवेकानन्द–प्रभात प्रकाशन, दिल्ली प्रथम सम्करण
११. भक्तियोग ,, ,, ,, ,,
१२. हिन्दी-काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० बड्थ्वाल
—अवध पब्लिशिग हाउस लखनऊ, प्रथम संस्करण
१३. बौद्ध धर्म की मीमांसा—डा० बलदेव उपाध्याय
—चौखम्बा विद्या भवन, चौक बनारस, द्वितीय संस्करण
१४. भारतीय दर्शन—डा० बलदेव उपाध्याय
शारदा मन्दिर, काशी, पचम संस्करण
१५. रहस्यवाद—डा० रामरतन भटनागर
—किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण
१६. ग्रयोध्या का इतिहास—सीताराम
—हिन्दुस्तानी एकेडमी यू० पी०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
१७. मुगल-साम्राज्य की जीवन संध्या—राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह
—ग्रात्माराम एण्ड संस, दिल्ली
१८. कबीर साहिब की शब्दावली—श्यामसुन्दरदास
—बेलविडियर प्रेस, प्रयाग, षष्ठ संस्करण सन् १९५१
१९. कबीर ग्रंथावली—श्यामसुन्दरदास
—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, छठा संस्करण
२०. घट-रामायण—तुलसी साहब हाथरस वाले
—बेलविडियर प्रेस, प्रयाग
२१. महात्माग्रों की बानी—रामबरन दास मुड़कुड़ा
—रामबरनदास साहिब मुड़कुड़ा, गाजीपुर सन् १९३३
२२. यारी साहिब की रत्नावली—बेलविडियर प्रेस प्रयाग, प्रथम संस्करण
२३. बूला साहिब का शब्दसार ,, द्वितीय ,, सन् १९४६

२४. गुलाल साहिब की बानी—बेलविडियर प्रेस, प्रयाग, द्वितीय संस्करण सन् १६३२
२५. भीखा साहिब की बानी " " सन् १६१६
२६. देवकीनन्दन साहिब की बानी—अप्रकाशित
२७. गोविन्द साहिब का जीवन-चरित—गैबदास भिक्षु, महन्त मुनीश्वर साहिब सालगंज बस्ती, प्रथम संस्करण
२८. ब्रह्मविलास—हुलासदास
संत वक्सलाल बरौली, जि० बाराबांकी, प्रथम संस्करण
२६. लक्ष्मणदास की शब्दावली—अप्रकाशित
३०. दरिया सागर—दरिया साहिब बिहार वाले
—बेलविडियर प्रेस, प्रयाग सन् १६५३
३१. दरिया साहिब मरवाड़ वाले की बानी
—बेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण
३२. चरनदास की बानी
—बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, प्रयाग सन् १६५२
३३. सहज-प्रकाश—सहजोबाई
—बेलविडियर प्रेस प्रयाग, सप्तम संस्करण
३४. दयाबोध—दयाबाई बेलविडियर प्रेस, प्रयाग
३५. गरीबदास की बानी —बेलविडियर प्रेस प्रयाग, सन् १६५६ ई०
३६. कबीर साहिब का बीजक —बेलविडियर प्रेस प्रयाग १६५१
३७. दूलनदास जी जी बानी
—बेलविडियर प्रेस प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सन् १६३१
३८. पलटू साहिब की बानी (तीनों भाग)
—बेलविडियर प्रेस इलाहाबाद, सातवां संस्करण, १६५६ ई०
३६. पलटू साहिब की शब्दावली
—प्रकाशक महंथ जगन्नाथदास जी महाराज प्रथमावृत्ति २००७ वि०
४०. गोविन्द साहिब का निर्णयसार—गैबदास भिक्षु
—बच्चा साहब जी जयराम पट्टी, बस्ती
४१. गोविन्द साहिब का सत्य टेर—गैबदास भिक्षु
—बच्चा साहब जी जयराम पट्टी, बस्ती
४२. सुषमवेद—पानपदेव —राजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली
४३. केशवदास जी की अमीं घूट —बेलविडियर प्रेस, प्रयाग